भारत की शरई हैसियत

डॉ. ज़फ़र दारिक क़ासमी

अनुवादक

फ़ारूक़ अर्गली

खुसरो फ़ाउण्डेशन

नई दिल्ली

©.ख़ुसरो फ़ाउण्डेशन, नई दिल्ली

Bharat Ki Sharai Haisiyat

By:

Dr. Zafar Darik Qasmi

Translation:

Farooq Argali

पुस्तक का नाम	:	भारत की शरई हैसियत
लेखक	:	डॉ. ज़फ़र दारिक क़ासमी
अनुवाद	:	फ़ारूक़ अर्गली
प्रकाशन वर्ष	:	2024
पृष्ठ	:	232
कम्पोज़िंग	:	हुमरान अज़मी
मुद्रक	:	तनवी प्रिंटर्स, दिल्ली
ISBN	:	978-81-971585-5-1

Khusro Foundaion

Regd. Office: D-319, Defence Colony, New Delhi-110024

E-mail : khusrofoundation.del@gmail.com

विषय सूची

❑ भूमिका प्रो. अख़्तरुल वासे 7
❑ प्रस्तावना डॉ. ज़फ़र दारिक क़ासमी 10

पहला अध्याय

भारत की धार्मिक, सामाजिक और राजनीतिक व्यवस्था

• भारत की उत्कृष्टता 19
• हिंदू धर्म और मुसलमान 24
• हिंदू योगी और मुस्लिम सूफ़ी 34
• हिंदू देवताओं का सम्मान 37
• मुस्लिम शासन काल में हिंदू साहित्य का विकास 41
• हिंदू कवियों का सम्मान 47
• भारत की प्राचीन राजनीतिक व्यवस्था 49
• भारत के प्राचीन बुद्धिजीवियों का दर्शन 51
• प्रवृत्तियां एवं पद्धतियां 52

दूसरा अध्याय

भारत में हिन्दू-मुस्लिम एकता और समरसता की परम्पराएं

• हिंदुओं का मुसलमानों से सौहार्दपूर्ण व्यवहार 58
• मुसलमानों का हिंदुओं के साथ अच्छा व्यवहार 62
• भक्ति आंदोलन 64
• मुस्लिम शासकों की शासन-शैली 66
• मुस्लिम शासन काल में हिंदू पुनर्जागरण आंदोलन 69
• हिंदू-मुस्लिम सम्बंधों के अन्य पहलू 72
• सांझी संस्कृति और उसके मूल्य 79
• सांझे सामाजिक मूल्य 81
• सांझी संस्कृति और भाषाएं 84
• वास्तुकला में हिंदू-मुस्लिम प्रभाव 84
• सूफ़ीगण और सांझी संस्कृति 91
• सूफ़ीवाद पर भारतीय संस्कृति का प्रभाव 93

तीसरा अध्याय

धर्मनिरपेक्षता, देशभक्ति (राष्ट्रवाद), मुसलमान और भारत

• धर्मनिरपेक्षता का अर्थ 99
• धर्मनिरपेक्षता का सकारात्मक पहलू और भारत 105
• मुसलमान और भारतीय धर्मनिरपेक्षता 112
• भारत का संविधान और मुस्लिम अल्पसंख्यक 114
• भारत में अल्पसंख्यक 116
• स्वतंत्रता का अधिकार 117

- समानता का अधिकार 117
- सांस्कृतिक एवं शैक्षिक अधिकार 118
- विचार एवं आस्था की स्वतंत्रता का अधिकार 118
- अल्पसंख्यक संस्थान 119
- देशभक्ति (राष्ट्रवाद) और मुसलमान 121
- राष्ट्र या राष्ट्रवाद 122
- राष्ट्रवाद और इस्लामी विचारक 125
- क़ुरआन और हदीस के अनुसार देशभक्ति 134

चौथा अध्याय

आधुनिक एवं पुरातन विचारों के आलोक में भारत की शरई हैसियत

- ऐतिहासिक पृष्ठभूमि 149
- भारत की धार्मिक स्थिति 150
- भारत में मुसलमानों के प्रारंभिक चिन्ह 152
- भारत के निर्माण एवं विकास में मुसलमानों की भूमिका... 154
- भारत में अंग्रेज़ों का आगमन 161
- सामाजिक मूल्यों पर प्रहार 163
- आर्थिक मूल्यों पर हमला 166
- धार्मिक एवं सांस्कृतिक मूल्यों पर हमला 170
- स्वतंत्रता से पूर्व भारत की शरई हैसियत 178
- शाह अब्दुल अज़ीज़ 178
- सैयद अहमद शहीद राय बरैलवी 179
- मौलाना अब्दुल हई लखनवी 180
- मौलाना अनवर शाह कश्मीरी 181

- मौलाना क़ासिम नानौतवी 182
- मौलाना अशरफ़ अली थानवी 183
- मौलवी नज़ीर देहलवी 183
- मौलाना अबू सईद मुहम्मद हुसैन बटालवी 184
- मौलाना अहमद रज़ा ख़ाँ बरैलवी 185
- स्वतंत्र भारत की शरई हैसियत 191
- मौलाना सईद अहमद अकबराबादी 193
- संयुक्त समाज और शरई आदेश 201
- बहुलवादी समाज में मानवता का सम्मान 201
- बहुलवादी समाज में मान-सम्मान की सुरक्षा 204
- बहुलवादी समाज में आर्थिक ज़रूरतों को पूरा करना 206
- बहुलवादी समाज और संपत्ति की सुरक्षा 208
- बहुलवादी समाज और व्यक्तिगत स्वतंत्रता 208
- बहुलवादी समाज और न्याय 209
- बहुलवादी समाज में धर्मों का सम्मान 212
- बहुलवादी समाज में पूजा स्थलों का सम्मान 219

❑ संदर्भ पुस्तकें 223
❑ ख़ुसरो फ़ाउंडेशनः एक नई पहल 229

❑❑

भूमिका

यह निर्विवाद सत्य है कि मानवीयता पर आधारित रिश्तों और संबंधों को बढ़ावा देना आज की सबसे बड़ी ज़रूरत है। इतिहास गवाह है कि जिन जातियों ने ईमानदारी से मानवाधिकारों और आपसी विश्वास एवं संबंधों का पालन किया है, वे सामाजिक और अन्य सभी क्षेत्रों में समृद्ध रही हैं। उनके इतिहास, सभ्यता, संस्कृति, विचारों और दृष्टिकोण को अन्य जातियों के लोग सम्मान की दृष्टि से देखते हैं। बहरहाल, जब-जब समाजों में मानवीय संबंध ख़राब हुए हैं या उनमें खटास आई है, न केवल वे समाज विनाश के कगार पर आ गए हैं, बल्कि सच तो यह है कि उनकी अहमियत, उत्कृष्टता, आदर्श और सम्मान भी रौंद डाला गया है। ऐसे व्यक्ति, परिवार, समाज और जातियां अधिक समय तक जीवित नहीं रह सकतीं। इसलिए सामाजिक कल्याण और बेहतर भविष्य के निर्माण और विकास के लिए आपसी भाईचारा और सहिष्णुता जैसे पवित्र मूल्यों को विकसित करना होगा ताकि मानवता के आधार पर बने रिश्तों को किसी भी तरह से नुक़सान न पहुंचे। जब हम देश के इतिहास और संस्कृति पर नज़र डालते हैं तो यह तथ्य स्पष्ट हो जाता है कि हमारे प्रिय देश में बहुजातीय समरसता और परस्पर सम्मान की परम्परा बहुत पुरानी है। बिना किसी पक्षपात के एक दूसरे के दुख-दर्द में मिलकर काम करना, सुख-दुख में साथ-साथ रहना भारत की मिट्टी में समाहित है और रहेगा। इस प्रकार भारत धर्मों, विचारों, विश्वासों, विविध भाषाओं का

केंद्र और धुरी है, इसके बावजूद आम तौर पर कोई किसी के धर्म या आस्था से शिकायत है न ही कोई किसी की संस्कृति और भाषा पर कीचड़ उछालता है। अतः हम कह सकते हैं कि यह वह भूमि है जिसने अनगिनत सभ्यताओं, संस्कृतियों और विचारों को जन्म दिया है और प्रत्येक सभ्यता और संस्कृति के धारक यहां मौजूद हैं, लेकिन कभी भी इन कारणों से कोई किसी का विरोधी नहीं हुआ है। लेकिन इधर कुछ समय से कुछ ग़लतफ़हमियों को सार्वजनिक करने का प्रयास किया जा रहा है, इसलिए यह दोहराना आवश्यक समझा गया कि हमारे देश का संविधान और धर्मनिरपेक्ष व्यवस्था सभी वर्गों को स्वतंत्रता प्रदान करती है, साथ ही देश के प्रत्येक नागरिक को यह याद रखना चाहिए कि स्वतंत्रता का अर्थ यह नहीं है कि कोई भी वर्ग किसी भी समुदाय के दिल को ठेस पहुंचाए या उसकी भावनाओं को भड़काए। अगर कोई ऐसा करता है तो वह देश की संवैधानिक और लोकतांत्रिक भावना को आघात पहुंचा रहा है। कोई भी राष्ट्र अथवा देश विकास के सभी लक्ष्यों को तभी प्राप्त कर सकता है जब उस देश के सभी नागरिकों के साथ न्याय और समानता का व्यवहार किया जाए।

भारत और इस्लाम का संबंध उतना ही पुराना है जितना कि आदम का स्वर्ग से पृथ्वी पर आगमन, क्योंकि आदम, जो पहले इंसान थे और एक पैगंबर भी थे, जिनको मुस्लिम मान्यता के अनुसार भारत में ही उतारा गया था। इसलिए भारत मुसलमानों की केवल मातृभूमि ही नहीं बल्कि पिता भूमि भी है। यही वह भूमि है जहां से अंतिम पैगंबर हज़रत मुहम्मद सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम को ठंडी हवाएं आती थीं। मुसलमान यहां आए तो हमेशा के लिए यहीं के हो गए। वे भारत की मिट्टी और हवा में इस तरह घुल-मिल गए जैसे आंखों में काजल और वातावरण में सुगंध समा जाती है। उन्होंने यहां आठ सौ वर्षों तक शासन किया, लेकिन हमेशा अल्पसंख्यक रहे, जो इस बात का प्रमाण

है कि उन्होंने स्थानीय लोगों को धर्म परिवर्तन के लिए मजबूर नहीं किया और पवित्र क़ुरआन के इस दिव्य निर्देश का पालन किया, ''ला इकराहा फ़िद्दीन।'' (धर्म में कोई ज़बरदस्ती नहीं है)

अमीर ख़ुसरो भारत और उसके निवासियों के पहले प्रशंसक हैं और इस परम्परा को ग़ालिब, हाली और इक़बाल सहित विभिन्न लोगों ने आगे बढ़ाया है। ग़ालिब की शाइरी में बहुलता में एकता की ईर्ष्यापूर्ण अभिव्यक्ति हैः

है रंग-ए-लाला-ओ-गुल-ओ-नसरीं जुदा-जुदा
हर रंग में बहार का इसबात चाहिए
(सभी फूलों के रंग अलग-अलग हैं परन्तु हर रंग में बहार की सुन्दरता चाहिए)

तो इक़बाल ने अपनी कविता 'नया शिवाला' में भारत के साथ अपने लगाव और रिश्ते को ब्राह्मण के सामने इन शब्दों में व्यक्त किया हैः

पत्थर की मूरतों में समझा है तू ख़ुदा है
ख़ाक-ए-वतन का मुझको हर ज़र्रा देवता है

मौलाना अल्ताफ़ हुसैन हाली ने भारत की महानता और महत्व के साथ अपने संबंधों का वर्णन इस प्रकार किया हैः

तेरी इक मुश्त-ए-ख़ाक के बदले
लूं न हरगिज़ अगर बहिश्त मिले

डॉ. ज़फ़र दारिक क़ासमी ने ख़ुसरो फाउण्डेशन के आग्रह पर लिखी गई अपनी पुस्तक 'हिन्दुस्तान की शरई हैसियत' में उन मुद्दों और बहसों पर चर्चा की है जिनकी आज निश्चित रूप से आवश्यकता है। उन्होंने पुस्तक के पहले अध्याय में उल्लेख किया है कि भारत की उत्कृष्टता, महत्व और इसकी संभावनाएं असंख्य हैं जो इसकी विविधता और बहुलवाद के लिए जानी जाती हैं। इसके साथ ही

उन्होंने मुस्लिम शासकों के रवैये पर पक्षपात या अज्ञानता के कारण की जाने वाली आपत्तियों का भी करारा जवाब दिया है कि जब भारत में मुस्लिम सरकारें स्थापित थीं, तो उन्होंने देश के हिंदुओं के साथ पक्षपातपूर्ण व्यवहार किया या भेदभावपूर्ण तरीक़े से शासन किया। जबकि ऐसी बातें इतिहास या वास्तविकता से दूर-दूर तक भी संबंधित नहीं हैं।

दूसरे अध्याय में लेखक ने बताया है कि इतिहास में हिन्दू-मुस्लिम एकता और समरसता के अनगिनत उदाहरण मिलते हैं। ये परम्पराएं और घटनाएं सिखाती हैं कि यहां किसी की भी सत्ता रही हो, किसी का भी अधिपत्य रहा हो, लेकिन देश की गंगा-जमुनी सभ्यता और हिंदू-मुस्लिम एकता और आम सहमति पर कोई असर नहीं पड़ा।

इसी तरह किताब का तीसरा अध्याय भी काफ़ी अहमियत रखता है, जिसमें बड़े विस्तार से लिखा गया है कि भारत की धर्मनिरपेक्ष व्यवस्था और यहां के लोकतांत्रिक मूल्य न केवल मुसलमानों द्वारा स्वीकार किए जाते हैं, बल्कि यह उनकी आस्था और विश्वास का हिस्सा है। आज जिस प्रकार से मुसलमानों की देशभक्ति पर संदेह किया जाता है, इस अध्याय में बहुत उपयोगी चर्चा की गई है।

अंतिम अध्याय 'हिन्दुस्तान की शरई हैसियत आधुनिक और प्राचीन विचारों की रौशनी में' पर आधारित है। इस के अंदर प्रस्तुत की गई बातों और तथ्यों का भी बड़ा महत्व है। हिन्दुस्तान की शरई हैसियत के बारे में मुसलमानों का दृष्टिकोण एक तो उस समय का है जब भारत स्वतंत्र नहीं था और देश की सत्ता फिरंगियों के हाथों में थी। उस समय के विद्वानों ने अपने फ़तवों में कहा था कि भारत 'दारुस्सलाम' (शांत भूमि) है, यह आज़ादी से पहले की बात है। उसके बाद देश स्वतंत्र हो गया और किसी भी धर्म और मत की सरकार स्थापित नहीं हुई, तथा सर्वसम्मति से भारत को एक धर्मनिरपेक्ष राज्य

घोषित किया गया। इसलिए अब भारत की जो शरई हैसियत है वह न 'दारुस्सलाम' (शांत भूमि) है और न 'दारुल-हर्ब' (युद्ध भूमि) है, बल्कि यह 'दारुल-अमन' (शांत भूमि), 'दारुल-मुअहिदा' (अनुबंध भूमि) और 'दारुल-जमहूरिया' (लोकतांत्रिक भूमि) है। आम तौर पर यह माना जाता है कि मुसलमान भारत को 'दारुल-हर्ब' मानते हैं, जो पूरी तरह निराधार और ग़लत है। भारत को मुसलमानों ने कभी भी 'दारुल-हर्ब' नहीं कहा, विद्वानों ने भी शाह अब्दुल अज़ीज़ मुहद्दिस देहलवी के फ़तवे पर लिखा है कि यह उनका फ़तवा है, यह विश्वास करने योग्य नहीं है। किताब की तमाम चर्चाओं को पढ़ने के बाद यह बात समझ में आती है कि मुसलमान भारत में न तो शासक हैं और न ही अधीनस्थ बल्कि सत्ता में बराबर के भागीदार हैं। शांति और संतोष से रहते हुए उन्हें अपने धर्म का पालन करने की पूरी आज़ादी है। मुझे लगता है कि यह किताब हमारे बीच कई ग़लतफ़हमियों को दूर करने और देश में हिंदू-मुस्लिम के बीच की खाई को पाटने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाएगी। कई बार ऐसा भी होता है कि बिना जाने सुनी-सुनाई बात पर विश्वास कर लिया जाता है और सामने वाले के प्रति नकारात्मक प्रवृत्ति बन जाती है। दुर्भाग्य से आज हमारे देश में हिन्दुओं और मुसलमानों को लेकर यह सब हो रहा है, जिससे दूरियां और नफ़रत बढ़ती जा रही है। अब समय आ गया है कि हम बिना किसी पक्षपात के स्वयं तथ्यों और इतिहास को समझें, जानें और पढ़ें, ताकि पक्षपात और घृणा का यह मोटा पर्दा हट जाए तथा भाईचारा, सौहार्द और प्रेम का चलन आम हो जाए।

डॉ. ज़फ़र दारिक क़ासमी, जो दारुल उलूम देवबंद से फ़ाज़िल भी हैं और अलीगढ़ मुस्लिम विश्वविद्यालय से प्रशिक्षित हैं, हमारे आग्रह पर एक अहम विद्वतापूर्ण कार्य करने के लिए हमारी बधाई के पात्र हैं। मुझे उम्मीद है कि शैक्षणिक क्षेत्रों में उनके काम की सराहना

की जाएगी। इस विषय पर काम करने की आवश्यकता इसलिए भी थी कि मुसलमानों के प्रति देशवासियों के मन में जो संदेह और शंकाएं हैं, वे दूर हों और देश से घृणा का माहौल समाप्त हो, प्रेम का बोलबाला हो, क्योंकि यही देश की सुन्दरता और उसकी विशेषता रही है। देश के हालात चाहे जैसे भी रहे हों, यहां कभी भी हिंदू-मुस्लिम एकता में फ़र्क़ नहीं आया है और न आएगा।

अंत में, मैं दुआ करता हूं कि अल्लाह तआ़ला डॉ. ज़फ़र दारिक क़ासमी के प्रयासों को स्वीकारता प्रदान करे और उन्हें इस दुनिया में और आख़िरत की सफलता प्राप्त हो। आमीन!

प्रो. अख़्तरुल वासे
पूर्व डायरेक्टर
ख़ुसरो फ़ाउण्डेशन, नई दिल्ली

प्रस्तावना

भारत सभ्यता, संस्कृति और धर्मों का एक अद्‌भुत केंद्र है, लेकिन अपनी विविधता से इस प्यारी मातृभूमि की सुंदरता और भी बढ़ गई है। यदि हम भारत की प्राचीन संस्कृति और सभ्यता का अध्ययन करें, तो हम पाते हैं कि दोनों जातियों में सामाजिक रूप से कई पहलुओं में समानताएं हैं। इसलिए विभिन्न विचारों एवं मूल्यों के विकास और अस्तित्व तथा धर्मों की विविधता के बावजूद आपसी एकता और मानवीय एकजुटता का उज्ज्वल पक्ष सामने आता है। भारत की ये परम्पराएं न केवल एक-दूसरे पर निर्भरता सिखाती हैं, बल्कि, वे शांति और संतोष के रास्ते में आने वाली सभी बाधाओं को समाप्त करती दिखती हैं। जब हमारे दृष्टिकोण करूणामय और सहानुभूतिपूर्ण, भाईचारा, आपसी विश्वास और सद्‌भाव को अधिकतम सीमा तक बढ़ावा दिया जाएगा, तब भारतीय समाज अवश्य ही सांस्कृतिक, आर्थिक रूप से स्वस्थ एवं समृद्ध दिखेगा। यह भी याद रखना चाहिए कि एक समाज विकास के सभी लक्ष्यों का सामना तभी कर सकता है जब उसके भीतर समानता, सहिष्णुता, परोपकार और शांतिपूर्ण सह-अस्तित्व के सिद्धांतों का पालन किया जाता है। कट्टरता और भेदभाव की नीतियां न केवल इस देश को पतन की ओर धकेलती हैं, बल्कि सच तो यह है कि ऐसे समाज विचार, ज्ञान और न्याय की संपदा को भी खो देते हैं। इसलिए हमारी पुरानी परम्पराओं

और हमारी प्रिय मातृभूमि के सांस्कृतिक मूल्यों के अस्तित्व की रक्षा के लिए एकता और केंद्रीयता के साथ प्रयास किए जाने चाहिएं। आज बड़ी तेज़ी के साथ भारत की सार्वभौमिकता अर्थात् बहुलता में एकता को नष्ट करने का असफल प्रयास किया जा रहा है। इस बात का डर बढ़ रहा है कि इससे भारतीय समाज की समृद्धि, सौहार्दपूर्ण संबंध और हर्षोल्लास का माहौल प्रभावित होगा। अविश्वास की इस स्थिति और बढ़ती खाई के पीछे वे मिथक और भ्रांतियां हैं जो भारतीय जनता के बीच व्यवस्थित रूप से प्रचारित की गई हैं। आज भी मुसलमानों के ख़िलाफ़ व्यवस्थित तरीक़े से अनुचित बातें की जा रही हैं। उन पर तमाम तरह के आरोप लगाए जा रहे हैं। इसी का परिणाम है कि यहां के लोगों में मुसलमानों के प्रति नकारात्मक सोच बढ़ रही है, जबकि वास्तविकता इसके विपरीत है, क्योंकि मुसलमान ही वे लोग हैं, जिन्होंने हर युग में और आज भी वतन के प्रति अपने प्रेम और वफ़ादारी को व्यवहारिक रूप से सिद्ध किया है और आज भी इसके अनगिनत उदाहरण मिलते रहते हैं। अब ज़रूरत इस बात की है कि हम मुसलमानों के बारे में फैलाई जा रही ग़लतफ़हमियों को दूर करें। इसी तरह उन बातों को भी सुधारना ज़रूरी है, जिन्हें ग़लत तरीक़े से हिंदुओं से जोड़ दिया गया है। उन्हीं जातियों और समाजों की उपलब्धियां इतिहास में प्रतिष्ठित होती हैं जिनमें सामाजिक समरसता और राष्ट्रीय एकता की परम्पराओं और मूल्यों को फलने-फूलने का अवसर मिलता है। इन तथ्यों को लोगों के सामने लाना आवश्यक ही है जिनमें मुस्लिम विद्वानों और बुद्धिजीवियों ने अपने देश के संबंध में बहुत खुलापन और उदारता दिखाई है। मुस्लिम विचारकों ने न केवल मौखिक रूप से भारत के बारे में अपनी सच्ची भावनाओं को व्यक्त

किया है, बल्कि उनके लेखन में देश के प्रति अगाध प्रेम, भक्ति और वफ़ादारी के व्यावहारिक उदाहरण भी प्रस्तुत किए गए हैं। इस संबंध में, भारत की शरई हैसियत पर विद्वतापूर्ण शोध कार्य करने की आवश्यकता थी। यूं तो अतीत में इस विषय पर बहुत कुछ लिखा गया है, जिसमें फ़ाज़िल बरैलवी मौलाना अहमद रज़ा ख़ान की 'इलामुल आलाम बिअन्ना हिंदुस्तान दारुल-इस्लाम' और मौलाना सईद अहमद अकबराबादी की 'नफ़्सतुल-मस्दूर और हिन्दुस्तान की शरई हैसियत' मौजूद हैं। शैख़ुल इस्लाम मौलाना हुसैन अहमद मदनी, शैख़ुल हिंद मौलाना महमूद हसन देवबंदी और सर सैयद अहमद ख़ान जैसे विद्वानों के अलावा अधिकतर उलेमा ने भी बहुत कुछ लिखा है।

इस पुस्तक को चार अध्यायों में विभाजित किया गया हैः

पहले अध्याय में भारत की उत्कृष्टता और हिंदू धर्म, हिंदू देवी-देवताओं और उनके साहित्य की चर्चा की गई है। इसमें कहा गया है कि मुसलमानों ने हिंदुओं के धर्म के प्रति बहुत सकारात्मक और संतुलित रवैया अपनाया है।

इसी प्रकार दूसरे अध्याय में उन परम्पराओं को प्रस्तुत किया गया है जो दोनों जातियों की एकता और सद्भाव पर आधारित हैं।

तीसरे अध्याय में देशभक्ति और धर्म निरपेक्षता की चर्चा की गई है, जिसका प्रमाण इस बात से मिलता है कि भारत के मुसलमानों में धर्म निरपेक्ष विचारधारा को स्वीकार करने के साथ-साथ अपनी मातृभूमि के प्रति असीम प्रेम है।

चौथे अध्याय में आज़ादी से पहले और बाद में भारत की शरई हैसियत क्या थी, इस पर विस्तृत चर्चा की गई है। निश्चय ही लेखक का यह विनम्र प्रयास भारतीय समाज में आपसी विश्वास, समरसता और सहिष्णुता के विकास में मील का पत्थर साबित होगा। हमें ख़ुद

और हमारी पीढ़ियों को एक अच्छा और शांतिपूर्ण वातावरण मिल सकेगा।

अंत में यह कहना आवश्यक प्रतीत होता है कि इस कार्य में बहुत सी त्रुटियाँ रह गई होंगी, इसलिए पाठकों से अनुरोध है कि उन्हें क्षमा कर दें। मैं उन महानुभावों के प्रति कृतज्ञ हूँ जिन्होंने इस शोध प्रबंध के प्रयोजन एवं संपादन में किसी भी प्रकार से मेरी सहायता की है।

मैं दुआ करता हूं कि अल्लाह तआला शिक्षित हलकों में इस प्रयास को स्वकृति प्रदान करे और लेखक के लिए सवाब (पुण्य-लाभ) का साधन बनाए। (आमीन)

डॉ. ज़फ़र दारिक क़ासमी

पहला अध्याय

भारत की धार्मिक, सामाजिक और राजनीतिक व्यवस्था

O

भारत एक लोकतांत्रिक देश है, यहाँ अनेक धर्म और मत पाए जाते हैं। प्यारी बहुरंगी मातृभूमि की बहुलता और अनेकता में एकता ने सर्वधर्म और विभिन्न सभ्यताओं को एक-दूसरे के बहुत क़रीब ला दिया है। इस प्रकार विश्व में पाई जाने वाली सभी सभ्यताओं और संस्कृतियों की तुलना में भारत की अपनी एक अलग पहचान है। इसलिए देश के इन धार्मिक और सामंजस्यपूर्ण मूल्यों को लागू करने की आवश्यकता है। इस समय हमारे चारों ओर जो वातावरण विकसित हो रहा है, उसने आपसी एकता और समान मूल्यों को बहुत परेशान किया है। इसके कई कारण हो सकते हैं लेकिन इनमें सबसे महत्वपूर्ण बात यह है कि आज भारतीय मुसलमानों के संदर्भ में इतिहास और सभ्यता के नाम पर बहुत सी ग़लतफ़हमियां फैला दी गई हैं। इसलिए इस लेख में हम न केवल अपने बीच प्रचलित आधारहीन बातों को दूर करेंगे, बल्कि हम यह भी समझाने का प्रयास करेंगे कि भारत और भारतीय सभ्यता एवं संस्कृति के महत्व और उत्कृष्टता के बारे में मुस्लिम विचारकों और विद्वानों के विचार कितने महत्वपूर्ण हैं।

भारत की उत्कृष्टता

यह सच है कि भारत और इसके समाज में शुरू से ही भिन्न-भिन्न विशेषताएं रही हैं। यही कारण है कि मुस्लिम विद्वानों ने देश की उत्कृष्टता के बारे में बहुत सकारात्मक बातें कही हैं। आज़ाद बिलगिरामी

ने अपनी पुस्तक 'सुब्हतुल मरजान फ़ी आसारे हिन्दुस्तान' में हज़रत आदम अलैहिस्सलाम के समय का उल्लेख किया हैः

> ''जब आदम अलैहिस्सलाम पहली बार भारत में उतरे और यहाँ वही (आकाशवाणी) आई, तो यह समझना चाहिए कि यही वह देश है जहाँ ईश्वर का पहला आदेश आया था और चूंकि नूरे मुहम्मदी हज़रत आदम के माथे में धरोहर था, इससे यह साबित होता है कि सबसे पहले हज़रत मुहम्मद सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम का प्रथम प्रदर्शन इस भूमि में हुआ है। आपने फ़रमाया कि मुझे भारत की ओर से दिव्य सुगंध आती है।''(1)

अल्लामा सुयुती ने इब्ने जरीर, हाकिम, बैहक़ी और इब्ने असाकिर के संदर्भ से लिखा है कि हज़रत अली ने फ़रमायाः

> ''सबसे पवित्र और सबसे सुगंधित स्थान भारत है क्योंकि यहां हज़रत आदम (अ.स.) उतरे थे और यहाँ के पेड़ों में स्वर्ग की सुगंध का प्रभाव है।''(2)

सैयद सबाहुद्दीन अब्दुर्रहमान अलीग ने 'हिन्दुस्तान के अह्दे वुस्ता की एक झलक' (जो हिंदू और मुस्लिम लेखकों के निबंधों का संग्रह है) में शेख़ अली रूमी के संदर्भ से लिखते हैं कि ''भारत वह स्थान है जहां ज्ञान के स्रोत सबसे पहले फूटे।''(3)

मुसलमानों की दृष्टि में भारत की महानता और उत्कृष्टता क्या है? इसका अनुमान निम्नलिखित उद्धरण से लगाया जा सकता है। अतः सैयद सुलेमान नदवी के शोध के अनुसार पवित्र क़ुरआन में ''इस जन्नत की तीन सुगंधों का उल्लेख मिलता है, अर्थात मुश्क

(1) बिलगिरामी, ग़ुलाम अली आज़ाद हुसैन, वास्ती, सुब्हतुल मरजान फ़ी आसारे हिन्दुस्तान, (भूमिका एवं शोध मुहम्मद सईद तरंजी) बैरूत, लेबनान, 2015, पृ. 42
(2) उपरोक्त संदर्भ, पृ. 44
(3) सैयद सबाहुद्दीन अबदुर्रहमान (अलीग), हिन्दुस्तान के अह्दे वुस्ता की एक झलक, पृ. 2

(कस्तूरी), ज़ंजबील (सोंठ या अदरक) और काफ़ूर (कपूर)।''[1]

इसी प्रकार सैय्यद सबाहुद्दीन अब्दुर्रहमान ने अपनी उपरोक्त पुस्तक में प्रो. मुहम्मद ज़ुबैर सिद्दीक़ी (कलकत्ता विश्वविद्यालय) की पत्रिका 'इन्डोनेशियन कल्चर' के संदर्भ से कहा हैः

> ''शुरु में ही लोगों को भारत से बड़ा लगाव था और वह इस्लाम से बहुत पहले, अपनी लड़कियों और प्रेमिकाओं का नाम 'हिंदा' रखते थे, और कई भारतीय चीज़ों के नाम, जैसे कि हिन्दी तलवार, संदल (चंदन) और ऊद का उल्लेख इस्लाम से पूर्व जाहिलियत के समय के कवियों के काव्य में पाया जाता है।''[2]

उपरोक्त पंक्तियों में वर्णित घटनाओं और कथनों का विवेचन भी किया गया है। हालांकि यहां केवल यह बताना लेखक का उद्देश्य है कि भारत की उत्कृष्टता, पवित्रता, इसकी महानता और गौरव को मुस्लिम विचारकों ने बिना किसी पक्षपात और भेदभाव के प्रस्तुत किया है। बेशक इन परम्पराओं से भारतीय समाज में सामान्य रूप से सद्भाव पैदा होगा और आपसी द्वेष और घृणा समाप्त होगी। भारत जैसे मिश्रित देश और बहुलतावादी समाज को नई आत्मा मिलेगी। इस संदर्भ में बुज़ुर्ग बिन शहरयार की पुस्तक 'अजाइबुल हिंद' के माध्यम से यह लिखना उचित प्रतीत होता हैः

> ''सरनदीप (लंका) और उसके आसपास वालों को इस्लाम के पैगंबर के जन्म का हाल जब मालूम हुआ तो उन्होंने अपने में से एक समझदार आदमी को स्थिति को जांचने के लिये अरब भेजा। वह रुकते-रुकाते जब मदीना पहुंचा तो रसूलुल्लाह (सल्ल.) के प्रथम ख़लीफ़ा हज़रत

(1) मौलाना सैयद सुलेमान नदवी, अरब व हिन्द के तअल्लुक़ात, मआरिफ़ प्रैस आज़मगढ़, 2013, पृ. 54

(2) हिन्दुस्तान के अह्दे वुस्ता की एक झलक, पृ. 2

> अबूबक्र सिद्दीक़ रज़ियल्लाहु अन्हु की ख़िलाफ़त (शासन) समाप्त हो चुका था और हज़रत उमर रज़ि. का समय था। वह उनसे मिला और मुहम्मद (सल्ल.) के बारे में जानकारी प्राप्त की। हज़रत उमर रज़ि. रसूलुल्लाह (सल्ल.) के विषय में बहुत विस्तार से बताया। जब वह वापस हुआ, मकरान (बलूचिस्तान के पास) पहुंचकर मर गया। उसके साथ उसका एक हिंदू नौकर था। वह सही सलामत सरनदीप पहुंच गया और ख़लीफ़ा हज़रत उमर की फ़क़ीराना और सादा जीवन शैली का उल्लेख किया और बताया कि वे कैसे विनम्र और सज्जन हैं और पेवन्द वाले कपड़े पहनते हैं और मस्जिद में सोते हैं। अब यह लोग (सरनदीप के हिन्दू) मुसलमानों के साथ इतना प्रेमपूर्ण व्यवहार करते हैं, वह इस कारण से हुआ।''[1]

इस घटना से जो बातें निकलती हैं उनमें से एक तो यह है कि प्राचीन भारत में हिंदू-मुस्लिम संबंधों को सुधारने का प्रयास किया गया। वास्तव में यही हमारे देश की विशेषता है कि भाईचारा, सहिष्णुता और आपसी सदभाव ने भारत की सांस्कृतिक और संवैधानिक मूल्यों को मज़बूत किया है। भारत में जो साझे मूल्य पाए जाते हैं और उसकी उत्कृष्टता के सम्बंध में जो प्रमाण मुस्लिम विद्वानों और8 उलमा के लेखन में पाए जाते हैं वह भारतीय समाज के मूल्यों को मज़बूत करते हैं और सहिष्णुता एवं मेल-मिलाप के दिशानिर्देश निर्धारित होते हैं।

> ''भारत से मुसलमानों की देशभक्ति, प्रेम और सद्गुणों पर आधारित लेखन के बहुत से ख़ज़ाने मौजूद हैं। अल्लामा शिब्ली नोमानी ने 'मक़ालात-ए-शिब्ली' में अमीर ख़ुसरो के

(1) हिन्दुस्तान के अह्दे वुस्ता की एक झलक, पृ. 3-4

संदर्भ से लिखा है कि उन्होंने अपने काव्य में भारत के गुणों और स्थिति का बड़ी श्रद्धा और सदभावना के साथ वर्णन किया है। शिबली नोमानी के शोध के अनुसार अमीर ख़ुसरो ने एक मस्नवी 'नुह-सिपहर' नाम से लिखी है। इसमें उन्होंने भारत के गुणों पर एक अध्याय स्थापित किया है। इस प्रकार डॉ. वहीद मिर्ज़ा ने मस्नवी 'नुह सिपहर' को संपादित करके प्रकाशित किया। इस पर अंग्रेज़ी में विस्तृत एवं उपयोगी भूमिका लिखी है जिसमें वह कहते हैं कि यह मस्नवी बड़ी रोचक है। इसमें भारत की जलवायु, फूल, पक्षी, जानवरों और यहां की विद्याओं, धार्मिक मान्यताएं और भाषाओं से सम्बंधित बहुत सी उपयोगी जानकारियां हैं। अमीर ख़ुसरो ने ख़ुरासान और अन्य देशों पर भारत की श्रेष्ठता सिद्ध की है। वे भारत को धरती का स्वर्ग इसलिए मानते हैं क्योंकि हज़रत आदम अ.स. जब जन्नत से निकले तो भारत आए। जहाँ की भूमि उर्वर और उपजाऊ है और जहाँ की जलवायु में संतुलित है और जहाँ मोर और साँप भी हैं।''(1)

अमीर ख़ुसरो ने जो मसनवियां लिखी हैं और जिनमें भारत की महिमा का जगह-जगह उल्लेख है, उनमें निम्नलिखित इश्क़िया मसनवियां हैंः 'मतलए अनवार', 'शीरीन व ख़ुसरो', मजनूं व लैला', आईना-ए-सिकंदरी, हश्त-बहिश्त। इसके अलावा ऐतिहासिक मसनवियां इस प्रकार हैंः 'क़िरानुस्सादैन', 'मिफ़्ताहुल फ़ुतूह', 'आशिक़ा', 'नुह-सिपहर', 'तुग़लक़ नामा' आदि। उपरोक्त सभी प्रमाणों की रौशनी में यह कहना उचित होगा कि प्राचीन काल से लेकर आज तक भारत के दामन में अनेक क्रांतियाँ और सद्‌गुण हैं। इन सब बातों के होते हुए भी महत्वपूर्ण बात यह है कि भारतीय मुसलमानों ने सर्वसम्मति से न

(1) हिन्दुस्तान के अह्‌दे वुस्ता की एक झलक, पृ. 195-197

केवल भारत की महानता का उल्लेख किया है, बल्कि मातृभूमि के प्रति उनकी आस्था और प्रेम तथा उनकी देशभक्ति भी स्पष्ट है। इसलिए इस दर्शन और चिंतन को आगे बढ़ाने की आवश्यकता है, ताकि भारतीय समाज को हर तरह के अनाचार और भ्रष्टाचार से मुक्त किया जा सके।

हिंदू धर्म और मुसलमान

ज़ाहिर है कि भारत विभिन्न विचारों और अनेक धर्मों और मतों का सबसे अच्छा केंद्र और धुरी है, लेकिन यह भी सच है कि भारत का सबसे पुराना धर्म हिंदू धर्म है। अब देखते हैं कि हिंदू धर्म के बारे में मुसलमानों की क्या राय है। यहां पहले दीन और धर्म के सम्बंध में एक सिद्धांत को समझना आवश्यक है जो डॉ. मुहम्मद उमर साहब ने 'आईन-ए-अकबरी' के संदर्भ से अपनी पुस्तक 'हिन्दुस्तानी तहज़ीब का मुसलमानों पर असर' में लिखा हैः

''किसी भी धर्म या मज़हब में कोई विशेषता नहीं है। केवल एक मोहक सुंदरता है जो अलग-अलग तरीक़ों से ख़ुद को प्रकट कर रही है। वह अपने विश्वासों, अपने सपनों और विचारों में हमेशा ख़ुश और प्रफुलिल्त दिखती है, लेकिन जब कोई व्यक्ति इन आदतों को छोड़ देता है और विशेष रंग की किरणों के संपर्क में आता है, तो उसकी आंखें खुल जाती हैं और अनुराग की प्रवृत्ति बिखर जाती है। यदि कोई मर्मस्पर्शी इन रहस्यों को उजागर करता है, भाग्यहीन लोग उसे पागल समझते हैं, उसकी बातों पर विश्वास नहीं करते हैं, उसे काफ़िर और नास्तिक कहते हैं और उसका जीवन समाप्त कर देते हैं, लेकिन जब मानवमात्र के सौभाग्य का समय आता है तब ईश्वर की इच्छा यह

होती है कि समय सत्यता के शुभ वरदानों से लाभ उठाए तब शासक को एक-रंगी रहस्यों से अवगत किया जाता है और राजा न केवल एक बाहरी शासक है बल्कि एक आंतरिक मार्गदर्शक भी है। हज़रत के धन्य हृदय में आदेश और मार्गदर्शन की लहरें उठीं, और सत्य ज्ञानी राजा ने अब विवश होकर नेतृत्व करने को ईश्वर की इच्छा समझा और सबका ध्यान रखकर सत्य की खोज करने वाले सत्य के प्यासे होठों को सच्चे मार्गदर्शन से तृप्त करने लगे।''[1]

इस तथ्य का उल्लेख प्रो. ख़लीक़ अहमद निज़ामी ने अपनी पुस्तक 'सलातीन-ए-दिल्ली के मज़हबी रुजहानात' में टॉलस्टॉय की प्रसिद्ध पुस्तक 'What is Religion? and other Writings' के संदर्भ से इस प्रकार किया हैः

''मध्य युग में दो चीज़ों ने मानव विचार को प्रभावित किया - शक्ति और धर्म, हालांकि, कारलायल का सिद्धांत है कि मानव शरीर पर एक अनंत शक्ति द्वारा प्रभुत्व प्राप्त किया जा सकता था, लेकिन दिल पर जीत संभव नहीं। धर्म का शासन मनुष्य की इन्हीं मूलभूत भावनाओं पर था जहाँ उसके विचारों और चिंतन को ढाला जा सकता और जहाँ उसके व्यक्तित्व का निर्माण होता था, सम्भवतः इसी महत्व को देखते हुए कारलायल ने कहा था कि यदि किसी व्यक्ति या किसी जाति के इतिहास की आत्मा तक पहुंचना हो तो उसकी धार्मिक मान्यताएं जांच लेनी चाहिएं।''[2]

इसी प्रकार अनेक पाश्चात्य दार्शनिकों ने अपने-अपने ढंग से धर्म के स्वरूप और उसके साथ मानवीय संबंधों के स्वरूप की समीक्षा की

(1) डॉ. मुहम्मद उमर, हिन्दुस्तानी तहज़ीब का मुसलमानों पर असर, 1975, प्रकाशन विभाग ए.एम.यू., अलीगढ़, पृ. 24

(2) प्रो. ख़लीक़ अहमद निज़ामी, सलातीन-ए-दिल्ली के मज़हबी रुजहानात, अलजमीअत प्रैस दिल्ली, 1958, पृ. 3

है। निदरलैन्ड के प्रमुख विद्वान G.Van Der Leeuw ने पता लगाया हैः

''धार्मिक भावनाएं मनुष्य के चरित्र और उसके द्वारा बनाई गई संस्थाओं में कैसे प्रकट होती हैं।''[1]

उपरोक्त विचारों के संदर्भ में कहा जा सकता है कि धर्म का मानव जीवन पर बहुत प्रभाव है, यही कारण है कि ब्रह्मांड में रहने वाला मानव समाज किसी न किसी विचार, सिद्धांत और विश्वास से अनिवार्य रूप से जुड़ा हुआ है, और इसके साथ यह तथ्य भी स्पष्ट है कि किसी भी धर्म, मज़हब या विचारधारा का अपमान नहीं करना चाहिए, यही सिद्धांत पवित्र क़ुरआन में भी वर्णित किया गया है। क़ुरआन में इसका उल्लेख हैः

وَلَا تَسُبُّوا الَّذِينَ يَدْعُونَ مِن دُونِ اللهِ فَيَسُبُّوا اللهَ عَدْوًا بِغَيْرِ عِلْمٍ كَذٰلِکَ زَيَّنَّا لِكُلِّ أُمَّةٍ عَمَلَهُمْ ثُمَّ إِلَىٰ رَبِّهِم مَّرْجِعُهُمْ فَيُنَبِّئُهُم بِمَا كَانُوا يَعْمَلُونَ۔

यह लोग अल्लाह के सिवाय जिनको पुकारते हैं उन्हें बुरा न कहो क्योंकि वे हद से आगे बढ़ कर अज्ञानता के कारण अल्लाह को बुरा-भला कहने लगेंगे, इस प्रकार हमने प्रत्येक समूह का सुन्दर कृत्य बना दिया है, फिर उन्हें अपने अल्लाह के पास लौटना है, और वह उन्हें बताएगा कि वे क्या कर रहे थे।[2]

इस आयत से यह ज्ञात हुआ कि सृष्टि में प्रचलित सभी धर्म शामिल हैं, इसलिए किसी भी विचार, दर्शन, धर्म या आस्था का अपमान करना सख़्त वर्जित है, बल्कि सत्य यह है कि आपसी प्रेम, सद्भाव और राष्ट्रीय एकता को बढ़ावा देने के लिए धर्मों का परस्पर सम्मान अति

(1) प्रो. ख़लीक़ अहमद निज़ामी, सलातीन-ए-दिल्ली के मज़हबी रुजहानात, पृ. 3-4

(2) सूरह अल-अनआ़म, आयत 108

आवश्यक है। रहा यह प्रश्न कि मुस्लिम विद्वान हिंदू धर्म के बारे में क्या कहते हैं? तो इस संबंध में यह उल्लेख किया गया है कि भारत में हिंदू-मुस्लिम सह-अस्तित्व का प्रभाव यह था कि मुसलमानों ने हिंदू धर्म के गुणों और दोषों का गहराई से अध्ययन किया और औपचारिक रूप से किताबें लिखीं, इस पर डॉ. मुहम्मद उमर ने अपनी किताब 'हिन्दुस्तानी तहज़ीब का मुसलमानों पर असर' में लिखा है कि दाराशिकोह ने 'मजमउल-बहरैन' में इसे साबित करने की कोशिश की हैः

> ''हिंदू धर्म और इस्लाम दो विपरीत धर्म नहीं हैं, बल्कि उनका एक ही स्रोत है। दो अलग-अलग धाराएं अलग-अलग बहती हुई प्रतीत होती हैं, पर अंततः वे दोनों एक बिंदु पर एक दूजे में विलीन हो जाती हैं।''(1)

डा. मुहम्मद उमर ने भी दाराशिकोह के संदर्भ से लिखा हैः

> ''तथ्यों की सच्चाई और सूफ़ियों के धर्म को जानने के बाद और इस महान विचार का वरदान पाने के पश्चात भारत के एकेश्वरवादी विद्वानों के साथ समान चर्चा और उनके साथ उनके जुड़ाव के बाद उनके धार्मिक विश्वासों की समझ हासिल करने की इच्छा उत्पन्न हुई भारत के आलिमों के साथ विचार-विमर्श और उनकी संगति के पश्चात जिन्होंने धार्मिक मामलों का सम्पूर्ण ज्ञान प्रप्त कर लिया था, धर्म की आत्मा तक पहुंच गए थे, मुझे (दाराशिकोह के) शब्दों के अंतर के सत्य-खोज के मार्ग और शैली में कोई महत्वपूर्ण अंतर नहीं दिखाई दिया। दोनों पक्षों के विचार एकत्रित करके, जिनका ज्ञान एक सत्य की खोज के लिए आवश्यक और लाभदायक है, मैंने एक पुस्तिका लिखी जिसका नाम 'मजमउल-बहरैन' रखा क्योंकि यह

(1) हिन्दुस्तानी तहज़ीब का मुसलमानों पर असर, पृ. 34

> दोनों समुदायों के सत्य साधकों की बुद्धिमानी और सच्चाई का संग्रह है''(1)

एक बार मिर्ज़ा मज़हर जान-ए-जाना से पूछा गया कि क्या भारत के काफ़िर अरब के मुशरिकों की तरह अपना विकृत धर्म रखते है या इस धर्म का कोई मूल था और अब रद्द हो गया है, तथा उनके गुरुओं के प्रति कैसा व्यवहार रखना चाहिए? मिर्ज़ा मज़हर ने उत्तर दियाः

> ''यह स्पष्ट होना चाहिए कि भारत के लोगों के प्राचीन ग्रंथों से जो कुछ भी ज्ञात होता है वह यह है कि मानव जाति के जन्म की शुरुआत में अल्लाह की रहमत ने लोगों को आजीविका में सुधार करने के लिए वेद के रूप में एक ग्रंथ, जिसमें चार अध्याय हैं और उचित अनुचित की आज्ञाएं एवं भूत और भविष्य की घटनाएं हैं, एक देवदूत ब्रह्मा द्वारा प्रकट किया गया जो सृष्टि की रचना का माध्यम है। उस युग के खोजकर्ता विद्वानों ने उस ग्रंथ से छः धर्म निकाले और नियम तथा आस्था का आधार स्थापित किया। उसे धर्म शास्त्र कहते हैं, अर्थात धर्म कला, जिसका आशय 'वाक कला' है। इसी प्रकार (अनुसंधान कर्ताओं) ने मानव जाति के चार वर्ग बनाए और प्रत्येक वर्ग के लिए अलग मत निर्धारित किया और उसे 'कर्म शास्त्र' का नाम दिया, अर्थात धार्मिक विधि। यह लोग अवतरित आदेशों को नकारते हैं, किन्तु समय और प्रकृति के अनुसार परिवर्तन आवश्यक हैं, इसलिए संसार के सम्पूर्ण काल-चक्र को चार भागों में विभाजित किया गया है और प्रत्येक भाग को युग कहा जाता है। प्रत्येक युग के प्रतीक इन्हीं चार अध्यायों से निकाले हैं। बाद वालों द्वारा की गई कुछ व्याख्याएं विश्वसनीय नहीं हैं। उनके सभी संप्रदाय ईश्वर

(1) हिन्दुस्तानी तहज़ीब का मुसलमानों पर असर, पृ. 34-35

की एकता के बारे में सहमत हैं और संसार के विधाता में विश्वास करते हैं। वे संसार को जनित मानते हैं। संसार के विनाश, अच्छे- बुरे कार्य के लिए दण्ड-पुरस्कार तथा पूर्ण जवाबदेही को मानते हैं। भौतिक ज्ञान, तपस्या, जिज्ञासा तथा दिव्य ज्ञान में विश्वास रखते हैं। उनकी मूर्तिपूजा बहुदेववाद के कारण नहीं है, बल्कि इसके अन्य कारण हैं:

उनके विद्वानों ने मानव आयु को चार भागों में बांटा है। पहला ज्ञान के लिए, दूसरा आजीविका और संतान के लिए, तीसरा कर्मों की शुद्धता और आत्म-गौरव के लिए, चौथा ब्रह्मचर्य के अभ्यास के लिए, जो मानव पूर्णता का उच्चतम स्तर है, और मोक्ष, जिसे महामुक्ति कहा जाता है, उस पर आधारित है। यह इस धर्म के नियमों और विनियमों में पूर्ण है। तो यह ज्ञात हुआ कि यह एक निर्धारित धर्म था और अब इसे निरस्त कर दिया गया है, और शरीयत में निरस्त धर्मों में यहूदी और ईसाई धर्म के अतिरिक्त किसी और का उल्लेख नहीं है, हालांकि कई अन्य धर्मों को निरस्त कर दिया गया है और कई पैदा भी हो गए हैं। ज्ञात हो कि सूरह-ए-फ़ातिर की आयत के अनुसार, 'कोई वर्ग ऐसा नहीं जिसमें पैग़म्बर न भेजा गया हो' और अन्य प्रमाणों के अनुसार भारतीय क्षेत्रों में भी नबी और रसूल भेजे गए, जिनके हालात उनकी किताबों में लिखे हुए हैं और जो कुछ बचा है, उससे अंदाज़ा लगाया जा सकता है कि वे सब महान आत्मा थे, और सार्वजनिक कृपा इस विशाल देश के मानवीय मामलों को नहीं भूली थी। हज़रत मुहम्मद (सल्ल.) के आने से पहले हर जाति में पैगंबर भेजे गए थे, और पूरी जाति को अपने पैग़म्बर का आदेश मानना अनिवार्य था न कि अन्य पैग़म्बरों का। परन्तु हज़रत मुहम्मद (सल्ल.) के बाद रहती दुनिया तक कोई अन्य पैग़म्बर (ईश-दूत) न

होगा। किसी को उनकी अवज्ञा का अधिकार नहीं। इसलिए मुहम्मद (सल्ल.) के आगमन के एक हज़ार चार सौ पचास वर्ष बीत चुके हैं, जो कोई उनका अनुयायी नहीं हुआ, वह काफ़िर है, लेकिन अगले लोग नहीं, अथवा सूरह-ए-ग़ाफिर की व्याख्या के अनुसार, 'उनमें से कुछ का वर्णन आपके सामने किया और कुछ का नहीं'। जब हमारी शरीयत बहुत से पैग़म्बरों के बारे में मौन है, तो हमें भारत के पैग़म्बरों के बारे में भी चुप रहना चाहिए। उनका पालन करने वालों के विश्वास को अधर्म ठहराना ठीक है न उनकी मुक्ति का निर्धारण करना चाहिए, इस मामले में सद्भावना आवश्यक है। बशर्ते कि बीच में भेद-भाव न हो और फ़ारस के लोगों के पक्ष में कोई पक्षपात न हो, बल्कि हर उस देश के लोगों के पक्ष में हो जो हज़रत मुहम्मद सल्ल. के आने से पहले चले गए हों और शरीयत की भाषा जिनके बारे में चुप हो, और इन लोगों की बुतपरस्ती की असलियत यह है कि कुछ फ़रिश्ते जो अल्लाह के हुक्म से इस दुनिया में हैं या कुछ महान लोगों की रूहें जिनका शरीर छोड़ने के बाद भी इस सृष्टि में अधिकार रहता है, अथवा कुछ उन लोगों की राय में हज़रत ख़िज़्र की तरह वह जीवित हैं और वे उनकी आकृति बनाकर पूजते हैं और उनकी यह क्रिया जिक्र रब्त से मेल खाती है, जो मुस्लिम सूफ़ियों की पद्धति है जो अपने पीरों की उपस्थिति की कल्पना करते हैं और इससे लाभ प्राप्त करते हैं। फ़र्क़ सिर्फ़ इतना है कि (मुस्लिम) अपने पीर की मूर्ति नहीं बनाते, लेकिन यह बात काफ़िर अरबों के विश्वास के अनुसार नहीं है। क्योंकि वे तो बुतों को अपने आप पर अधिकार रखने वाला समझा करते थे, उन्होंने इसे अल्लाह तआला के पूर्ण अधिकार के रूप में नहीं माना और वे अपने देवता को धरती के ईश्वर और

आकाश के ईश्वर के रूप में जानते थे। यह (उलूहियत) देवत्व में शिर्क है। उनका (काफ़िरे हिन्द) सज्दा करना सज्दा-ए-तहनियत है। साष्टांग प्रणाम पूजा नहीं है, जो उन लोगों के धर्म में माता, पिता और गुरु आदि को भी प्रणाम करते हैं और उसे दण्डवत कहते हैं। पुनर्जन्म में विश्वास रखना कुफ़्र नहीं है।''(1)

इसके अतिरिक्त डॉ. मुहम्मद उमर ने लिखा है कि ''जहाँगीर की तरह शाहजहाँ हिंदू जोगियों और तपस्वियों में विश्वास नहीं करता था, लेकिन उसके शासनकाल में ये प्रवृत्तियाँ समाप्त नहीं हुईं और अपने शासनकाल के अंतिम दिनों में उसे दाराशिकोह की बादशाहत में भागीदारी से बल मिला। दाराशिकोह, मुल्ला शाह बदख़्शी, सरमद शहीद और मोहसिन फ़ानी के अतिरिक्त, कई अन्य उदार आध्यात्मिक समझ वाले लोग दाराशिकोह के विचारों के समर्थक थे। उनके अतिरिक्त और भी कई मुसलमान थे जो हिन्दू साधुओं और जोगियों की आध्यात्मिकता को मानते थे और उनसे प्रभावित भी थे।''(2)

'तहक़ीक़ मा-लिलहिन्द' में एक बहुत महत्वपूर्ण बात कही गई है। उसे यहाँ प्रस्तुत करना आवश्यक प्रतीत होता हैः

''अल्लाह की महिमा में हिंदुओं का विश्वास यह है कि वह एकमात्र, शाश्वत है, जिसका कोई आरंभ नहीं है, कोई अंत नहीं है, अपने कार्यो में स्वतंत्र है, सक्षम है, बुद्धिमान है, जीवित है, जीवन देता है, वह वही है जो जीवित रखने वाला है, वह अपने शासन में एकमात्र ऐसा है जिसका कोई समरूप और कोई समान नहीं है, न वह किसी के समान है, न ही उसके समान कुछ है।''(3)

---

(1) ख़लीक़ अंजुम, मिर्ज़ा मज़हर जानेजानां के ख़ुतूत, अलजमीअत प्रैस 1962, पृ. 92-95

(2) हिन्दुस्तानी तहज़ीब का मुसलमानों पर असर, पृ. 35

(3) अबू रैहान मुहम्मद बिन अहमदबैरूनी (मृ. 1048) किताब अलबैरूनी फ़ी तहक़ीक़ मा-लिलहिंद', अनुवाद, सैयद असगर अली, 2005

मुहम्मद सईद ने प्रसिद्ध शोधकर्ता और लेखक अबुल फ़ज़्ल फ़ैज़ी की लोकप्रिय पुस्तक 'आईन-ए-अकबरी' का उल्लेख करते हुए अपनी पुस्तक 'उमरा-ए-हुनूद' में हिंदुओं के धर्म के बारे में लिखा हैः

''मैं लंबे समय से हिंदू बुद्धिजीवियों की संगति में रहा हूं और मैंने प्रत्येक संप्रदाय और धर्म के नियमों का पता लगाया है और उन्हें भविष्य के बुद्धिमान प्लेटो, अरस्तू और सूफ़ियों के नियमों से तुलना करके बिना किसी हस्तक्षेप और पक्षपात के सत्य का पता लगाने में सक्षम होंगे। सत्य क्या है, हिन्दुओं की पुस्तकों में बहुत अच्छे और उत्कृष्ट निर्देश हैं, मैं अपने विषय को कैसे निभाऊँ, जब मैं संसार में डूबा हुआ हूँ (हिंदू) भगवान को प्रसन्न करने के उद्देश्य से अपना जीवन सहर्ष बलिदान कर देते हैं। सब एक ईश्वर को मानते हैं और यदि लोग पत्थर और लकड़ी या किसी और चीज़ की बनी मूर्तियों की पूजा करते हैं तो मूर्ख मनुष्य बुतपरस्ती जानता है, परन्तु मैंने बहुत से ज्ञानियों से जाना है कि उन्होंने अपने हृदय से कुछ ईश्वर-पूजक हस्तियों की मूर्ति स्थापित की है ताकि उनका हृदय दूसरी ओर न भटके और वे ईश्वर-पूजा को आवश्यक और सर्वथा आवश्यक समझते हैं। अपनी समस्त पूजा और आदतों में उस से मदद मांगते हैं और उन्हें सबसे श्रेष्ठ मानते हैं और ब्रह्मा को अपना रचयिता, विष्णु को सृष्टि का पालनहार और जीव जन्तु को जीवित रखने वाला के रूप में जानते हैं और महादेव को संहारक और समाप्त करने वाला मानते हैं। एक समूह का मानना है कि ईश्वर ने इन पवित्र मूर्तियों में इस प्रकार जन्म लिया है कि तनिक भी अपवित्र नहीं हुआ। यह उदाहरण बिल्कुल वैसा ही है जैसे ईसाई मसीह का सम्मान करते हैं और एक समूह इस बिंदु पर है कि एक व्यक्ति अपने

परिष्कार, ईश्वरत्व और अच्छी आदतों के साथ उच्च पद पर पहुंचता है, अर्थात इन लोगों में भक्ति और आत्म-त्याग इतना स्पष्ट है कि अन्य किसी भूभाग में नहीं है।''[1]

इसी प्रकार दाराशिकोह हों, अलबैरूनी हों, मिर्ज़ा मज़हर जान-ए-जानां हों या अन्य बुद्धिजीवी जिन्होंने हिन्दुओं के धर्म और उनकी संस्कृति का बहुत ही विस्तृत और गहरा अध्ययन किया है और यही कारण है कि उन्होंने अपनी रचनाओं में जो लिखा और कहा है वह बहुत महत्वपूर्ण है। दूसरी बात यह है कि उपरोक्त विचारों से किसे आपत्ति हो सकती है? लेकिन इन विचारों को यहां प्रस्तुत करने का उद्देश्य यह दिखाना है कि मुसलमानों ने कितनी विशाल हृदयता का प्रदर्शन किया है और हिंदुओं ने धर्म और दीन के बारे में बहुत ही उचित और संतुलित शब्द बोले हैं। इन विचारों के प्रसार से जनस्तर पर लाभ प्राप्त होगा और दोनों समुदायों के बीच शांति और सद्भाव होगा। यहां यह उल्लेख करना भी ज़रूरी है कि जहां हिंदू सभ्यता या हिंदू धर्म के भीतर कई आयाम और जटिलताएं हैं, वहीं मुसलमानों का निष्पक्ष चरित्र और उसके प्रति दृष्टिकोण बहुत उपयुक्त है। निश्चय ही इससे देश के सांस्कृतिक मूल्य स्थिर होंगे, वहीं यह भी ज्ञात होगा कि मुसलमानों ने अपने धर्म के अतिरिक्त अन्य धर्मों के बारे में भी बहुत कुछ लिखा है। इतिहासों और धार्मिक लेखों में जो प्रमाण मिलते हैं, वे यह बताते हैं कि प्रारंभ में, विशेष रूप से हिन्दुओं की मान्यता बहुदेववाद पर नहीं अपितु एकेश्वरवाद पर आधारित है, ये वे सामान्य तत्व हैं जिनके आधार पर अनेक मुस्लिम विद्वानों और सूफ़ियों ने हिन्दू धर्म की प्रशंसा और अनुमोदन किया है। इस प्रकार अन्य मुस्लिम विद्वानों ने भी मूर्ति पूजा की निन्दा नहीं की है, इसी कारण है कि उस काल के साहित्य में मूर्तिपूजा की निन्दा नहीं पाई जाती है क्योंकि वे

(1) मुंशी मुहम्मद सईद अहमद मारहरवी, ओमरा-ए-हनूद, अंजुमन तरक़्क़ी उर्दू औरंगाबाद दक्कन, 1932, पृ. 28-30

लोग बाहरी कृत्यों और संस्कारों को अधिक महत्व नहीं देते थे। बल्कि इन क्रियाओं में छिपी हुई भावनाओं का पूरा आदर करते थे। 'जोश' ने बुतपरस्ती के बारे में कहा हैः-

चश्म-ए-वहदत से गर कोई देखे
बुतपरस्ती भी हक़-परस्ती है

'वाकिफ़' लाहौरी ने सलाह दी है कि हर मज़हब और क़ौम के नेक लोगों के साथ बैठो, पक्षपात को छोड़ो और उनकी संगति से आध्यात्मिक आशीर्वाद प्राप्त करो। हर देश में अच्छी संगति की चाहत होती है। ग़ालिब ने भी ठीक ही लिखा हैः-

वफ़ादारी बशर्त-ए-उस्तवारी अस्ल-ए-ईमाँ है
मरे बुतख़ाने में तो काबे में गाड़ो बरहमन को

'तज़किरा गुलशन-ए-हिन्द' में 'अता' काकोरवी ने बहुत ही महत्वपूर्ण शेअ़र नक़ल किए हैः-

कोई तस्बीह और ज़ुन्नार के झगड़े में मत बोलो
ये दोनों एक हैं आपस में, इनके बीच रिश्ता है

....

दैर-ओ-काबा पर ही क्या मौक़ूफ़ शैख़-ओ-बरहमन
कौन सी जा है जहां जलवा नहीं अल्लाह का

हिंदू योगी और मुस्लिम सूफ़ी

हिंदू धर्म में आध्यात्मिक गुरुओं को योगी कहा जाता है। ये लोग मानव वर्गों को उनके धर्म के अनुसार प्रशिक्षण, सुधार और शुद्धता की दिशा में मार्गदर्शन करते हैं। हिन्दू योगियों और मुस्लिम सूफ़ियों का परस्पर सम्बंध अत्यंत सौहार्द और उदारतापूर्ण दिखाई देता है। इन दोनों ने जहां आध्यात्मिक और बौद्धिक वातावरण विकसित किया है, वहीं उन्होंने कई पारस्परिक भेदभाव तथा नकारात्मक विचारों को

नष्ट करने में भी महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है। अपनी किताब 'दबिस्तान-ए-मज़ाहिब' में मुल्ला शैदा की राय एक हिंदू योगी के बारे में इस प्रकार लिखी गई हैः

> ''मुल्ला शैदा हिंदी, जो उस युग के प्रसिद्ध कवियों और विद्वानों में से था, एक दिन इन पंक्तियों के लेखक के साथ ज्ञानी ज़ैना के घर गया और उनके साथ बैठा। उसके शिष्यों और उसके घर में रहने वाले लोगों की स्थिति देखकर बहुत ख़ुश हुआ और कहा, मेरा सारा जीवन धनवानों की सेवा में बीता, परन्तु मेरी आंखों ने इस स्तर का कोई स्वतंत्र मनुष्य न देखा, और न मेरे कानों ने इस प्रकार के किसी स्वतंत्र मनुष्य का समाचार सुना।''(1)

इसी प्रकार औरंगज़ेब जैसा मुसलमान बादशाह भी हिन्दू योगियों की सेवा में भक्ति भाव से हाज़िर हुआ, इस घटना का उल्लेख 'रुकआत-ए-आलमगिरी' में मिलता है।(2)

''दबिस्तान-ए-मज़ाहिब' के लेखक के शोध के अनुसार, इसका भी उल्लेख किया गया हैः

> ''हिंदू और मुसलमानों में से कोई भी जो अपने धर्म में शामिल होना चाहता है, वे उसे स्वीकार करते हैं और उन्हें रोकते नहीं हैं। उनका कहना है कि मुसलमान भी विष्णु की पूजा करते हैं क्योंकि 'बिस्मिल्लाह' का यही अर्थ है, यानी विष्णु या बिशन को 'बिस्मिल्लाह' कहा जाता है।'(3)

उस काल में अनेक बुद्धिजीवियों ने इस आध्यात्मिक मिलन को बढ़ावा दिया, उनमें चंद्रभान बरहमन, जो दाराशिकोह के मुंशी और फ़ारसी के प्रथम 'साहिब-ए-दीवान' हिंदू कवि थे, दाराशिकोह की मृत्यु

(1) हिन्दुस्तानी तहज़ीब का मुसलमानों पर असर, पृ. 36
(2) उपरोक्त संदर्भ, पृ. 37
(3) उपरोक्त संदर्भ, पृ. 36

के बाद उनके सहयोगी औरंगज़ेब के दरबार से जुड़ गए, बरहमन ने भी यही तरीक़ा अपनाया और वे अपने जीवन के अंत तक उसकी सेवा में बने रहे, उन्होंने औरंगज़ेब की प्रशंसा में सुन्दर शेअ़र लिखे। 1877 में लखनऊ से उनकी एक सूफ़ियाना मस्नवी प्रकाशित हुई थी। 'नाज़ुक ख़यालात' उनकी दूसरी पुस्तक है, जो उन्होंने स्वामी शंकराचार्य जी महाराज द्वारा संस्कृत पुस्तक 'आत्म विलास' का अनुवाद थी। यह पुस्तक सन् 1901 में लाहौर से छपी है।(1)

डॉ. मुहम्मद उमर ने अपनी पुस्तक 'हिन्दुस्तानी तहज़ीब का मुसलमानों पर असर' में 'दबिस्तान-ए-मज़ाहिब' के संदर्भ से लिखा हैः-

> ''बैरागियों में शामिल होने वाले मुसलमानों में केवल अज्ञानी न थे, बल्कि उनमें से कुछ शिक्षित और प्रबुद्ध लोग भी थे, इसलिए कई मुसलमानों ने उनके धर्म में प्रवेश किया, उदाहरण के लिए, मिर्ज़ा सालेह और मिर्ज़ा हैदर, जो मुस्लिम शरीफ़ज़ादे थे, बैरागी बन गए हैं।''(2)

इतिहासकारों ने लिखा है कि भूपत राय नाम के एक कवि थे, उप-नाम 'बेग़म' और बैरागी की उपाधि के साथ, शाइरी में वह मुहम्मद अफ़ज़ल 'सरख़ुश' के शिष्य थे और बाद में वृन्द्रावन दास 'ख़ुशगो' के शिष्य बन गए। आध्यात्म में शेख़ मुहम्मद सादिक़ और नारायण दास बैरागी के मुरीद थे। वे खत्री जाति के थे, उनके पूर्वज सरकार जौन (जो कि पंजाब में थी) के क़ानूनगो थे और जब इश्क़ का जुनून उन पर हावी हो गया, तो उन्होंने सांसारिक जीवन त्याग दिया। 'ख़ुशगो' का बयान है कि 'बेग़म' कई पुस्तकों के लेखक थे। 'हिन्दुस्तान के फ़क़ीरों के क़िस्से' की रचना उन्होंने मस्नवी के रूप में की। उनके फ़ारसी संग्रह में पचास हज़ार शेअ़र थे, जिनमें एक दीवान ग़ज़ल और रुबाइयों के अलावा बाक़ी मस्नवियां

(1) हिन्दुस्तानी तहज़ीब का मुसलमानों पर असर, पृ.37
(2) उपरोक्त संदर्भ, पृ. 36

थीं। 1720 में उनकी मृत्यु हो गई।[1] इस बारे में शेख़ इकराम ने अपनी किताब 'रूद-ए-कौसर' में लिखा हैः

> ''उनका दिल नारायण बैरागी और मुहम्मद सादिक़ के दोगुने उपदेशों से 'मजमउल बहरैन' (दो सागरों का संगम) बन गया, इसलिए उनकी मस्नवी में दो अलग-अलग लहरें हैं जिको अगर ध्यान से देखा जाए, तो उनमें इस्लाम और हिंदू सूफ़ीवाद के रंग अलग-अलग नज़र आएंगे।[2]

हिंदू देवताओं का सम्मान

इसी तरह मुसलमान हिन्दुओं के देवताओं और विशेष रूप से रामचंद्र जी और भगवान कृष्ण का पैगंबर के रूप में सम्मान करते हैं। मिर्ज़ा अब्दुल क़ादिर 'बेदिल' ने अपनी एक नज़्म में रामचंद्र जी का गुणगान किया है। 'नज़ीर' अकबराबादी ने अपनी नज़्मों में राम और कृष्ण की भक्ति के गीत गए हैं। उदाहरण के लिए, कन्हैया जी की रास, बलदेवजी का मेला, जन्म कन्हैया जी, बालपन बंसुरी बजइया, बांसुरी लह्व-ओ'लअ़ब, कन्हैया जी की शादी और महादेव का ब्याह, साथ ही साथ नज़ीर अकबराबादी ने सिखों के मार्गदर्शक गुरु नानक जी को श्रद्धांजलि अर्पित की है, और एक सिद्ध फ़क़ीर के रूप में उनकी बहुत प्रशंसा की है।

डॉ. मुहम्मद उमर ने शाह अब्दुल अज़ीज़ के संदर्भ से लिखा हैः-

> ''किसी मुसलमान ने शाह अब्दुल अज़ीज़ देहलवी से हिंदुओं के विधाता के नाम के बारे में पूछा, तो उन्होंने उत्तर दिया, अलख एवं परमेश्वर और उनकी विशेषताओं के अनुसार कोई अन्य नाम। इसके बाद उस व्यक्ति ने पूछा कि क्या हम उपरोक्त नामों से अल्लाह को संबोधित कर

(1) हिन्दुस्तानी तहज़ीब का मुसलमानों पर असर, पृ. 38
(2) शेख़ मुहम्मद इकराम, रूद-ए-कौसर, 2003, पृ. 405

> सकते हैं? शाह साहब ने कहा, इसमें कोई नुक़सान नहीं है।[1]

इसी तरह की एक और घटना 'उमरा-ए-हुनूद' में लिखी गई है कि मौलाना शाह अब्दुल अज़ीज़ से कन्हैया जी के बारे में पूछा गया तो उन्होंने कहाः-

> उनके बारे में चुप रहना ही अच्छा है, लेकिन भागवत, जो हिंदुओं का एक विश्वसनीय ग्रंथ है, से ऐसा प्रतीत होता है कि 'कन्हैया जी' संतों में से एक थे, और उनके स्थान मथुरा आदि निस्संदेह प्रेममय हैं। दूसरे शब्दों में, इन जगहों पर अल्लाह का इश्क़ जोश करता है।''
>
> ''हज़रत शाह अब्दुल रज़्ज़ाक़ बांसवी ने भी एक बहुत अच्छी बात लिखी है कि जब मैं कन्हैया जी के स्थानों से होकर गुज़रा तो उनकी आत्मा मेरे सामने प्रकट हुई और पाँच अशर्फ़ियाँ पेश कीं कि अगर आप मक्का शरीफ़ जाते हैं, तो इसे ख़र्च करें। मैंने उन्हें स्वीकार नहीं किया और कहा कि मैं मुसलमान हूं, अल्लाह के सिवा किसी से मदद नहीं चाहता, इस प्रसंग से पता चलता है कि कन्हैया जी निजात (मुक्ति) वालों में से हैं।''

'बशारत-ए-अहमदी' के लेखक मौलाना अब्दुल अज़ीज़ साहब लखनवी अपनी किताब के अंत में मुसलमानों को निम्नलिखित उपदेश देते हैं:

> ''राजा रामचंद्र जी' और 'कन्हैया जी' आदि अगले बुज़ुर्गों की निन्दा करने से प्रायश्चित (तौबा) करना चाहिए। अलबत्ता जो हिन्दू उन्हें ख़ुदा समझ कर पूजते हैं उनकी रस्मों, मेलों और तमाशों से दूर रहें।''[2]

इसी प्रकार हिन्दू योगी भी इस्लामी शिक्षाओं, क़ुरआन और हज़रत

(1) शेख़ मुहम्मद इकराम, रूद-ए-कौसर, 2003, पृ. 45
(2) उमरा-ए-हुनूद, पृ. 30-32

मुहम्मद (सल्ल.) से श्रद्धा रखते थे। डॉ. मुहम्मद उमर ने लिखा हैः

> ''राजा छत्रसाल इस्लाम और पैगंबर हज़रत मुजम्मद (सल्ल.) के प्रति बहुत भक्ति रखते थी, उन्होंने पवित्र क़ुरआन का उतना ही सम्मान किया जितना वेदों और पुराणों का। उसके दरबार में, एक तरफ़ ऊंची चौकी पर पुराण और दूसरी तरफ़ पवित्र क़ुरआन रखा जाता था। जिस तरफ़ क़ुरआन रखा होता था, उस तरफ़ मुस्लिम विद्वान और दूसरी तरफ़ ब्राह्मण बैठते थे और उनकी उपस्थिति में धार्मिक मुद्दों पर चर्चा होती और इस तरह उन्हें दोनों धर्मों की शिक्षाओं का लाभ मिला, विशेष रूप से एकेश्वरवाद के विषय पर चर्चा की जाती थी। छत्रसाल ने अपने भाषण में पैग़म्बरे इस्लाम (सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम) की बहुत प्रशंसा की है। राजा के दरबारी मुसलमान राजा की उपस्थिति में 'या मुहम्मद रसूलुल्लाह' ऊंचे स्वर में बोलते थे। राजा भी उनके साथ शामिल होकर ऊंचे स्वर में वैसा ही दोहराता था।''

सुनील दास मुख़्तार को हज़रत अली और उनके वंशजों के प्रति बड़ी श्रद्धा थी, उन्होंने शाह नजफ़ को श्रद्धांजलि दी है। भगवान दास हिंदी भी आले रसूल के भक्त थे, उन्होंने सैयद ख़ैरात अली के अनुरोध पर 'सवानिहुन्नबुव्वह' पुस्तक लखी, जिसमें महान पैगंबर (सल्ल.) और बारह इमामों के हालात दर्ज हैं।

> ''भगवान दास ने 'क़सीदा मुश्किल आसान' में मुहम्मद और बारह इमामों से प्रार्थना की है।[1]

दुर्गादास ने धार्मिक मतभेदों को दूर करने के लिए जो सकारात्मक राय दी उसका भी यहाँ उल्लेख करना उचित प्रतीत होता हैः

(1) हिन्दुस्तानी तहज़ीब का मुसलमानों पर असर, पृ. 45-46

> ''सभी धर्मों और कर्मकांडों का रचयिता वह है जो ब्रह्मांड का जन्मदाता है। उसकी बुद्धि इतनी महान और परिपूर्ण है कि उसने प्रत्येक धर्म के लिए उसकी स्थिति के अनुसार एक अलग विधि निर्धारित की है और हर एक के लिए एक विशेष मार्गदर्शन किया है। जिस तरह दुनिया के उद्यान विभिन्न पेड़ों और रंग-बिरंगे फूलों से जगमगाते हैं, उसी तरह विभिन्न धर्मों और परम्पराओं के माध्यम से, विभिन्न तरीक़ों से दिलों में अपना परिचय दिया है। अगर मस्जिद है तो उसकी याद में अज़ान दी जाती है। अगर बुतख़ाना है तो उसकी याद में घंटी बजाई जाती है। मेरी समझ में नहीं आता कि यह कुफ़्र और दीन का झगड़ा क्या है, हक़ीक़त यह है कि काबा और बुतख़ाना एक ही दीपक से जगमगाते हैं, ऐसे में ज़रूरी है कि इंसान अपने दिल को अपवित्रता से साफ कर के हर धर्म और जाति के लोगों के साथ भाईयों जैसा व्यवहार करें। ख़ुद को नफ़रत से पाक करें और एकता के माहौल में रहें, जब आप किसी धर्म के पूजा स्थल पर पहुंचें, तो उसका सम्मान करें और जब आप किसी के बड़े-बुजुर्गों की सेवा में जाएं तो उनका आदर-सत्कार करने में कोताही न करें। किसी से भी धार्मिक मामलों में वाद-विवाद न करें और इस बेकार के झगड़े से आपसी सौहार्द न बिगाड़ें।[1]

इन उद्धरणों से देश के सामाजिक और राष्ट्रीय मूल्यों की न केवल पुनर्स्थापना होती है, बल्कि ऐसा लगता है कि एक समय था जब किसी को किसी के धर्म से कोई शिकायत नहीं थी, न ही लोग एक-दूसरे से घृणा करते थे, बल्कि वे प्रसन्नता और उत्साह के साथ एकता, भाईचारा, सद्भाव और शांति से रहते थे। परन्तु अब वर्तमान

(1) हिन्दुस्तानी तहज़ीब का मुसलमानों पर असर, पृ. 47

में स्थिति बहुत ही घातक हो गई है जिसे तुरंत बदलने की ज़रूरत है ताकि भारतीय समाज अपने गौरव को पुनः प्राप्त कर सके।

मुस्लिम शासन काल में हिंदू साहित्य का विकास

देश की वर्तमान स्थिति बहुत चिंताजनक है। इसके अनेक कारण हैं। उनमें सबसे प्रमुख कारण यह है कि आज बड़े उत्साह के साथ ढोल बजाया जा रहा है कि जब भारत में मुसलमानों की सत्ता थी, तो उन्होंने न केवल हिंदू प्रजा के साथ अन्याय किया, बल्कि उनके साथ शत्रुता भी की, धार्मिक घृणा को बढ़ावा दिया, उनके इतिहास और संस्कृति, विज्ञान और कला को नष्ट कर दिया और भाषा तथा साहित्य के साथ सौतेला व्यवहार किया। जबकि इतिहास के अध्ययन से पता चलता है कि इस आरोप में कोई सच्चाई नहीं है। ऐसी बातें इसलिए की जा रही हैं ताकि लोगों में मुसलमानों के प्रति नफ़रत का माहौल पैदा हो और राजनीतिक तत्व अपनी राजनीतिक रोटियां सेक सकें। यदि देश के परिदृश्य पर नज़र डालें तो हर जगह ऐसी बातें कही जा रही हैं। हमारे देश का मीडिया भी अब ऐसे विषयों पर चर्चा करना अपना सौभाग्य समझता है। इसके अतिरिक्त, कुछ राजनेता भी अपनी चुनावी रैलियों में मुसलमानों के ख़िलाफ़ घृणित और भड़काऊ बयान दे रहे हैं और सार्वजनिक स्तर पर अशांति और भ्रम को हवा दे रहे हैं। सच तो यह है कि ऐसे लोग न केवल सामाजिक संबंधों को बिगाड़ रहे हैं, बल्कि वे भारत के इतिहास से अनभिज्ञता का जानबूझकर प्रदर्शन कर रहे हैं। इसलिए निम्नलिखित पंक्तियों में यह बताने का प्रयास किया जाएगा कि मुस्लिम शासन काल में हिन्दू भाईयों की संस्कृति, विज्ञान और कला तथा इतिहास के साथ कितनी सहिष्णु और सदभावनापूर्ण व्यवहार किया जाता था।

यह एक अकाट्य तथ्य है कि हिंदुओं के धार्मिक स्रोत और अन्य

पुस्तकें संस्कृत में हैं। भारत के कई विज्ञान और कलाएं ऐसी हैं जिन्हें मुसलमानों ने अपने समाज से परिचित कराने के लिए संस्कृत से अरबी भाषा में अनुवाद किया। इसी प्रकार उनके धर्म के बारे में जानकारी प्राप्त की। इसलिए 'तुज़्क-ए-जहाँगीरी', 'मआसिरुल उमरा', 'आईन-ए-अकबरी' आदि में इसे बहुत विस्तार से लिखा गया है। यहां यह भी बताना ज़रूरी है कि अब्बासी साम्राज्य से लेकर मुग़ल काल तक मुस्लिम शासकों ने हिन्दुओं के विज्ञान, कला, संस्कृति, सभ्यता तथा धर्म को महत्व देने के साथ-साथ उन्हें प्रतिष्ठित पदों पर नियुक्त भी किया। अब्बासी साम्राज्य में विभिन्न भाषाओं के अनुवाद अरबी में किए गए। सिरियानी, हिब्रू, क़िब्ती, फ़ारसी कलदानी, फ़नीक़ी आदि, इसी प्रकार संस्कृत भाषा का अनुवाद अब्बासी शासक अबू जाफ़र मंसूर के समय में शुरू हुआ। इसी प्रवृत्ति को बनाए रखते हुए ख़लीफ़ा हारून रशीद और मामून रशीद ने भी अपने समय में भारत के साथ संबंध बढ़ाए। यहाँ तक कि एक बार हारुन रशीद गंभीर रूप से बीमार पड़ गए और राजधानी के वैद उनका उपचार करने में असमर्थ थे। उस समय भारत के एक पंडित की ख्याति दूर-दूर तक फैली हुई थी। हारून रशीद ने अबू अम्र अजमी के आग्रह पर उनको बुलाया, अल्लाह ने उसके उपचार से हारून रशीद को ठीक कर दिया, उस विद्वान का नाम मिंका था। वह चिकित्सा के तर्कसंगत विज्ञान के एक महान विशेषज्ञ थे, बग़दाद में रहते हुए उन्होंने फ़ारसी सीख ली और संस्कृत भाषा की प्रमुख पुस्तकों के अनुवाद कराए। अल्लामा शिबली ने लिखा है कि हारून रशीद के दरबार में एक प्रसिद्ध विद्वान पंडित 'साली' थे, जिन्हें अरब लेखक 'सालेह' लिखते हैं, उसी युग में एक और प्रसिद्ध हिंदू विद्वान थे जिन्होंने संस्कृत पुस्तकों का अनुवाद किया, उनके पिता का नाम धन था। अरब हमेशा उन्हें उनके असली नाम के बजाय 'इब्न धन' यानी धन का पुत्र, लिखते हैं। बरमकियों ने बग़दाद में जो अस्पताल बनाया

था वह उसका अधिकारी था। जब इतिहासकार मसऊदी खम्बात आए और वहां की स्थितियों से परिचित हुए, तो उन्होंने लिखा है कि ''यहां के राजा को धार्मिक बहसों का बहुत शौक़ है और वह इस शहर में आने वाले मुसलमानों और अन्य धर्मों के लोगों के साथ बहस और बातचीत करते थे।'' इसी प्रकार अबू रैहान अल-बैरूनी ने हिंदुओं के लिए कुछ अरबी पुस्तकों का संस्कृत में अनुवाद किया, संस्कृति विज्ञान और कला पर उन्होंने जो पुस्तक लिखी, जिसे प्रसिद्ध जर्मन प्रोफ़ेसर ज़ख़ाव ने अपने सुधार के साथ प्रकाशित किया, यह पुस्तक निश्चित रूप से संस्कृत में ज्ञान और कला की एक अनमोल कृति है। उपरोक्त विवरण के आलोक में यह पूरे विश्वास के साथ कहा जा सकता है कि मुसलमानों में संस्कृत भाषा का शिक्षण व्यापक हो गया था। इसका मुख्य कारण यह था कि 'बैतुल हिकमत' के रूप में अब्बासी साम्राज्य में स्थापित एक नियमित विभाग था जिसमें संस्कृत के ग्रंथों का अनुवाद किया जाता था। इससे यह भी पता चलता है कि मुसलमानों ने भारतीय सभ्यता और हिंदुओं के ज्ञान को मुस्लिम समाज में बड़े पैमाने पर पेश किया है। अल्लामा शिबली नोमानी ने हिंदू विद्वानों द्वारा लिखित और बाद में अरबी में अनुवादित संस्कृत पुस्तकों की एक सूची भी दी है। अल्लामा शिब्ली नोमानी के शोध के अनुसार बीस पुस्तकें ऐसी हैं जिन्हें संस्कृत से अरबी में स्थानांतरित किया गया था। विषय की विविधता और विज्ञान की आवृत्ति के कारण उनके महत्व और उपयोगिता से इंकार नहीं किया जा सकता है। यहां यह बताना भी ज़रूरी है कि जब भारत में मुसलमानों की सत्ता थी, तब भी हिंदुओं की धार्मिक और विभिन्न कलाओं और विज्ञानों वाली किताबों का फ़ारसी भाषा में अनुवाद किया गया था।

भारत में जब सुल्तान फ़ीरोज़ शाह ने 772 हिजरी में ज्वालामुखी (हिमाचल प्रदेश) का दौरा किया, तो उन्हें पता चला कि इस तीर्थस्थल

में 1300 प्राचीन संस्कृत ग्रंथ मौजूद थे। फ़ीरोज़ शाह ने दो पुस्तकें प्राप्त कीं और उनके अनुवाद की व्यवस्था की। एक पुस्तक का नज़्म में इज़्ज़ुद्दीन द्वारा अनुवाद किया गया था और इसका नाम 'दलाइल-ए-फ़ीरोज़' था, ये पुस्तकें ज़्यादातर संगीत और कुश्ती कला पर थीं। अब्दुल क़ादिर बदायूनी ने 'मुन्तख़बुत्तवारीख़' में लिखा है कि जब मैं 1000 हिजरी में लाहौर पहुंचा तो इन अनुदित पुस्तकों पर मेरी दृष्टि पड़ी। ज्ञातव्य है कि अकबर को हिन्दुओं से विशेष लगाव था, यही कारण है कि उसने अपने दरबार में बड़े-बड़े पंडितों को इकट्ठा किया और उन्हें धार्मिक मामलों में चर्चा और संवाद के लिए नियुक्त किया। उसका मुख्य उद्देश्य था कि देश में सहिष्णुता हो और सभी धर्म के लोग अपने-अपने धर्म का पालन करते हुए एक दूसरे के साथ सम्मान से रहें। हमें आज भी राष्ट्रीय और अन्तर्राष्ट्रीय पटल पर उन्हीं मार्गों पर चलना है जो एकता और अखण्डता की तरफ़ जाते हैं। अकबर के शासन काल में अनेक संस्कृत भाषा की पुस्तकों का उर्दू में अनुवाद हुआ। अब्दुल क़ादिर बदायुनी, शेख़ सुल्तान थानेसरी और नक़ीब ख़ान के सहयोग से हिंदू धार्मिक ग्रंथ 'महाभारत' का फ़ारसी में अनुवाद किया गया था। अकबर ने इसका नाम 'रज़्म नामा' रखा। महाभारत के युद्ध के दृश्यों के चित्र बनवाए। इसी प्रकार उपरोक्त विद्वानों ने 'रामायण' का भी अनुवाद फ़ारसी में किया। यह ग्रंथ भी सचित्र तैयार हुआ। इसके अतिरिक्त 'अथर्वेद' का अनुवाद हाजी इब्राहिम सरहिन्दी द्वारा किया गया था, इस अनुवाद की एक पांडुलिपि शिबली कॉलेज पुस्तकालय (आज़मगढ़) में उपलब्ध है। अंकगणित की प्रसिद्ध पुस्तक 'लीलावती' का अनुवाद फ़ैज़ी ने किया था। 'ताजिक' जो ज्योतिष पर एक विश्वसनीय पुस्तक है, का फ़ारसी में अनुवाद मुकम्मल ख़ान गुजराती ने किया था। कन्हैया जी के बारे में 'हरिवंश' एक किताब है, मौलाना शेरी ने उसका फ़ारसी में अनुवाद किया, नल और दम्पंति

की कहानी जो एक दर्दनाक दास्तान है, फ़ैज़ी ने उसे मस्नवी का रूप दे दिया। अकबर की यह सेवा भी प्रशंसनीय है कि उसने संस्कृत के सरमाए को बढ़ावा दिया, अर्थात् उसने कई अरबी-फ़ारसी पुस्तकों का संस्कृत में अनुवाद कराया, इसलिए 'ज़ैच मीरज़ाई' का संस्कृत में अनुवाद कराया, इस अनुवाद में फतहुल्लाह शीराज़ी, अबुल फ़ज़ल, किशन जोत्शी, गंगाधर महेश, महानंद आदि शामिल थे।[1]

शेख़ इकराम ने भी हिंदुओं के विज्ञान और कलाओं के बारे में बहुत दिलचस्प चर्चा की है। उन्होंने लिखा है कि हिंदुओं की कई संस्कृत पुस्तकों का अरबी में अनुवाद किया गया है, इस विषय पर वे लिखते हैं किः-

> ''अरबी में अनुवादित होने वाली पहली भारतीय पुस्तक 'सिद्धांत' थी। 771 ई. में सिंध से एक प्रतिनिधिमंडल के साथ गणित के एक महान विद्वान इस पुस्तक को लेकर बग़दाद पहुंचे और एक अरब गणितज्ञ ने ख़लीफ़ा के आदेश पर अरबी में इसका अनुवाद किया। यह खगोल विज्ञान का उत्तम ग्रंथ है जो अरबी में 'अल-सनद हिंद' के नाम से मशहूर हुआ। इसी तरह गणित के ज्ञान से भी अरब के लोग भारतियों से और पश्चिम के लोग अरबों से लाभान्वित हुए। अरबों का कहना है कि उन्होंने अंकगणित लिखने की विधि हिन्दुओं से सीखी। इसलिए वे अंकों को 'हिन्दसा' या 'अरक़ाम-ए-हिंदिया' कहते थे। चिकित्सा पर भी कई पुस्तकों का अरबी में अनुवाद किया गया। जिसमें 'सुश्रत' और 'चरक' के ग्रंथ बहुत प्रसिद्ध हैं। अन्य ज्ञान की संस्कृत पुस्तकों का अरबी में अनुवाद

(1) मौलाना सैयद सुलेमान नदवी, मक़ालात-ए-शिबली, मआरिफ़ प्रैस शिबली अकादमी, आज़मगढ़, 2009, जिल्द 6, पृ. 87-88

> किया गया था, उनमें से 'कलीला व दम्ना' और 'बूज़ास्फ़ व बलोहर' दुनिया की महत्वपूर्ण पुस्तकें हैं। 'कलीला व दम्ना', 'पंचतंत्र' का अनुवाद है। पहले यह पुस्तक सासानियों के शासनकाल के दौरान संस्कृत से फ़ारसी में अनुवादित हुई थी। फिर दूसरी शताब्दी हिजरी में अब्दुल्ला बिन अल-मुक़फ़्फ़ा ने इसका अरबी में अनुवाद किया। मूल फ़ारसी अनुवाद तो खो गया, लेकिन अरबी अनुवाद बच गया। इस पुस्तक की लोकप्रियता का अनुमान इसी बात से लगाया जा सकता है कि इस पुस्तक में गौतम बुद्ध के जन्म, प्रशिक्षण और उनके उपदेशों का दृष्टांत के रूप में एक योगी द्वारा संसार के सर्वोत्तम रहस्यों पर उसकी बातचीत का वर्णन है। यह पुस्तक धार्मिक क्षेत्रों में इतनी लोकप्रिय हुई कि ईसाइयों ने इसका श्रेय अपने एक धार्मिक विद्वान को दिया और मुसलमानों के एक समूह ने इसे अपने इमाम की कृति बताया। 'रसाइल इख़्वानुस्सफ़ा', जो चौथी शताब्दी की अर्ध-धार्मिक और अर्ध-दार्शनिक पुस्तक है, में इस पुस्तक के कई अध्याय हैं। इसके अतिरिक्त अरबों ने कई बौद्ध पुस्तकों का अरबी में अनुवाद किया। अरब लेखकों (जैसे इब्ने नदीम, अल-अशअ़री, शहरिस्तानी) की रचनाओं में भारतीय धर्मों और दर्शन पर नियमित अध्याय हैं। इनके अतिरिक्त उस समय के इस्लामी साहित्य में बौद्ध साधुओं और योगियों का स्पष्ट उल्लेख मिलता है।''[1]

यदि हिंदुओं की सभ्यता, ज्ञान, कला कौशल्य और उनके धर्म के बारे में सभी प्रमाण और तथ्य एकत्रित किए जाएं तो, अत्याधिक पृष्ठों

(1) शेख़ मुहम्मद इकराम, आब-ए-कौसर, इदारा सक़ाफ़ते इस्लामिया, क्लब रोड, लाहौर, 2006, पृ. 32-35

की आवश्यकता होगी, इसलिए उपर्युक्त पंक्तियों से यह निष्कर्ष निकला कि हिंदू विद्वान और उनके विज्ञान एवं कला के साथ-साथ सभ्यता को मुसलमानों के शासन के काल में अत्यधिक ख्याति प्राप्त हुई।

हिंदू कवियों का सम्मान

मुस्लिम काल में हिंदुओं की संस्कृति और पहचान को बनाए रखने के लिए हर संभव प्रयास किया गया। यही कारण है कि मुस्लिम काल में हिंदुओं की भाषा संस्कृत और आम लोगों की भाषा हिंदी को काफ़ी हद तक बढ़ावा दिया गया। सैयद सबाहुद्दीन अब्दुर्रहमान दिल्ली के सुल्तानों के ज्ञान प्रसार और विद्या प्रेम के संदर्भ में लिखते हैं:-

> ''धार्मिक और दार्शनिक साहित्य मुस्लिम शासन काल के दौरान प्रचुर मात्रा में लिखा गया, यद्यपि यह बहुत उच्च स्तर का नहीं है। रामानुज ने 'ब्रह्म सूत्र' पर एक व्याख्या लिखी, पार्थ सारथी ने 'कर्म मीमांसा' पर कई पुस्तकें लिखीं, जिनमें 'शास्त्र दीपिका' प्रमुख हैं, ।जय देव ने बारहवीं शताब्दी में अपनी प्रसिद्ध पुस्तक 'गीत गोविन्द' लिखी। उन्होंने 'हरिकेलि नाटक', 'राज नाटक', 'प्रसन राघव' आदि कई नाटक भी लिखे। इस अवधि में प्रसिद्ध हिंदू क़ानूनी पुस्तक 'मताक्षरा' भी लिखी गई जिसके लेखक विज्ञानेश्वर हैं। जमवंत वाहिन ने भी क़ानून की एक अन्य पुस्तक लिखी। इस अवधि में प्रसिद्ध धार्मिक गुरु भस्काचार्य ने भी हिंदू दर्शन पर कई किताबें लिखीं, जिसमें 'योग वशिष्ट' तथा 'न्याय दर्शन' की व्याख्याएं उल्लेखनीय हैं। उस युग में हिंदी साहित्य को भी बहुत बढ़ावा मिला। पृथ्वीराज के दरबारी कवि ने अपनी प्रसिद्ध रचना 'पृथ्वीराज रासव'

> लिखी, एक अन्य कवि सारंग धर ने राजा हम्मीर के बारे में दो महाकाव्य लिखे।''[(1)]

इसके अतिरिक्त कुछ हिन्दू कवि भी फ़ारसी के बड़े ज्ञाता थे, अतः उनका भी सम्मान किया जाता था, डॉ. मुहम्मद उमर ने लिखा हैः

> ''मुग़ल काल में फ़ारसी के ज्ञाता हिंदू विद्वानों की कमी नहीं है। 18वीं और 19वीं सदी में फ़ारसी भाषा में विशेष रूप से हिंदू लेखकों की रचनाएं मिलती हैं। इस काल के हिंदू इतिहासकारों में हरचरण दास, जगजीवन दास, शिवप्रसाद दास लखनवी, लाला राम राय चतुरमन कायस्थ, आनंद राम मुख़लिस, कुंवर प्रेम किशोर और फ़िराक़ी आदि शामिल है। आनंद राम मुख़लिस (मृत्यु 1751) और टेकचंद बहार फ़ारसी भाषा के माहिर थे, जिन में से पहले ने 'मरातुल इस्लाह' और दूसरे ने 'बहार-ए-अजम' के नाम से फ़ारसी पारिभाषिक शब्दकोषों को संकलित किया।''[(2)]

इन हिंदू कवियों की चिंतन शैली के बारे में भी एक अच्छी बात कही हैः

> ''इन कवियों के विचार और शैली में ऐसी एकरूपता थी कि यदि हिन्दू और मुस्लिम कवियों के शब्दों से इनके नाम हटा दिये जायें तो उनमें अंतर करना कठिन था कि कौन सी शाइरी हिन्दू की रचना है और कौन सी मुसलमान की।''[(3)]

इससे अंदाज़ा लगाया जा सकता है कि भारत का जो विशेष गुण है वह दो जातियों का आपसी सद्भाव, मेलजोल और सहयोग है।

(1) हिन्दुस्तान के अह्द-ए-वुस्ता की एक झलक, पृ. 469-472
(2) हिन्दुस्तानी तहज़ीब का मुसलमानों पर असर, पृ. 23
(3) उपरोक्त संदर्भ, पृ. 33

महत्वपूर्ण बात यह है कि ये वह परम्पराएं हैं जिनका पालन अकसर मुस्लिम और हिंदू करते थे। हमें गर्व है कि हम आज ऐसे भारत में रहते हैं जिसकी प्राचीन एवं आधुनिक परम्पराएं एकता, विश्वास और आपसी सहिष्णुता के पवित्र मूल्यों की रक्षक रही हैं और आगे भी रहेंगी।

भारत की प्राचीन राजनीतिक व्यवस्था

जिस तरह मुसलमानों ने बिना भेदभाव और पक्षपात के हिंदुओं की भाषा, धर्म और सभ्यता को बढ़ावा दिया, उसी तरह हमारे मुस्लिम पर्यटकों और लेखकों ने भी भारत की अन्य विशेषताओं को बहुत संयम के साथ प्रस्तुत किया। प्रसिद्ध पर्यटक मसऊदी ने भारत के प्राचीन राजनीतिक एवं सामाजिक व्यवस्था के बारे में लिखा है। मसऊदी के शोध के अनुसारः-

''भारत का पहला राजा ब्राह्मण जाति से था। उसके बारे में भारत के लोगों की राय में परस्पर अंतर है। कुछ का विचार है कि वह राजा ही था। पहले ब्राह्मण राजा की मुत्यु के पश्चात भारत वासियों ने अत्यंत दुख प्रकट किया तथा उसके ज्येष्ठ पुत्र बाहुर को राजा बनाया जिसके लिए राजा अपने जीवन काल में ही कह गया था, जो चरित्र में अपने पिता के समान था जैसा कि उसके पिता ने पहले ही उल्लेख किया था। उसने ऋषियों के प्रति बहुत सम्मान किया और उनकी गरिमा में वृद्धि की तथा उन्हें भारत के लोगों को ज्ञान सिखाने के लिए नियुक्त किया, और स्वयं उन्हें भी ज्ञान और विद्या में और अधिक शोध करने का आदेश दिया। उसने अपने धार्मिक विश्वासों के अनुसार कई नए पूजा स्थलों का निर्माण किया। जब उसकी मृत्यु हुई तब वह 100 वर्ष का था। उसके समय में पांसा फेंकने की प्रथा शुरू की गई थी। बाहुर के बाद ज़ामान गद्दी पर बैठा और उसका शासनकाल लगभग 150 वर्षों तक चला। फ़ारस और चीन के राजाओं के विरुद्ध

उसके अनेक युद्धों का विद्वानों ने उल्लेख किया है। उसके बाद फ़ोर (पोरस) सिंहासन पर बैठा, सिकंदर का युद्ध भी उसी से हुआ। सिकंदर ने उसे हरा कर मार डाला? उस समय उसके शासन के 140 वर्ष बीत चुके थे। उसके बाद विबिशलीम राजा बने जिन्होंने 'कलीला व दमना' पुस्तक लिखी। जिसका श्रेय इब्ने मुक़फ़्फ़ा को दिया जाता है। यही वह किताब है जिसकी बहुत सी कहानियां आदि अब्बासी ख़लीफ़ा अलमामून के मुंशी सहल बिन हारून ने अपनी किताब 'सअ़ला व अज़रा' में अनुवाद करके प्रस्तुत की हैं अथवा उन में वृद्धि करके पुस्तक की कविताओं में और सुन्दरता पैदा कर दी है। उसका शासनकाल लगभग 120 वर्षों तक चला। फिर उसके बाद बलहत भारत का राजा बना। उसने शतरंज के खेल का आविष्कार किया। उसका शासनकाल केवल 30 वर्ष का था। बलहत के बाद कोरश भारत का राजा बना। सामाजिक सुधारों के अतिरिक्त उसने धार्मिक परम्पराओं में कई सुधार किए और अपनी प्रजा की कई सामाजिक-आर्थिक समस्याओं को दूर करने में मदद की। कोरश के समय सिंदबाद भी था जो उसका सलाहकार था। यह वह व्यक्ति था जिसने राजा के लिए सात मंत्रियों, शिक्षकों, दासों और पत्नियों की संख्या के संबंध में एक पुस्तक संकलित की थी, जिसका नाम भी उसके नाम पर 'सिंदबाद' रखा गया था। कोरश के लिए उसने जो सबसे बड़ी किताब लिखी, उसमें विभिन्न बीमारियों के कारण और उनके उपचार के लिए दवाओं के सुझाव शामिल थे। इसमें मानव शरीर के विभिन्न अंगों और उनके कार्यों को आकार और चित्र दिए गए थे। मृत्यु के समय इस राजा की आयु 120 वर्ष थी। आगे मसऊदी ने लिखा है कि उसके बाद भारत की जनता बंट गई और लोगों ने केंद्र से अलग अपनी सरकारें स्थापित कीं। सिंध की अलग, कन्नौज की अलग, कश्मीर की अलग सरकार की स्थापना हुई। सबसे

बड़े राज्य की राजधानी मानकेर थी।''[1]

यह भी पता चलता है कि प्राचीन काल से भारत में एक संगठित राजनीतिक व्यवस्था थी, और भारत के सभी लोग राजाओं की बात मानते थे। इसके साथ ही उन राजाओं की एक अच्छी आदत यह भी थी कि ये ज्ञान के भी शौक़ीन थे। उन्होंने विद्वानों को महत्व दिया। उन्होंने विद्वानों के लिए आधुनिक शोध का मार्ग भी प्रशस्त किया। हालांकि, मसऊदी ने इन राजाओं के अपनी प्रजा के प्रति रवैये को पूरी तरह से नज़रअंदाज़ कर दिया है कि उन राजाओं का व्यवहार अपनी प्रजा से कैसा था?

भारत के प्राचीन बुद्धिजीवियों का दर्शन

मसऊदी ने लिखा है कि भारत के प्रथम राजा के वंशज ब्रह्मा कहलाते हैं। उनके सात प्रशंसनीय बुद्धिजीवी हुए हैं। उनमें से एक कहता है कि हमारा अस्तित्व सृष्टिकर्ता के ज्ञान पर आधारित है। अतः हमारा अंत उसकी युक्ति के पतन का कारण होगा। उनमें से एक बुद्धिजीवी का कहना है कि ऐसा कौन है जो संसार के अस्तित्व और तथ्यों को पूरी तरह से समझने में सक्षम है? एक अन्य का कहना है कि ज्ञान किसी एक व्यक्ति तक सीमित नहीं हो सकता। तीसरा कहता है कि हमारे लिए उन वस्तुओं को देखना पर्याप्त है जो हमारे शरीर और दिमाग के निकट हैं। चौथा कहता है, वस्तुओं का ज्ञान हमारे लिए उस सीमा तक आवश्यक है जिस सीमा तक हमें उनकी आवश्यकता है। पाँचवां कहता है कि हमें उन शासकों की संगति करनी चाहिए जो वास्तविक बातों को समझने में सक्षम हों। छठा कहता है कि इस दुनिया में हमारा अस्तित्व आत्म-सुख की खोज के

(1) अबुलहसन बिन हुसैन बिन अली मसऊदी, 'मुरौव्विजुज़्ज़हब व मआदिनुल जौहर', अनुवादक, प्रो. कौकब शादानी, नफ़ीस अकादमी, इस्ट्रेचन रोड, कराची, 1985, जिल्द 1, पृ. 94-97

लिए समर्पित होना चाहिए क्योंकि एक दिन यहां से जाना ज़रूरी है। सातवां कहता है कि हम अपनी इच्छा से नहीं आए हैं और न ही हमें यहां से जाने का अधिकार है। जीवन में मुसीबतों और कष्टों के अतिरिक्त कुछ नहीं है।[1]

प्रवृत्तियां एवं पद्धतियां

मसऊदी ने लिखाः

> ''भारत में शराब पर प्रतिबंध है और इसे पीने वाले को सज़ा दी जाती है, लेकिन यह धार्मिक दृष्टिकोण से नहीं किया जाता है, बल्कि उनके अनुसार शराब पीने से नशे की हालत में व्यक्ति तर्क और बुद्धि से रहित हो जाता है और उसे देश के क़ानूनों और परम्पराओं का ज्ञान नहीं रहता, जबकि शासक के लिए राजनीतिक सूझबूझ और शासन प्रबंध हेतु सज़ा का थोड़ा बहुत प्रयोग करना सही माना जाता है। भारत में गाने-बजाने का रिवाज बहुत है, जिसके लिए उन्होंने बहुत से यंत्र बना रखे हैं। गाना-बजाना सुख-दुख दोनों में होता है तथा पड़ोसियों के यहां समारोह के अवसर पर गाना-बजाना ज़रूरी होता है।''[2]

मसऊदी ने एक कर्मकांड के बारे में भी लिखा हैः

> ''मैंने भारत के सरांदीप (लंका) क्षेत्र को देखा, और वह एक समुद्री द्वीप है, कि जब वहां शासक की मृत्यु हो जाती है, तो उसे इस उद्देश्य के लिए निर्धारित एक विशेष स्थान पर ले जाया जाता है और उसके शरीर को वहां रख दिया जाता है। उसकी पत्नी के हाथ में एक पोटली होती है,

(1) अबुलहसन बिन हुसैन बिन अली मसऊदी, 'मुरौव्विजुज़्ज़हब व मआदिनुल जौहर', अनुवादक, प्रो. कौकब शादानी, नफ़ीस अकादमी, इस्ट्रेचन रोड, कराची, 1985, जिल्द 1, पृ. 93-94

(2) उपरोक्त संदर्भ, पृ. 99

> जिसमें से वह मिट्टी निकालकर अपने मृत पति के सिर पर रख देती है और कहती है, हे लोगों! देखो अब तक यही तुम्हारा शासक था। उसका हर आदेश तुम्हारे लिए अनिवार्य था, अब वह संसार छोड़ चुका है, इसलिए उसका आदेश भी आज समाप्त हो गया, क्योंकि यमदूत ने उसकी आत्मा पर क़ब्ज़ा कर लिया है। यद्यपि वह जीवित रहेगा और फिर न मरेगा, परन्तु उसके मरने से तुम नहीं बदल जाना। इस तरह के शब्द वह लोगों से अच्छे व्यवहार का पालन करने के लिए कहती हैं। सभी धार्मिक संस्कारों को करने के बाद, उसके शव को आग लगा दी जाती है। ये रीति-रिवाज और परम्पराएं आज भी जीवित हैं।''[(1)]

यह उनके रीति-रिवाज और परम्पराएं हैं, जिन पर हमें कोई आपत्ति नहीं है। सच तो यह है कि हमारी मातृभूमि सभ्यताओं, धर्मों और संस्कृतियों का संगम है। यही हमारे देश की असली पहचान और विशेषता है। ये परम्पराएं हमारे लोकतांत्रिक और संवैधानिक मूल्यों को सुनिश्चित करती हैं।

उपरोक्त साक्ष्यों के आलोक में यह पूरे विश्वास के साथ कहा जा सकता है कि देशवासियों के साथ हमेशा समानता और न्याय का व्यवहार किया गया है। इसलिए अब यह आवश्यक हो गया है कि हम देश में वर्गों के बीच बढ़ती खाई को मिटाने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाएं। साथ ही हमें इतिहास का अध्ययन भी बहुत व्यापक और उदारता से करना है ताकि हम किसी भी दृष्टिकोण और चरित्र को दोष न दे सकें। जो लोग इतिहास के पन्नों को धुंधला करके लोगों के सामने पेश कर रहे हैं, एक बार उन्हें इन तथ्यों कें देखने की सख़्त ज़रूरत है।

(1) अबुलहसन बिन हुसैन बिन अली मसऊदी, 'मुरौव्विजुज़्ज़हब व मआदिनुल जौहर', अनुवादक, प्रो. कौकब शारानी, नफ़ीस अकादमी, इस्ट्रेचन रोड, कराची, 1985, जिल्द 1, पृ. 98-99

अंत में, यह निवेदन करना उचित प्रतीत होता है कि मुस्लिम विचारकों और विद्वानों ने धर्मों के तुलनात्मक अध्ययन और सांस्कृतिक खोज के संदर्भ में प्रत्येक समय और हर युग में मूल्यवान सेवाएं प्रदान की हैं। उपरोक्त चर्चाओं को प्रस्तुत करने का उद्देश्य यह है कि अन्य धर्मों और उनकी सभ्यताओं का मुसलमानों ने बहुत ही उदार और निष्पक्ष ढंग से अध्ययन किया है। जो लोग हमारे बीच मतभेद पैदा करना चाहते हैं, उन्हें आज इतना ही बता देना काफ़ी होगा कि मुसलमानों ने गैर-मुस्लिम जातियों के धर्मों, संस्कृतियों, उनकी राजनीतिक और सामाजिक व्यवस्थाओं को जानकर एक सकारात्मक संदेश दिया है। यह भी पाया गया कि मतों और धर्मों की ख़ुशहाल परम्परा को सही दिशा देने में मुस्लिम विद्वानों की सेवाओं की सराहना और उपयोग करना बहुत महत्वपूर्ण है। हम देखते हैं कि अब नफ़रत और हिंसा की बाढ़ आ गई है। लोग धर्मों और संस्कृतियों के बीच ग़लतफ़हमियां फैला रहे हैं। इनका समाधान तभी हो सकता है जब हम संवाद जैसी सुखद परम्परा को बढ़ावा दें। सामाजिक रूप से एकता के सूत्र को मज़बूत करें।

❑❑

दूसरा अध्याय

भारत में हिन्दू-मुस्लिम एकता और समरसता की परम्पराएं

O

भारत जैसे बहुलतावादी समाज में और वर्तमान समय में हिंदू-मुस्लिम संबंधों के महत्व को नकारा नहीं जा सकता। देश के इतिहास का अध्ययन करें तो स्पष्ट होता है कि यहां के तत्वों में हिंदू-मुस्लिम संबंधों की एक ख़ुशहाल परम्परा रही है। दोनों सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक रूप से एक दूजे के निकट रहे हैं। भारत की भूमि को यह प्राथमिकता और श्रेष्ठता प्राप्त रही है कि हिंदुओं और मुसलमानों ने देश की व्यवस्था और सामाजिक संस्थाओं के संगठन और प्रबंधन में एक मौलिक भूमिका निभाई है। यही कारण है कि बहुभाषावाद और विविध विचारों के होते हुए भी कभी किसी को किसी धर्म से शिकायत होती थी और न ही किसी ने किसी भाषा या सभ्यता से विरोध किया, यहां तक कि हिंदू राजाओं के काल में भी जब भी मुस्लिम समुदाय पर अत्याचार और आक्रामकता थोपी गई, या फिर मुस्लिम शासकों के समय में हिन्दुओं के साथ अनुचित व्यवहार करने की आहट हुई तो उन उपद्रवियों पर तत्काल कार्रवाई की गई और अत्याचारों का निवारण भी किया गया।

निम्नलिखित पंक्तियों में लेखक इन परम्पराओं को उन लोगों के सामने प्रस्तुत करेगा जो हिंदू-मुस्लिम एकता की प्रतीक हैं। आशा है कि इन शानदार परम्पराओं को पढ़कर दोनों पक्षों के बीच जो भ्रांतियां फैली हुई हैं या जानबूझकर फैलाई जा रही हैं उनको दूर करने में बड़ी सहायता मिलेगी।

हिंदुओं का मुसलमानों से सौहार्दपूर्ण व्यवहार

शेख़ मुहम्मद इकराम ने अपनी पुस्तक 'आब-ए-कौसर' में प्रामाणिक संदर्भों के साथ लिखा हैः

> ''भारत के समुद्र तट पर अरबों की अनेक बस्तियाँ थीं। जब हज्जाज बिन युसुफ़ को इराक़ के गवर्नर के रूप में नियुक्त किया गया, तो हाशमियों का एक बड़ा समूह उस क्षेत्र को छोड़कर भारत आ गया। उनमें से जो लोग पश्चिमी तट (विशेष रूप से कोंकण के किनारे) पर बसे थे, वे अपने वंशजों को 'नवायत' या 'नवाइत' (नवागंतुक) कहते थे, और जो लोग रास कुमारी के पूर्व में बस गए थे और वहां की तमिल महिलाओं से शादी कर ली थी, वे एक मिश्रित समुदाय के संस्थापक बन गए। उन्हें 'लब्बी' (Labbe) कहा जाता है। चूँकि उस समय के हिंदू समुद्री यात्रा को पाप मानते थे, इसलिए आगंतुकों ने शिपिंग और व्यापार के माध्यम से अपने नए वतन में सम्मान और प्रतिष्ठा प्राप्त की। नवायत आमतौर पर 'शाफ़ई' मत के अनुयायी हैं और उन में कई महान विद्वान पैदा हुए, विशेषकर मख़दूम अली माहिमी जिनकी दरगाह बंबई के पास माहिम उपनगर में है, उनकी गिनती भारत के महान आध्यात्मिक विद्वानों में होती है।''[1]

गुजरात के तट पर बसने वाले मुसलमानों के बारे में अरब यात्री सुलेमान और मसऊदी ने लिखा है कि दोनों देशों के बीच संबंध बहुत मधुर थे और यहां के हिंदू राजा मुसलमानों से प्यार करते थे। शेख़

(1) शेख़ मुहम्मद इकराम, आब-ए-कौसर, इदारा सक़ाफ़ते इस्लामिया लाहौर, 2006, पृ. 41-42

मुहम्मद इकराम ने अपनी पुस्तक 'आब-ए-कौसर' में औफ़ी (जो अल्तमश के शासन काल में भारत आया था) की पुस्तक 'जामिउल हिकायात व लामिउल रिवायात' के संदर्भ में पाटन (पाटन कभी गुजरात के राजाओं की राजधानी थी जिसे नहर वाला पाटन कहते हैं। इस से पहले वल्लभीपुर होता था) के हिन्दू राजाओं का मुसलमानों के साथ अच्छे व्यवहार का उल्लेख किया हैः-

> ''वह लिखता है, (अर्थात औफ़ी ने अपनी पुस्तक 'जामिउल हिकायात व लामिउल रिवायात' में) एक बार खम्बाइत जाने के लिए एक समझौता हुआ, जो समुद्र के किनारे एक शहर है और वहाँ धर्मनिष्ठ मुसलमानों का एक समुदाय है। यहाँ मैंने सुना है कि राजा जनक के समय में एक मस्जिद थी। इसके बगल में एक मीनार थी जिस पर मुसलमान नमाज़ अदा किया करते थे। पारसियों ने हिंदुओं को मुसलमानों से लड़ने के लिए उकसाया। इस स्थिति को देखकर इमाम ने स्वयं एक दिन अवसर पा लिया जब राजा हाथी पर सवार होकर बाहर जा रहे थे। पूरी घटना को एक कविता के रूप में बताया गया है। राजा ने अपने दरबारियों से इसके बारे में कुछ नहीं कहा, लेकिन उन्हें बताए बिना, वे ख़ुद भेष बदलकर सब कुछ जांच करने चले गए। वापस लौटने पर उन्होंने एक अदालत आयोजित की। उन्होंने अपनी जांच की स्थिति बताई और आदेश दिया कि पारसियों और हिंदुओं में से जो भी मुसलमानों के प्रति क्रूरता के दोषी थे, उन्हें दंडित किया जाना चाहिए। और मुसलमानों को मस्जिद और मीनार के पुनर्निर्माण के लिए एक लाख बालोतरा (गुजराती सिक्का) की फिरौती दी गईं यहाँ के राजा की एक अन्य विशेषता यह थी कि वह

> मुसलमानों के मामलों को राजा का निकटवर्ती व्यक्ति तय करता था, जिसे 'कुशल' (हुनरमंद) कहा जाता था। जिन बड़े शहरों में मुसलमानों की बड़ी आबादी थी, वहां हिंदू राजाओं ने आधिकारिक रूप से कुशल कर्मचारी को नियुक्त कर रखे थे।''(1)

मुसलमानों के प्रति हिन्दुओं की सहिष्णुता और प्रेमपूर्ण व्यवहार का एक उदाहरण शेख़ मुहम्मद इकराम ने 'तोहफ़तुल मुजाहिदीन' में दिया है (यह पुस्तक शेख़ ज़ैनुद्दीन ने अकबरी काल के मध्य में उस समय लिखी थी जब पुर्तगाली मालाबार के मुसलमानों पर अत्याचार कर रहे थे। इस ग्रन्थ के प्रथम तीन अध्यायों में जिहाद के नियमों, मालाबार में इस्लाम के प्रसार तथा यहाँ की हिन्दू जातियों के रीति-रिवाजों का उल्लेख है। चतुर्थ अध्याय में पुर्तगालियों के अत्याचारों का विस्तृत उल्लेख है)

> ''तीसरी शताब्दी हिजरी में, जब मुस्लिम दरवेशों का एक समूह हज़रत आदम के पदचिन्हों की ज़ियारत करने के लिए लंका जा रहा था, तो विपरीत हवा से उनका जहाज़ मालाबार में 'कदनकलूर' (कदांगनूर) के तट पर चला गया। वहाँ के राजा जेमूरन (सामरी) ने उसके यात्रियों का बड़ा सम्मान किया। उन्होंने उनसे उनके धर्म के बारे में पूछताछ की और उनके बयान से इतना प्रभावित हुए कि जब तीर्थयात्री लंका से लौटे, तो उन्होंने अपनी सत्ता अपने क्षत्रपों को सौंप दी और ख़ुद उनके साथ अरब चले गए। वह वहीं मर गए, लेकिन मरने से पहले, उन्होंने अरब दरवेशों से कहा कि मालाबार में इस्लाम फैलाने का तरीक़ा यह है कि

(1) शेख़ मुहम्मद इकराम, आब-ए-कौसर, इदारा सक़ाफ़ते इस्लामिया, लाहौर, 2006, पृ. 43-44

> आप लोग मालाबार से व्यापार शुरू करें, और उसने अपने शासकों के नाम एक वसीयत लिखी कि इन व्यापारियों से प्रेम और विनम्रता का व्यवहार किया जाए। इसलिए उन्होंने नए आने वाले अरबों के साथ वैसा ही व्यवहार किया और अरब व्यापारी वहां बहुतायत में आकर रहने लगे।''[1]

इसी प्रकार इब्ने बतूता से संबंधित एक अन्य घटना को शेख़ मुहम्मद इकराम ने लिखा हैः

> ''जब इब्ने बतूता ने 8वीं शताब्दी हिजरी में खम्भात से चीन की यात्रा की, तो उसने मालाबार तट पर जगह-जगह मुसलमानों की अच्छी बस्तियाँ देखीं। बंबई प्रांत के कारवार ज़िले में 'हुनादर' की प्राचीन बंदरगाह पर सुल्तान जमालुद्दीन, एक हिंदू राजा की ओर से शासक था और शहर में कई मुस्लिम विद्वान और इस्लामी मदरसे थे। मैंगलोर में मुसलमानों की आबादी लगभग चार हज़ार थी। कालीकट का राजा हिंदू था, लेकिन व्यापारियों का मुखिया मुसलमान था और समुद्री व्यापार में उसका बहुत प्रभाव था।''[2]

मुअब्बर एक तटीय क्षेत्र है। यह पूर्वी तट पर रास कुमारी के उत्तर-पूर्व में कोरुमंडल पर स्थित है। इस क्षेत्र में मुसलमानों की प्राचीन बस्तियाँ थीं। मद्रास प्रांत में सबसे महत्वपूर्ण और सबसे पुरानी बस्ती 'कियाला पटनम' है। गजेटियर रिपोर्ट के अनुसार कियाला पटनम की जनसंख्या तेरह हज़ार के आसपास थी और बहुसंख्यक मुसलमान थे। ज्ञात होता है कि पांड्य वंश के राजाओं ने नवागंतुक अरबों को चार मील लम्बा और डेढ़ मील चौड़ा क्षेत्र दिया था जहाँ

(1) शेख़ मुहम्मद इकराम, आब-ए-कौसर, इदारा सक़ाफ़ते इस्लामिया, लाहौर, 2006, पृ. 45
(2) उपरोक्त संदर्भ, पृ.47

उन्होंने अपनी बस्तियाँ बसाई और यहाँ की स्थानीय महिलाओं से विवाह किया और धीरे-धीरे इस क्षेत्र में काफ़ी प्रभाव प्राप्त किया। इसके अतिरिक्त, मुसलमान 'तन्नेबली' ज़िले की कुल जनसंख्या के छः प्रतिश और तीन तहसीलों में दस प्रतिशत हैं। इस क्षेत्र में हिंदू और मुसलमानों के अच्छे संबंध हैं। पोटनपोडार (Pottanpodar) की मस्जिद के सम्बंध में लिखा है कि यहाँ मुसलमानों से अधिक हिन्दू निवासी हैं। शेख़ इकराम ने यह भी लिखा है कि हिंदू यहां के मज़ारों का सम्मान करते हैं और बड़े उत्साह से मस्जिदों का आशीर्वाद लेते हैं।[1]

उपरोक्त साक्ष्यों और परम्पराओं के आलोक में यह पूरे विश्वास के साथ कहा जा सकता है कि हिन्दू राजाओं ने प्राचीन भारत में न केवल मुसलमानों के साथ दया, संतुलन और संयम का व्यवहार किया बल्कि उन्हें आराम से रहने और इस्लामी संस्कृति को बढ़ावा देने के अवसर भी दिए, इसी तरह उन्होंने व्यापार के अवसर भी प्रदान किए। इन तथ्यों से यह भी पता चलता है कि प्राचीन भारत में दोनों जातियां एक साथ रहती थीं। विचारों, विश्वासों और संस्कृति में अंतर के बावजूद दोनों समुदायों के बीच सुखद संबंध हैं। हमें आज भी अतीत की उज्ज्वल और सुन्दर परम्पराओं को बढ़ावा देने और देश में ऐसी रेखाओं को परिभाषित करने की आवश्यकता है जो मानव वर्गों के बीच संबंधों को स्थिर कर सकें।

मुसलमानों का हिंदुओं के साथ अच्छा व्यवहार

मुहम्मद बिन क़ासिम ने 771 ई. में भारत में प्रवेश किया। उस पर आमतौर पर सिंध के हिंदुओं के साथ दुर्व्यवहार करने का आरोप लगाया जाता है। 'जचनामा' आदि में भी ऐसी ही परम्पराएं मिलती हैं। विद्वानों ने इन परम्पराओं के सम्बन्ध में संतोष व्यक्त नहीं किया है।

(1) शेख़ मुहम्मद इकराम, आब-ए-कौसर, इदारा सक़ाफ़ते इस्लामिया, लाहौर, 2006, पृ. 49-50

इसलिए मुहम्मद बिन क़ासिम पर हिंदुओं के साथ दुर्व्यवहार और उत्पीड़न का आरोप लगाना उचित नहीं है क्योंकि इतिहासकारों द्वारा दर्ज की गई घटनाओं से पता चलता है कि उन्होंने सभी वर्गों के प्रति समान रवैया अपनाया। इस बारे में शेख़ इकराम ने अपनी किताब ‘आब-ए-कौसर’ में लिखा हैः-

> ‘‘उन्होंने सिंध के लोगों के साथ बहुत ही सौम्य व्यवहार किया। आज्ञा मानने वालों को किसी प्रकार से परेशान नहीं किया गया, बल्कि उन्हें हर तरह से शांति प्रदान की गईं उन्होंने हिंदुओं को वे विशेषाधिकार दिए जो कुछ उलेमा के अनुसार ‘अहल-ए-किताब’ अर्थात मुसलमानों, ईसाइयों और यहूदियों के लिए आरक्षित थे और एक ऐसी प्रणाली की नींव रखी जो निश्चित रूप से पहले के राजाओं की तुलना में बेहतर थी। शेख़ मुहम्मद इकराम ने राजा दाहिर के पिता राजा जच के बारे में डॉ. तारा चंद की प्रसिद्ध पुस्तक ‘तारीख़ अहल-ए-हिंद’ से एक अंश उद्धृत किया है। जच एक कट्टर शासक था। उसने अपनी प्रजा के एक वर्ग के लिए कठोर दमनकारी क़ानून लागू किए। उसने उन्हें हथियार ले जाने, रेशमी कपड़े पहनने, घोड़ों की काठी लगाने से मना किया और उन्हें नंगे पैर और नंगे सिर जाने और अपने साथ कुत्तों को ले जाने का आदेश दिया। मुहम्मद बिन क़ासिम के बारे में वे लिखते हैं, मुस्लिम विजेता ने विजितों के साथ ज्ञान और उदारता का व्यवहार किया। पुरानी व्यापारिक व्यवस्था को जारी रखने की अनुमति दी गईं पुराने कर्मचारियों को बरक़रार रखा। हिंदू पुजारियों और ब्राह्मणों को अपने मंदिरों में पूजा करने की अनुमति दी और उन पर केवल एक छोटा सा कर लगाया गया जिसे आमदनी

> के अनुसार चुकाना पड़ता था। ज़मींदारों को अनुमति दी कि वह ब्राह्मणों और मंदिरों को पुराना कर देते रहें। आगे लिखा है कि मुहम्मद बिन क़ासिम ने पुरानी व्यवस्था को तनिक भी नहीं बदला। राजा दाहिर के प्रधानमंत्री को मंत्रालय में रखा गया और उनकी सलाह के बाद, साम्राज्य के समस्त प्रशासन को हिंदुओं के हाथों में रहने दिया गया। अरब केवल सेना और सैन्य प्रबंधन के लिए थे। मुसलमानों के मामले क़ाज़ियों द्वारा तय किए जाते थे, लेकिन हिंदुओं के लिए उनकी पंचायतें बरक़रार रहीं। यह मुहम्मद बिन क़ासिम की उदारता और न्याय ही था जिसने उसके विरोध को कम कर दिया। कई शहरों ने स्वयं सरकार की आज्ञाकारिता को स्वीकार कर लिया। अल्लामा बिलाज़री ने ‘फ़तूहुल बलदान’ में यहाँ तक लिखा है कि जब मुहम्मद बिन क़ासिम को बंदी बना लिया गया और वह इराक़ चला गया, तो भारत के लोग रोए और केरच (कच्छ) के लोगों ने तो उसकी एक मूर्ति बनाई।’’[1]

मुहम्मद बिन क़ासिम के अच्छे व्यवहार और संयम का वहाँ की हिन्दू प्रजा पर सकारात्मक प्रभाव पड़ा होगा, जिसके कारण यहाँ की हिन्दू प्रजा उसकी समानांतर उपलब्धियों की प्रशंसा करती थी। आज भी उसी तरह का व्यवहार और सकारात्मक चरित्र अपनाने की ज़रूरत है।

भक्ति आंदोलन

लोधियों के शासन काल (1321-1526 ई.) में भक्ति आन्दोलन का उदय हुआ, शेख़ मुहम्मद इकराम ने इस आन्दोलन के बारे में

(1) आब-ए-कौसर, पृ. 25-27

निम्नलिखित विवरण दिया है। ''भारत में कई संत प्रकट हुए जो हिंदुओं और मुसलमानों की मान्यताओं को मिलाना चाहते थे और ऐसे संप्रदाय शुरू किए जिनमें दोनों धर्मों की मान्यताएं शामिल थीं। इन ऋषियों में कबीर प्रथम थे। जिनका जन्म 1440 में हुआ था और मृत्यु 1518 में हुई थी। 'तज़किरतुल औलिया' में उन्हें ''शेख़ कबीर जोलाहा क़द्दसा सिर्रहु'' लिखा है और कहा है कि यह हज़रत तक़ी सुहरवर्दी के ख़लीफ़ा थे और उस समय के सभी एकेश्वरवादियों से प्रतिष्ठित थे। कुछ दिनों तक रामानंद बैरागी की सेवा में रहकर उन्होंने हिन्दी भाषा में काव्य-कला सीखी। उन्होंने हिंदी भाषा में पहले आध्यात्म का वर्णन किया। गुरु नानक द्वारा उनका अनुकरण किया गया, कबीर साहिब ने बाद में हज़रत शेख़ भीका चिश्ती की सेवा में रहकर ख़िलाफ़त प्राप्त की और हिंदू-मुस्लिम दोनों समूह उन पर विश्वास करते थे। हर कोई उनको अपना माता था और भारत के लोग जो आपसे संबंधित हैं वे 'कबीर पंथी' कहलाते हैं। उनकी पूजा-अर्चना का तरीक़ा मुसलमानों जैसा है लेकिन शब्द अलग हैं। इन्हीं बातों के कारण शेख़ इकराम ने ताराचंद की 'तारीख़-ए-हिन्द' पुस्तक के संदर्भ से हिंदू मान्यताओं पर इस्लाम के प्रभाव का उल्लेख किया है। दक्षिण में, जहां मुसलमान सबसे पहले बसे, हिंदुओं के धार्मिक और सामाजिक विचारों में परिवर्तन शंकराचार्य, शैव और वैष्णववाद के साधुओं के कारण हुआ। रामानुज ने अपनी विशिष्ट शैली निर्धारित की। उनके दर्शन से भक्ति आंदोलन को एक आधार मिला। उनके अनुयायियों ने पूरे भारत में इस आंदोलन को फैलाया। भक्ति या प्रेम और पूजा का धर्म जो धीरे-धीरे उत्तर और दक्षिण के सभी हिंदुओं में फैल गया। एक अर्थ में यह उपनिषदों और भगवद् गीता की शिक्षाओं पर आधारित था। लेकिन मध्य पूर्व में इसकी लोकप्रियता इस्लामी प्रभाव के कारण थी। भक्ति आंदोलन के पुराने पहलुओं पर इस्लामी प्रभाव के कारण

अधिक ज़ोर दिया गया और कई पहलू इस्लाम से प्राप्त हुए। इसके अलावा मौलाना नजीब अशरफ़ के हवाले से लिखा है कि इस्लाम के प्रचार-प्रसार का काम सूफ़ियों (जो बहमा और बेहमा अर्थात सब के साथ और सबसे अलग के जीते-जागते उदाहरण थे, खुले विचारों वाले, आज़ाद ख़याल और सहिष्णु थे) ने शुरू किया। हिंदुओं ने भी इस रंग को अपनाया। रामानंद, गुरुनानक, स्वामी चैतन्य एक ही तरह के गुरु थे। उन्होंने न केवल 'वैदांतिक एकेश्वरवाद' के सिद्धांत और 'फ़ना फ़िल्लाह' (ईश्वर को समर्पित) के सूफ़ीवाद को लोकप्रिय बनाया। बल्कि उन्होंने अपने समुदाय में प्रवेश करने के लिए हिंदुओं के साथ मुसलमानों को भी अपना लिया, इसका परिणाम यह हुआ कि उनके मानने वालों में नहीं, बल्कि ख़लीफ़ाओं में हम को मुसलमान नज़र आते हैं। कबीर पंथी, दाऊद पंथी (दादू पंथी) इसके जीते-जागते उदाहरण हैं।[1]

इस संदर्भ में कहा जा सकता है कि लोधी शासन के दौरान सहिष्णुता और आपसी सम्मान को काफ़ी हद तक बढ़ावा दिया गया था। हालांकि भक्ति आंदोलन के दर्शन पर आपत्ति की जा सकती है। लेकिन यहाँ इसके सैद्धान्तिक पहलुओं को नज़रअंदाज़ करते हुए यह निष्कर्ष निकालना अधिक सटीक होगा कि हिन्दू मुसलमान इस हद तक उदारवादी थे कि हिन्दुओं ने इस्लामी शिक्षाओं को अपनी रहस्यमय आद्धयात्मिक शैली में पूरी तरह आत्मसात कर लिया। इसी प्रकार यह भी सामने आता है कि जब इस हद तक एकता थी तो अन्य सामाजिक और सांस्कृतिक पहलुओं में भी एकरूपता होगी।

मुस्लिम शासकों की शासन-शैली

अकबर ने 1556 में सत्ता संभाली। सब जानते हैं कि अकबर के

(1) आब-ए-कौसर, पृ. 465-466

शासन काल में इस्लाम बहुत कमज़ोर हो गया था। इतिहासकारों ने इसके कई कारण लिखे हैं, लेकिन उन्होंने शासन व्यवस्था को चलाने के लिए मेल-मिलाप का तरीक़ा अपनाया। कई लोगों ने इस तरीक़े की आलोचना भी की है। यहां इन सब चीज़ों को छोड़ा जा रहा है। हालांकि शेख़ मुहम्मद इकराम ने अकबर की प्रशासनिक प्रणाली के बारे में लिखा हैः-

> ''जहाँगीर ने जिस सर्वसंभाव की इतनी प्रशंसा की है, वह इस्लामी भारत के इतिहास में कोई नई बात नहीं थी। जहाँ तक विभिन्न धर्मों के प्रति सहिष्णुता और सभी वर्गों को सरकार में हिस्सा देने का सम्बंध है, सिंध के विजेता मुहम्मद बिन क़ासिम ने इसे पूरी तरह से लागू किया। कश्मीर में सुल्तान ज़ैनुल आबिदीन का शासन काल शांति के लिए यादगार है। अंतर कमी और अधिकता का था। निस्संदेह अकबर ने इसका विस्तार किया और अपने शासन काल की शुरुआत से ही इसका पालन किया। 1562 में पहली राजपूत राजकुमारी से शादी हुई। शीघ्र ही राजा भगवान दास और राजा मान सिंह को उच्च पद प्राप्त हुए। जिज़िया को 1564 ई. में समाप्त कर दिया गया। तीर्थ यात्रा कर भी अगले वर्ष निलंबित कर दिया गया। उस समय दरबार में 'मख़दूमुल मुल्क' (देश सेवक) और 'सदरुस्सुदूर' (महाध्यक्ष) का दबदबा था। लेकिन बदायूंनी या किसी अन्य इतिहासकार ने उनकी ओर से किसी प्रतिरोध का उल्लेख नहीं किया है। यह सच है कि सर्व शांति की नीति के कारण शासन-व्यवस्था में मुसलमानों का जो महत्व था, वह कुछ हद तक कम हो गया और कुछ हद तक ग़ैर-मुस्लिमों ने भी सरकार में भाग लेने का अनुचित

> लाभ उठाया। लेकिन चूंकि ये उपाय ज़्यादातर राजनीतिक और प्रशासनिक थे, धार्मिक नहीं थे और इस्लामी भारत के इतिहास में (जैसे शेरशाह सूरी और उनके उत्तराधिकारियों के शासनकाल में) हिंदुओं को उच्च स्थान दिए गए थे। इसलिए इन उपायों का मुस्लिम सरदारों या विद्वानों ने विरोध नहीं किया और 'सब का साथ' की विधि मुग़ल व्यवस्था का हिस्सा बन गई, जो अकबर के बाद भी परिवर्तनों के साथ जारी रही।''(1)

यह कहा जा सकता है कि अकबर की नीति समस्त प्रजा को एक साथ लेकर चलने की थी, उसका विचार था कि मुसलमानों के साथ-साथ हिंदुओं को भी सम्मान और उच्च पद दिए जाने चाहिए ताकि देश में समाज शांतिपूर्ण रहे और समाज में किसी भी प्रकार की अशांति न फैलने पाए। इससे यह भी पता चलता है कि अकबर ने 'सब का साथ' के लिए जो तरीक़ा अपनाया वह त्रुटिपूर्ण नहीं था बल्कि उससे पहले भी ऐसी बातें पाई गई थीं। आवश्यकता इस बात की है कि शासक आज भी इस नीति को अपना आदर्श बनाए ताकि किसी के प्रति असहिष्णुता और अन्याय न हो सके।

इन सभी ऐतिहासिक दस्तावेज़ों के आलोक में यह निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि भारत में हिंदुओं और मुसलमानों के बीच संबंध बहुत सौहार्दपूर्ण थे। सभी वर्गों के साथ भाईचारे का व्यवहार किया गया। आज आमतौर पर मुस्लिम शासकों के लिए यह आपत्ति की जाती है कि वे हिंदू विरोधी थे। उन्होंने हिन्दुओं पर अत्याचार किया जबकि तथ्य इसके विपरीत हैं। सच तो यह है कि यह आपत्ति और कुछ नहीं बल्कि एक राजनीतिक कुतर्क है। जो कोई भी पक्षपात के चश्मे को हटाकर मुस्लिम शासकों के काल की घटनाओं का

(1) शेख़ मुहम्मद इकराम, रूद-ए-कौसर, इदारा सक़ाफ़ते इस्लामिया, लाहौर, 2005, पृ. 85-86

अध्ययन करेगा, वह निश्चित रूप से आश्वस्त होगा कि मुस्लिम शासकों ने बहुत सहृदयता और सहिष्णुता दिखाई। अपनी संस्कृति, धर्म और भाषा के विकास के अवसर प्रदान किए। आज भी उसी परम्परा को बढ़ावा देने की ज़रूरत है।

मुस्लिम शासन काल में हिंदू पुनर्जागरण आंदोलन

मुग़ल साम्राज्य में एक आंदोलन हुआ जिसने बंगाल के मुसलमानों को बहुत प्रभावित किया। चैतन्य आंदोलन या वैष्णव आंदोलन के सम्बंध में शेख़ मुहम्मद इकराम ने लिखा है

> ''उनका जन्म 1486 में हुआ, उन्होंने बाद में मुस्लिम विद्वानों के साथ एकेश्वरवाद के मुद्दे पर बहस की। उनकी पद्धति में कई चीज़ें हैं जो सूफ़ियों की पद्धति से प्रभावित थीं। उनके क़रीबी और प्रभावशाली सहयोगियों में कुछ लोग थे जो फ़ारसी और अरबी के विशेषज्ञ थे और बंगाल के मुस्लिम राजा के दरबार में दो उच्च सम्मानित पदों पर आसीन थे। रूप और सनातन दो ब्राह्मण भाई थे। वैष्णव इतिहासकार लिखते हैं कि इन दोनों भाइयों की ख्याति अकबर तक पहुंची और वह 1573 में मथुरा आकर उनसे मिला। (हालांकि इतिहासकारों ने अकबर की इस भेंट के संबंध में असहमति व्यक्त की है) लेकिन यह सच है कि बंगाल के मुग़ल सूबेदार मान सिंह उनके बहुत बड़े विश्वासी थे। और सर यदुनाथ सरकार का कहना है कि चैतन्य के आंदोलन को राजस्थान के राजपूत राजवंश से बहुत समर्थन मिला। वृंदावन में इस अवधि में गगनचुंबी मंदिरों का निर्माण हुए। उनमें सबसे बड़े और शानदार 'गोविंद जी का मंदिर' को मान सिंह ने एक करोड़ रुपये की लागत से बनवाया

> था। इस मंदिर के एक संस्कृत शिलालेख से पता चलता है कि यह मंदिर 1590 ईस्वी में महाराजा पृथ्वीराज के वंशज मान सिंह ने अपने गुरु रूप और सनातन के मार्गदर्शन में बनवाया।''[1]

शेख इकराम ने मुसलमानों पर चैतन्य के आंदोलन के प्रभाव के बारे में लिखा हैः-

> ''ऐसा कहा जाता है कि यह आंदोलन बाबा नानक की शिक्षाओं के अनुसार हिंदू धर्म और इस्लाम को मिलाने का एक प्रयास था। हक़ीक़त इसके बिल्कुल उलट है। इस आंदोलन का उद्देश्य कबीरवाद या प्रारंभिक सिख धर्म की तरह हिंदुओं और मुसलमानों को एकजुट करना नहीं था, बल्कि हिंदू धर्म को पुनर्जीवित करना था और इस उद्देश्य में यह आंदोलन इस हद तक सफल हुआ कि न केवल बंगाल में इस्लाम का प्रसार रुक गया, बल्कि कुछ मुसलमानों ने वैष्णव धर्म को अपना लिया। धर्म और हिंदू तरीक़े आम मुसलमानों और मध्य और उत्तरी बंगाल के अशिक्षित और ग़रीब मुसलमानों की मान्यताओं और प्रथाओं में प्रवेश कर गए।''[2]

वैष्णव आन्दोलन के सम्बंध में शेख़ इकराम ने यह भी लिखा है कि इस आन्दोलन का उद्देश्य रक्षात्मक ही नहीं आक्रामक भी था। उन्होंने न केवल हिंदुओं को मुसलमान बनने से रोका, बल्कि मुसलमानों में वैष्णव धर्म का प्रचार भी किया और इसमें वह बहुत सफल रहे, चैतन्य ने खुद कुछ मुसलमानों को धर्मत्याग का रास्ता दिखाया। उनके

---

(1) रूद-ए-कौसर, पृ. 494-495

(2) उपरोक्त संदर्भ, पृ.493

एक क़रीबी सहयोगी हरिदास पहले मुसलमान थे और क़ाज़ियों के परिवार से थे। इसी प्रकार 'बिजली ख़ान' एक अफ़ग़ान सूरमा उसके हाथ पर वैष्णव बन गया। श्यामानंद ने मुसलमानों के बीच बड़े पैमाने पर प्रचार किया और सफल रहे। इस प्रयोजन के लिए उन्होंने आर्थिक हथकंडों का भी इस्तेमाल किया और राजा नारायणगढ़ से कहा कि मुस्लिम मज़दूरों को तब तक काम नहीं दिया जाना चाहिए जब तक कि वे अपना धर्म नहीं छोड़ देते। निचली जातियों में यह नीति बहुत विस्तृत हुई।

मुसलमानों को पूरी तरह से वैष्णववादी बनाने के अतिरिक्त, वैष्णव वंश के साथ मुसलमानों को जोड़ने के उद्देश्य से वैष्णववाद की कई शाखाएं शुरू हुईं। एक बहुत व्यापक श्रृंखला 'बाउल' फ़क़ीरों की थी, जिनके बारे में कहा जाता है कि ''वे हिंदुओं और मुसलमानों के संयुक्त संप्रदाय थे।''(1)

शेख इकराम इस आंदोलन के बारे में यह भी लिखते हैं

> ''वैष्णव आंदोलन ने साहित्य के माध्यम से बंगाली मुसलमानों को भी प्रभावित किया। एक ओर इस व्यापक आन्दोलन ने बंगाली हिन्दुओं में नवजागरण की स्थिति पैदा कर दी और अब वे जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में ज़ोरदार प्रहार करने लगे। अन्य कृष्ण भक्ति के प्रखर भावों ने प्रायः प्रभावशाली काव्य का रूप धारण कर लिया। इसने दो तरह से मुसलमानों को प्रभावित किया। सर्वप्रथम इस नवीन साहित्य ने बंगाली भाषा और साहित्य को एक विशेष रंग प्रदान किया। जिसने बंगाली बोलने और समझने वाले मुसलमानों को प्रभावित किया। अन्य कृष्ण भक्ति की कविताएं इतनी लोकप्रिय हुईं कि कई ग़ैर-वैष्णव मुसलमानों

(1) रूद-ए-कौसर, पृ. 497

> ने इन विषयों पर नज़्में लिखीं। आख़िर में हालात यहां तक पहुंच गए कि चश्म पीरों की महफ़िलों में विष्णु पद गाए जाते और उन पर मुस्लिम फ़क़ीर भावविभोर होते और राज्य के लोग उनके लिए प्रार्थना करते थे। इस अवधि की एक दिलचस्प कृति 'मसाइलुश्शुयूख़' है, जो हज़रत नूर क़ुतुब आलम के सिलसिले के एक बुज़ुर्ग शाह क़ुतुबुद्दीन हक़्क़ानी ने नवीं शताब्दी हिजरी के अंत में संकलित की, इस पुस्तक में हज़रत नूर क़ुतुब आलम के संदर्भ में एक प्रसंग दिया गया है कि जब उनकी महफ़िल में 'बिष्णु पद' दूसरी नअ़तों आदि के साथ गाते और किसी ने कृष्ण-राधा और ऐसे ही हिन्दू नामों पर आपत्ति की तो जवाब मिला कि फ़िरऔन और नमरूद के नाम भी पवित्र क़ुरआन में हैं। इस परम्परा से शेख़ इकराम ने निम्नलिखित निष्कर्ष निकाला है। इस परम्परा का श्रेय हज़रत क़ुतुब आलम को दिया जाता है। 'विष्णु पद' के औचित्य के लिए एक आधिकारिक और प्रसिद्ध बुज़ुर्ग के बयान की मांग का परिणाम है, ऐसा प्रबल अनुमान है कि जिन बुज़ुर्गों ने इस परम्परा को अपनी पुस्तक में दर्ज किया है उनकी सभा में कम से कम उस समय की सूफ़ी सभाओं में, नअ़त और क़व्वाली के साथ 'विष्णु पद' का पाठ किया जाता था।''(1)

हिंदू-मुस्लिम सम्बंधों के अन्य पहलू

इतिहासकारों और लेखकों ने भारत के इतिहास की बहुत ही निष्पक्ष और संयमित समीक्षा की है, इसलिए सहिष्णुता, आपसी एकता, एकजुटता और एकजुट सांझे राष्ट्रवाद के संदर्भ से भारत के

(1) रूद-ए-कौसर, पृ. 497-498

बारे में मुसलमानों की सराहनीय सेवाएं इतिहास में स्पष्ट रूप से दिखाई देती हैं, इसलिए पिछले अध्याय में हमने देखा कि मुसलमानों में अपने देश भारत के लिए कितनी भक्ति और प्रेम है, न केवल भक्ति और प्रेम, बल्कि धर्म, सभ्यता, भाषा, उनके महापुरुषों के आदर और सम्मान में कोई कमी नहीं की है। आज जिस कुशलता और राजनीतिक शक्ति द्वारा धर्म और मज़हब के दुरूपयोग से जिस प्रकार घृणा फैलाई जा रही है और एकता को कलंकित किया जा रहा है, वह अत्यंत शर्मनाक है, जबकि डॉ. मुहम्मद उमर ने इन शब्दों में भारतीय समाज की सुन्दरता और उसकी समरसता का वर्णन किया हैः-

> ''मुसलमानों के आने से पहले भारत में कई धर्म थे, जैसे बौद्ध धर्म, जैन धर्म और वैदिक धर्म। इन धर्मों के गुरुओं की शिक्षाओं में अत्यंत विरोधाभास पाया जाता है, लेकिन फिर भी, जैसा कि वे जन्म से भारतीय थे, उनके बीच खुला संघर्ष नहीं हुआ, प्रत्येक व्यक्ति को अपनी इच्छानुसार किसी भी धर्म को अपनाने की स्वतंत्रता थी। यही कारण है कि भारत के धार्मिक इतिहास में यूरोप की तुलना में हिंसा और दमन के बहुत कम उदाहरण मिलते हैं।''[1]

जब मुसलमानों ने भारत में प्रवेश किया तो एक समस्या खड़ी हो गई, वह यह कि मुसलमान भारत पर शासन करने के उद्देश्य से आए हैं। दूसरी बात यह है कि वह अपने साथ एक ऐसा धर्म लेकर आए थे जो वहां के लोगों और विश्वासियों से बिल्कुल अलग था। इस सिद्धांत पर अल-बैरूनी ने अपनी पुस्तक में हिंदू-मुस्लिम मतभेदों के कारणों को दर्ज किया हैः-

(1) डॉ. मुहम्मद उमर, हिन्दुस्तानी तहज़ीब का मुसलमानों पर असर, पब्लीकेशन डिवीज़न, अलीगढ़ मुस्लिम यूनिवर्सिटी, 1975, पृ. 13

> ''हिंदू हमसे बिल्कुल अलग हैं और उनकी कई बातें हमें बहुत जटिल और अस्पष्ट लगती हैं, लेकिन अगर हमारे और उनके बीच घनिष्ठ संबंध स्थापित हो जाते हैं, तो उनको समझना आसान हो जाएगा और जो चीज़ें समझ और बुद्धि से परे लगती हैं, वे साफ़ और स्पष्ट हो जाएंगी।''[1]

हिंदुओं और मुसलमानों के बीच मतभेदों का मुख्य कारण धर्म में अंतर है। वे हिन्दू धर्म में हमसे बिल्कुल भिन्न हैं, न तो हम यहाँ पाई जाने वाली किसी वस्तु को स्वीकार करते हैं और न ही वे हमारे किसी धर्म को मानते हैं।[2] इसलिए यह कहा जा सकता है कि अगर हम उनकी भाषा और धर्म को ध्यान से सीखें और अपने मदरसों और स्कूलों में उस पर ध्यान दें, तो निश्चित रूप से न केवल हिंदू और मुसलमानों के बीच पाई जाने वाली कई ग़लतफ़हमियां दूर होंगी, बल्कि उन्हें एक-दूसरे को समझने में भी मदद मिलेगी। इतिहासकारों ने कहा है कि मुसलमानों के आगमन के प्रारंभ में दोनों जातियों के बीच घृणा और तिरस्कार पाया जाता था परन्तु यह स्थिति अधिक दिनों तक नहीं रह सकी, यह बात डॉ. मुहम्मद उमर ने अपनी पुस्तक 'हिन्दुस्तानी तहज़ीब का मुसलमानों पर असर' में डॉ. तारा चंद की पुस्तक 'Influence Of Islam On Indian Culture' कें संदर्भ से लिखा हैः-

> ''जब विजय की पहली आंधी थम गई और हिंदू और मुसलमान पड़ोसी के रूप में रहने लगे, तो उन्होंने लम्बे समय तक साथ-साथ रहने के कारण एक-दूसरे के विचारों, आदतों, रीति-रिवाजों और परम्पराओं को समझने की कोशिश की और बहुत जल्द दोनों जातियां एक हो गईं।''[3]

(1) डॉ. मुहम्मद उमर, हिन्दुस्तानी तहज़ीब का मुसलमानों पर असर, 1975, पृ. 20
(2) उपरोक्त संदर्भ, पृ.17
(3) हिन्दुस्तानी तहज़ीब का मुसलमानों पर असर, पृ. 16

जब भारत में मुस्लिम सत्ता की स्थापना हुई तो उस समय के ऐतिहासिक साहित्य में मुसलमानों द्वारा दिखाई गई सहनशीलता, न्याय और सहिषणुता के अनेक उदाहरण मिलते हैं इसलिए मुग़ल काल के शासक जलालुद्दीन मुहम्मद अकबर द्वारा निर्धारित सिद्धांतों के संबंध में एकता, एकजुटता और हिंदू-मुस्लिम सौहार्द को लगभग सभी निष्पक्ष इतिहासकारों और लेखकों द्वारा दर्ज किया गया है। अकबर पढ़ा-लिखा नहीं था लेकिन उसमें राजनीतिक अंतर्दृष्टि, समझ और बुद्धिमत्ता थी, इसीलिए उसने सभी प्रजा को एकजुट करने का सफलतापूर्वक प्रयास किया। अतः डॉ. मुहम्मद उमर ने 'आईन-ए-अकबरी' के बारे में लिखा हैः-

1. तुम्हें अपने मन को किसी भी धार्मिक पक्षपात से प्रभावित नहीं होने देना चाहिए। बिना किसी पक्षपात के न्याय करना चाहिए और साथ ही हर वर्ग के लोगों के धार्मिक रीति-रिवाजों और परम्पराओं को ध्यान में रखना चाहिए।
2. विशेष रूप से गोहत्या से बचना, जो तुम्हें भारत के लोगों से जुड़ने में मदद करेगा और इस प्रकार तुम इस देश के लोगों को कृतज्ञता के बंधन में बांध दोगे।
3. तुम्हें किसी भी संप्रदाय के किसी भी पूजा स्थल को तोड़ना या नष्ट नहीं करना चाहिए और हमेशा न्याय प्रिय होना चाहिए कि राजा और उसकी प्रजा के बीच एक ख़ुशहाल रिश्ता बना रहे और इससे देश में शांति को बढ़ावा मिले।
4. इस्लाम के प्रसार का कार्य क्रूरता और कठोरता के स्थान पर प्रेम और समरसता से सुचारू रूप से चलेगा।
5. अपनी प्रजा की विभिन्न विशेषताओं का ध्यान इस प्रकार रखो कि एक वर्ष के विभिन्न ऋतुओं की भाँति राजनीतिक शरीर रोग मुक्त रहे, भारत में विभिन्न धर्मों के लोग रहते हैं और ख़ुदा का शुक्र करो कि बादशाहों के बादशाह ने इस देश का शासन तुम्हें प्रदान किया है।[1]

इन सभी तथ्यों को देखने के बाद यह अनुमान लगाया जाता है कि भारत में गंगा-जमुनी तहज़ीब और सहिष्णु वातावरण को स्थिर करने के लिए अकबर ने सभी धार्मिक प्रतिबंधों को समाप्त कर दिया था और एकता और प्रेम के संबंधों को मज़बूत करने के लिए भारत के सभी वर्गों को मानव अधिकार दिए गए थे। इस आपसी एकता का संदर्भ डॉ. सैयद महमूद ने अपनी दुर्लभ पुस्तक 'मुत्तहिदा हिन्दुस्तानी क़ौमियत' में आचार्य प्रफुल्लाचंद्र की पुस्तक 'Letters of Aurangzeb' के संदर्भ से लिखा हैः-

> ''जिस समय इंग्लैंड की रानी मामूली अधिकारों के लिए अपनी प्रजा पर अत्याचार कर रही थी, उस समय अकबर ने लोगों के अधिकारों और एक न्यायपूर्ण शासन को मान्यता दी जिसका उदाहरण आज भी सभ्य सरकारें नहीं दे सकतीं।''[2]

डॉ. सैयद महमूद का कहना है कि ''यह अकबर की विशेषता ही नहीं बल्कि 'धार्मिक सहिष्णुता' थी, जिसमें हितों की चिंता के कारण किसी तरह उदारता की कमी नहीं थी, जो मुसलमानों के शासन काल में पाई जाती है और यह केवल मुग़ल बादशाहों के यहाँ नहीं बल्कि अन्य मुस्लिम शासकों के यहां भी मौजूद थी। स्वयं बेचारे बदनाम औरंगज़ेब के बारे में एलफ़िंस्टन (Alhpinston) की पुस्तक 'हिस्ट्री ऑफ़

(1) हिन्दुस्तानी तहज़ीब का मुसलमानों पर असर, पृ. 25-26
(2) डॉ. सैयद महमूद, मुत्तहिदा हिन्दुस्तानी क़ौमियत, अदबी मर्कज़ हिन्द पब्लिकेशंस, पृ. 14

इण्डिया' (History of India) के संदर्भ से बड़ी अच्छी बात लिखी है:-

''ऐसा नहीं लगता है कि एक भी हिंदू को केवल एक हिंदू होने के लिए मौत या कारावास की सज़ा दी गई हो, या संपत्ति कर का भुगतान करने के लिए मजबूर किया गया हो, या कभी भी अपने पूर्वजों के तरीक़े से स्वतंत्र रूप से पूजा करने पर आपत्ति जताई गई हो।''(1)

इसी प्रकार शेरशाह सूरी और उसकी सहिष्णु नीति की चर्चा अत्यधिक आधिकारिक स्रोतों से की है, वह लिखते हैं:-

''हिंदू और मुसलमानों ने भारत की सुरक्षा के लिए बार-बार अपने प्राणों की आहुति दी है, इतिहास के पन्ने देश की शांति और एकता के लिए इन तथ्यों से समृद्ध हैं। देश की एकता और एकजुटता के लिए जो उदाहरण हमें मिलते हैं वे बहुत महत्वपूर्ण हैं। 'तारीख़-ए-फ़रिश्ता' में उल्लेख किया गया है कि लगभग एक लाख राजपूत राणा सांगा के झण्डे तले थे और सुल्तान इब्राहिम के कई दरबारी जो अब तक बाबर के साथ शामिल नहीं हुए थे, राणा सांगा के साथ मित्रा रखते थे। महमूद ख़ान सिकंदर लोदी का बेटा उससे (राणा से) जा मिला और मारवाड़ के राजा देव मेवाती के बारह हज़ार सवारों के साथ (और बहुत से राजाओं के साथ) उसके वफ़ादार हुए, हसन ख़ान मेवाती बारह हज़ार घुड़सवारों के साथ उसकी सहायता के लिए आया, और दो लाख घुड़सवारों के साथ हिन्दुस्तान को बचाने के लिए आगरा की ओर बढ़े क्योंकि बाबर को कुछ हिन्दू छत्रपों पर भरोसा नहीं था इसलिए उसने हर एक को

(1) डॉ. सैयद महमूद, मुत्तहिदा हिन्दुस्तानी क़ौमियत, अदबी मर्कज़ हिन्द पब्लिकेशंस, पृ. 14

एक-एक सीमा पर नियुक्त करके ख़ुद मुग़ल सेना के साथ, जो उनके साथ काबुल से आई थी, और चार हिन्दी अमीर कमाल ख़ान व जमाल ख़ान, सुल्तान अलाउद्दीन के बेटे, अली ख़ान फ़रमली और निज़ाम ख़ान शासक बयाना के साथ आगरा से रवाना हुए, जब वे गाँव कांवा (ख़ानवा) के स्थान पर पहुंचे, जो बयाना का क्षेत्र था, वे वहाँ रुके और बयाना की तरफ़ दोनों सेनाओं के बीच संघर्ष हुआ। राणा सांगा के साथ हसन ख़ान मेवाती और अन्य मुस्लिम सरदार मौजूद थे। हसन ख़ान मेवाती इस लड़ाई में मारा गया। हिंदू और मुस्लिम सभी भारत को आज़ाद कराने के लिए सहमत हुए। यह इस बात का प्रमाण है कि पठानों के राज में हिन्दुओं और मुसलमानों के सम्बंध ख़राब नहीं थे। हमेशा ऐसा ही रहा, एक शासक दूसरे को जीतना चाहता था, हिंदुओं और मुसलमानों के बीच कोई अंतर नहीं था। मुसलमानों ने नादिर शाह के ख़िलाफ़ लड़ाई लड़ी, इसी तरह मराठा अहमद शाह अब्दाली के ख़िलाफ़ मुसलमान मराठों के साथ मिल कर लड़े।''(1)

ये भारत की महान ऐतिहासिक उपलब्धियां हैं, जिसके परिणामस्वरूप एक संस्कृति का उद्भव हुआ, जिसे हम 'सांझी संस्कृति' के रूप में याद करते हैं। हालांकि, इससे यह भी पता चलता है कि भारत में हिंदुओं और मुसलमानों के आपसी संबंध हर समय और हर अवसर पर बहुत सुखद रहे हैं। साथ ही, यह अनुमान भी लगाया जा सकता है कि मुसलमान हिंदू राजाओं के साथ कंधे से कंधा मिलाकर लड़े और अपनी मातृभूमि की रक्षा करना अपना धर्म और नैतिक कर्तव्य मानते थे।

(1) डॉ. सैयद महमूद, मुत्तहिदा हिन्दुस्तानी क़ौमियत, अदबी मर्कज़ हिन्द पब्लिकेशंस, पृ. 14-15

सांझी संस्कृति और उसके मूल्य

डॉ. सैयद महमूद ने सांझी संस्कृति और अखण्ड भारतीय समाज की बहुत ही विद्वतापूर्ण और सकारात्मक चर्चा की है, और सांझी संस्कृति का पोषण और विकास कैसे हुआ, इस पर भी विस्तार से प्रकाश डाला हैः-

> ''जब मुसलमान भारत आए तो वे अपनी संस्कृति को विकसित करने के बजाय भारतीय संस्कृति से प्रभावित हुए। शुरुआत में मुसलमानों ने अपना प्रभाव डाला, लेकिन बाद में वे हिंदू संस्कृति से इस हद तक प्रभावित हुए कि वे इस रंग में पूरी तरह से रंगे गए। इस मेलजोल का नतीजा यह हुआ कि यह इस्लामी संस्कृति भारत में आकर अपने मूल रंग को बरक़रार नहीं रख सकी और इन दोनों के मिलन से एक तीसरी संस्कृति का जन्म हुआ, जिसे हम भारत की 'इस्लामी संस्कृति' या 'लोबोन' की भाषा में इंडो-मुस्लिम कल्चर कह सकते हैं। यही हिंदू-मुस्लिम संस्कृति है जो अकबर और अन्य मुग़ल बादशाहों के दरबार में पली-बढ़ी और पचास साल पहले तक मध्यवर्ग में शालीनता की मानक मानी जाती थी।''[(1)]

एक अन्य स्थान पर वह संयुक्त संस्कृति और सामान्य मूल्यों को बढ़ावा देने के संदर्भ में लिखते हैंः-

> ''मुसलमानों की बुद्धिमानी और देशभक्ति की रणनीति तथा स्वदेशी भाषाओं और संस्कृति का संरक्षण और प्रोत्साहन, लोगों के साथ सूफ़ियों का संपर्क, दो जातियों के

(1) डॉ. सैयद महमूद, मुत्तहिदा हिन्दुस्तानी क़ौमियत, अदबी मर्कज़ हिन्द पब्लिकेशंस, पृ. 17-18

> उच्च उत्साही लोगों का सहयोग, इन सभी चीज़ों ने इच्छा के बिना एक सांझे समाज का निर्माण किया और हम पूर्ण विश्वास के साथ कह सकते हैं कि ब्रिटिश सरकार के यहां पाँव जमाने से पहले एक सामान्य भारतीय वर्ग का गठन हो चुका था।[(1)]

इसी तरह डॉ. सैयद महमूद की दोनों जातियों को दी गई सलाह भारत के निर्माण और विकास तथा उसके बेहतर भविष्य के लिए बहुत महत्वपूर्ण है, अतः वह लिखते हैः-

> ''प्राचीन भारत का तौर तरीक़ा पुनर्जीवित करना चाहते हैं, यदि दोनों जातियों को मिलकर देश के कल्याण के लिए मिलकर काम करना है, तो इस ग़लत विचार को दबाना आवश्यक है। दोनों को यह ध्यान रखना चाहिए कि यह सामान्य संस्कृति और इसकी आवश्यक उत्पाद, आम भाषा, इस्लामी या विदेशी पूंजी नहीं है। यह संस्कृति और भाषा इस भूमि और जलवायु की पैदावार है, और दोनों क़ौमों की इसके विकास में समान हिस्सेदारी है। साथ ही जो समूह या जो लोग देश के कल्याण के लिए काम करना चाहते हैं, उनका पहला कर्तव्य है कि वे इस 'सांझी विरासत' के बचे-खुचे अवशेषों की पूरी तरह से रक्षा करें, अन्यथा हवा की दिशा कुछ और कह रही है।''[(2)]

इस उद्धरण से यह अनुमान लगाया जा सकता है कि भारत के कल्याण, विकास और शासन की गारंटी इस बात पर निर्भर करती है कि दोनों (हिंदू-मुस्लिम) समुदाय आम ग़लतफ़हमियों को दूर करें और

(1) डॉ. सैयद महमूद, मुत्तहिदा हिन्दुस्तानी क़ौमियत, अदबी मर्कज़ हिन्द पब्लिकेशंस, पृ. 16
(2) उपरोक्त संदर्भ, पृ.18

एकजुट रहें। सांझी संस्कृति की रक्षा के संदर्भ में सैयद महमूद का यह उद्धरण भी उल्लेखनीय है:-

> ''मुसलमानों की अधीनता ने शीघ्र ही अंजानेपन का चोला उतार दिया, देश में अधिकांश मुसलमान भारतीय मूल के थे और हैं। यहां तक कि विदेशी सुल्तान और राजकुमार भी मन, जीवन और हितों की दृष्टि से 'भारतीय' बन गए।''[1]

भारत की व्यापक संस्कृति और सामान्य मूल्यों को बढ़ावा देने में बहुत से पात्र हैं, इन सामान्य मूल्यों का प्रभाव भाषा से लेकर आचार-विचार, रहन-सहन, संगीत और स्थापत्य आदि तक दृष्टिगोचर होता है। इस प्रकार सूफ़ियों ने भी सांझी सांस्कृतिक मूल्यों के प्रचार-प्रसार में बहुमूल्य सेवाएं दी हैं। अब इन सांस्कृतिक अवशेषों को नीचे दर्ज किया जाना चाहिए, जिन्होंने न केवल देश की विरासत को संरक्षित किया, बल्कि देश की अखण्डता और एकता का संगम भी बनाया, जो इतिहास का अहम हिस्सा है।

सांझे सामाजिक मूल्य

डॉ. मुहम्मद उमर अपनी किताब 'हिन्दुस्तानी तहज़ीब का मुसलमानों पर असर' में लिखते हैं:-

> ''लम्बे समय से साथ-साथ रहने का प्रभाव यह हुआ कि हिन्दुओं और मुसलमानों के प्रत्यक्ष जीवन में कोई व्यावहारिक अंतर और भेद नहीं रह गया तथा हिन्दू और मुसलमान एक-दूसरे के सामाजिक जीवन में बराबर के भागीदार बन गए। एक-दूसरे के त्योहारों और शादी-ब्याह

(1) डॉ. सैयद महमूद, मुत्तहिदा हिन्दुस्तानी क़ौमियत, अदबी मर्कज़ हिन्द पब्लिकेशंस, पृ. 13

> के आयोजनों में सहर्ष भाग लेते थे।''[1]

इसके अतिरिक्त वे न केवल हिन्दुओं के मेलों में सम्मिलित होते थे अपितु उनके धार्मिक मेलों का सम्मान भी करते थे। अतः मुंशी मुहम्मद सईद अहमद ने अपनी पुस्तक 'उमरा-ए-हुनूद' में हिन्दुओं के पवित्र स्थान 'थानेसर' के संदर्भ में लिखा है कि ''थानेसर हिंदुओं का एक पवित्र स्थान है। वहां हर साल स्नान का मेला बड़ी धूमधाम से आयोजित होता है। सुल्तान सिकंदर लोधी ने इस त्योहार को बंद करने का इरादा व्यक्त किया। मियां अब्दुल्लाह अजोधी, जो बहुत बड़े विद्वान और बुज़ुर्ग थे, इस विषय में बादशाह का कड़ा विरोध किया और बड़ी निर्भीकता से कहा कि बुतख़ाने को वीरान करना किसी भी तरह से उचित नहीं है, और न ही प्राचीन काल से उपयोग किए जाने वाले तालाब या नदी में स्नान करने की मनाही की जानी चाहिए। यह जवाब सुनकर बादशाह को बहुत ग़ुस्सा आ गया और ख़ंजर हाथ में लेकर दौड़ा। उन्होंने उसी साहस और निर्भीकता से फिर उत्तर दिया कि शरीयत जो भी आदेश देती है वह बताता हूं। मानना, न मानना आपके अधिकार में है। इस उत्तर को सुनकर बादशाह का ग़ुस्सा ठंडा हो गया और वह अपनी बात से रुक गया।[1]

इस प्रकार 'हिन्दुस्तानी तहज़ीब का मुसलमानों पर असर' के लेखक सामाजिक परम्पराओं और खुशहाल रिश्तों को बढ़ावा देने के बारे में लिखते हैं:-

> ''लखनऊ में आठवां का मेला लगता था, इस मेले में मुस्लिम स्त्री-पुरुष भाग लेते थे तथा दिल्ली के मुसलमान गढ़मुक्तेश्वर के मेले में भाग लेने जाते थे, वहां के मैदानी इलाक़ों में गंगा के किनारे तंबू गाड़ देते थे। महिलाएं और

(1) हिन्दुस्तानी तहज़ीब का मुसलमानों पर असर, पृ. 51

(2) मुंशी मुहम्मद सईद अहमद माहरीरवी, उमरा-ए-हुनूद, नामी प्रैस कानपूर, 1910, पृ. 21

पुरुष नौका विहार का आनन्द लेते थे। इस मेले के दिनों में आनन्द राम 'मुख़लिस' के साथ शर्फुद्दीन 'पयाम' भी जाया करते थे। दिल्ली में कालकाजी का मेला हुआ करता था, अब भी होता है। मुसलमान इसमें भाग लेते थे, दिल्ली में कैलाश के मेले में मुसलमानों की भागीदारी का भी कई लेखकों ने उल्लेख किया है। इसी तरह हिंदुओं ने भी मुस्लिम त्योहारों में भाग लिया और अपने घरों में उनकी रस्में भी अदा करते थे। मिर्ज़ा राजा राम नाथ 'ज़र्रा' के बारे में लिखा है कि वह मुहर्रम मनाते थे, आशूरा के दिनों में हरे रंग के कपड़े पहनते थे, सबील लगवाते थे, ग़रीबों और ज़रूरतमंदों को खाना बांटते थे।''(1)

इम्तियाज़ अली अर्शी ने आनंद राम 'मुख़लिस' के बारे में लिखा हैः-

''पहले तो पीढ़ियों से मुस्लिम शासकों की नौकरी, फिर हज़रत बेदिल की संगति, उनकी दरवेशी का रंग उन पर ऐसा चढ़ा कि हर रचना में उसकी एक झलक आसानी से दिख जाती है। हालांकि 'मुख़लिस' अपने धार्मिक सिद्धांतों से बंधे हुए थे, गंगा स्नान के बाद उन्होंने मांस खाना छोड़ दिया और अपनी यात्राओं के दौरान इस पर डटे रहे, लेकिन उनकी धार्मिक सहिष्णुता व्यापक थी और उनके स्वभाव में उनके दोस्तों के लिए अपार प्रेम था।''(2)

अलीगढ़ मुस्लिम विश्वविद्यालय वह शैक्षिक संस्था है जिस के स्वभाव में मानव प्रेम और देश भक्ति की भावना विद्यमान है। इसलिए अलीगढ़ मुस्लिम विश्वविद्यालय में हिंदी विभाग के शिक्षक डॉ.गोवर्धन

(1) हिन्दुस्तानी तहज़ीब का मुसलमानों पर असर, पृ. 52
(2) उपरोक्त संदर्भ, पृ. 53

नाथ शुक्ल खुलेपन और सहनशीलता में आनन्द राम 'मुख़लिस' से किसी तरह कम नहीं थे। उनके पुस्तकालय में गीता के साथ-साथ पवित्र क़ुरआन का हिंदी अनुवाद भी था। वे अकसर पवित्र क़ुरआन का अध्ययन करते थे। हिन्दू सूफ़ीवाद के साथ-साथ इस्लामी सूफ़ीवाद में भी उनकी काफ़ी रुचि थी। मुस्लिम सूफ़ियों का नाम बड़े सम्मान से लेते थे।

ये वे विशेषताएं हैं जिन्होंने भारत में कभी भी संप्रदायवाद को पनपने नहीं दिया, क्योंकि समाज में जो चीज़ें प्रचलित थीं, उन्हें दोनों धर्मों के महानुभावों ने समान रूप से मान्यता दी थी।

सांझी संस्कृति और भाषाएं

यह अकाट्य सत्य है कि भाषाएं किसी भी समाज के व्यापक एकीकरण और उसके निर्माण तथा विकास में एक प्रमुख भूमिका निभाती हैं। इस समय के साहित्यकारों, कवियों और बुद्धिजीवियों का दायित्व है कि वे इस प्रकार एक ऐसी व्यवस्था का निर्माण करें जिसमें संख्या अंतर के बावजूद एकरूपता और सद्भाव के सिद्धांतों के नियम पाए जाएं। अतः भारत में यदि उर्दू, हिन्दी या अन्य क्षेत्रीय भाषाओं को देखें तो पता चलता है कि इन भाषाओं ने भारत के सामान्य मूल्यों को बढ़ावा देने में प्रमुख भूमिका निभाई है। इस दर्शन को कामिल क़ुरैशी ने डॉ. तारा चंद के संदर्भ से लिखा हैः-

''मुस्लिम ज़ेह्न ने हिंदू रंग को स्वीकार कर लिया और उसने फ़ारसी और तुर्की की जगह स्थानीय भाषाओं को सीखना और उपयोग करना शुरू किया। हिंदुओं ने अरबी, फ़ारसी और तुर्की शब्दों को स्थानीय मुहावरों में स्थान दिया। इस लेन-देन का लाभ हमारी सांझी संस्कृति के

ख़ज़ाने में उर्दू भाषा के रूप में हुआ''[1]

इसी कारण से उर्दू के अनेक शायरों ने अपनी शाइरी में भारत की सांझी संस्कृति को प्रस्तुत किया है। प्रसिद्ध नअ़त कवि मोहसिन काकोरवी (जिन्हें 'हस्सानुल हिंद' की उपाधि से याद किया जाता है) ने अपनी नज़्म (क़सीदे) में हिन्दू-मुस्लिम संस्कृति को बड़े दिलचस्प अंदाज़ में प्रस्तुत किया हैः-

सिम्ते काशी से चला जानिबे मथुरा बादल
बर्क़ के कांधे पे लाई है सबा गंगा जल
घर में अशनान करें सर्व-क़दाने गोकुल
जा के जमुना पे नहाना भी है एक़ तूल-ए-अमल
देखिए होगा श्री कृष्ण का क्योंकर दर्शन
सीना-ए-तंग में दिल गोपियों का है बेकल

इसी प्रकार अमीर मीनाई ने भारत के सामान्य सामाजिक मूल्यों का किस प्रकार ध्यान रखा, इसका अनुमान निम्नलिखित नज़्म से लगाया जा सकता हैः-

सांवली देख के सूरत किसी मतवाली की
हूं मुसलमां, मगर बोल उठूं जय काली की

इसी प्रकार उर्दू के एक अन्य प्रसिद्ध शाइर साग़र निज़ामी ने अपनी शाइरी में भारत के सामाजिक मूल्यों और हिन्दू-मुस्लिम एकता का जिस तरह ख़याल रखा है वह बेमिसाल हैः-

सांवलेपन पे ग़ज़ब धज है बसंती शाल की
जी में है कह बैठें, जय हो कन्हैया लाल की
सच बता ऐ मेरी जमुना क्या वही जमुना है तू
कृष्ण की बंसी का इक बहता हुआ नग़्मा है तू

(1) कामिल क़ुरैशी, उर्दू और मुशतरका हिन्दुस्तानी तहज़ीब, पृ. 16

अनुमान लगाया जा सकता है कि उर्दू शाइरी हो या उर्दू साहित्य और गद्य, इसमें हमें बिना किसी भेदभाव के भारतीय परम्पराओं और राष्ट्रीय एकता का प्रतिबिम्ब दिखाई देता है। इसी तरह आम रुझान यह है कि उर्दू और अरबी मुसलमानों की ही भाषाएं हैं, लेकिन अरबी भाषा और साहित्य के अध्ययन से पता चलता है कि इसमें कई ऐसे शब्द हैं जो भारतीय मूल के हैं या भारतीय संस्कृति से काफ़ी प्रभावित हैं। विशेषज्ञों ने लिखा हैः-

''अरबी भाषा में ऐसे कई शब्द हैं जो भारत के साथ संबंध दर्शाते हैं। जिस तरह अरबी भाषा ने सुरयानी, हिब्रू, अफ़्रीक़ी, ईरानी, क़िब्ती भाषाओं की शब्दावली को आत्मसात किया, उसने संस्कृत को भी स्वीकार कर लिया और सबसे ज़्यादा दिलचस्प बात यह है कि पवित्र क़ुरआन में संस्कृत शब्द मौजूद है।''[1]

इसी परम्परा को जारी रखते हुए डॉ. निकल्सन के संदर्भ से लिखा हैः-

''बल्ख़ और बुख़ारा तक बौद्ध भिक्षु और उनके मठ फैले हुए थे, और ये वे केंद्र हैं जहाँ बौद्ध धर्म और इस्लामी सूफ़ीवाद का मिलन हुआ। अल-जज़ीरा के अनुसार, वहाँ हिंदू नामक एक मोहल्ला था, जहाँ भारत से आने वाले लोग रहते थे।''[2]

يقال لها باب هندوان، ينزل فيها الغلمان والجوارى التى يخلب من الهند"

(1) कामिल क़ुरैशी, उर्दू और मुशतरका हिन्दुस्तानी तहज़ीब, पृ. 65
(2) उपरोक्त संदर्भ, पृ.65

इसी प्रकार क़ाज़ी अतहर मुबारकपुरी की प्रसिद्ध पुस्तक 'रिजालुस्सनद वलहिन्द' के अध्ययन से पता चलता है कि ऐसे कई व्यक्तित्व थे जो अरबी भाषा और साहित्य के साथ-साथ भारतीय संस्कृति और इसकी विरासत से भी काफ़ी परिचित थे।

वास्तुकला में हिंदू-मुस्लिम प्रभाव

यह भी एक तथ्य है कि भारत के आध्यात्मिक और सामाजिक मूल्यों के विकास और इसकी परिपक्वता में भारत की वास्तुकला एक प्रमुख भूमिका निभाती है। देश की प्राचीन वास्तुकला में ऐसी बहुत सी शैलियां और ढांचे हैं जिनमें भारतीय सभ्यता और संस्कृति के प्रभाव स्पष्ट रूप से पाए जाते हैं। डॉ. आबिद हुसैन ने अपनी बहुमूल्य कृति 'क़ौमी तहज़ीब का मसअ्ला' में जो प्रमाण और तथ्य प्रस्तुत किए हैं, वे इसके ज्वलंत उदाहरण हैं।

> ''वास्तव में वास्तुकला मुसलमानों के सौन्दर्य बोध को व्यक्त करने का एक विशेष साधन थी और उसमें हिंदू दिमाग़ और मुस्लिम दिमाग़ को एक-दूसरे को प्रभावित करने के अधिक अवसर थे। भारत के शासकों में उस युग में सबसे शक्तिशाली और धनी बादशाह थे और वही शानदार इमारतों का निर्माण कर सकते थे, लेकिन बनाने वाले हिंदू वास्तुकार और कारीगर थे, एक मुस्लिम बादशाह के दिमाग में एक इमारत का विचार आता तो उसमें भारतीय परिवेश अवश्य होता और फिर वह विचार वास्तविक रूप में हिंदू वास्तुकार के दिमाग़ी सांचे में ढल जाता। अतः हिन्दू-मुस्लिम का जो संयोजन धर्म में कुछ बुज़ुर्गों के सचेत प्रयास के बावजूद पूर्ण रूप से नहीं हो सका वह वास्तुकला में स्वयं हो गया। दिल्ली सल्तनत के शासन की पहली शताब्दी में अर्थात् तेरहवीं शताब्दी ईस्वी में, वास्तुकला की एक हिन्दू-मुस्लिम शैली का जन्म हुआ, जिसे चौदहवीं शताब्दी में थोड़े परिवर्तन के साथ जौनपुर, बंगाल और दक्षिण के संप्रभु राजाओं, बुंदेलखण्ड और राजपुताना के हिंदू राजाओं ने भी अपना लिया। सबसे पहले इस्लामी इमारतें अर्थात अजमेर की जामा जस्जिद और दिल्ली की मस्जिद क़ुव्वतुल इस्लाम के अवशेष इस बात का सबूत हैं कि आरंभ में वास्तुकला की इस्लामी कल्पनाओं को व्यहारिक संसाधनों से अनुकूल करने की ज़रूरत पड़ी।''

इसके बाद डॉ. आबिद हुसैन ने लिखा हैः-

> ''अजमेर की जामा मस्जिद का डिजाइन माउंट आबू के जैन मंदिर से लिया गया है। कुतुब मीनार की संरचना गुप्त काल के स्तंभों और मध्ययुगीन श्रंगार को दर्शाती है। कुतुब मीनार में सजावटी कार्य सीधे तौर पर उत्तर भारत, विशेष रूप से चीनी शैली से प्रभावित है। मनुष्यों और जानवरों की मूर्तियों को छोड़ दिया गया है, बाक़ी बिखरे हुए फूल, मालाएं और टोकरियाँ ठीक वही हैं। इनके साथ-साथ कूफ़ी लिपि के लेखन को भी बड़ी सुंदरता से सजाया गया है। इसी प्रकार इस युग में हिंदू राजाओं द्वारा बनवाए गए भवनों में हिंदू-मुस्लिम शैली का प्रभाव स्पष्ट देखा जा सकता है। पाली (राजस्थान) के रणकपुर का जैन मंदिर, जो 1439 में बना था, एक वर्गाकार ऊँची कुर्सी पर बना है, इसके गुम्बदों की सतह भी पूरी तरह से ख़ाली है और स्तंभों की संरचना मस्जिद के स्तंभों के समान है। यह रंग किसी

प्राचीन हिन्दू या जैन इमारत में नहीं पाया जाता। ग्वालियर के राजा मान सिंह तोमर (1486-1516) के क़िले और महल भी नई शैली से प्रभावित हुए और उन्होंने आगे चलकर हिंदू और मुग़ल इमारतों के लिए मॉडल का काम किया।''[1]

डॉ. सैयद महमूद ने भी यह लिखा हैः-

''मुसलमानों की वास्तुकला ने हिंदुओं की शैली, समानता, रुचि और मेलजोल के बाद भारत में एक आधुनिक वास्तुकला का निर्माण किया। महमूद ग़ज़नवी अपने आक्रमणों के दौरान भारतीय शैली की वास्तुकला से इतना प्रभावित हुआ कि वह कई वास्तुकारों को अपने साथ ग़ज़नी ले गया। यहाँ उन्होंने मस्जिदों और महलों के निर्माण में मदद की और धीरे-धीरे एक भारतीय-अरबी (निर्माण शैली) का उदय हुआ, जिसके अच्छे उदाहरण भारत की प्रसिद्ध इमारतों में मिलते हैं।''[2]

उन्होंने यह भी लिखा हैः-

''इस्लामिक गुजरात का सिंहासन अहमदाबाद राजपूताना के कारीगरों का अपनाया हुआ है और वहाँ की इमारतों में निर्माण की अरबी और चीनी शैलियों का मिश्रण स्पष्ट दिखाई देता है, भारत की इस्लामी इमारतें हिंदी, अरबी और ईरानी शैलियों से प्रभावित थीं। कहीं अरबी शैली का बोलबाला है, कहीं ईरानी तो कहीं भारतीय।''[3]

(1) डॉ. सैयद आबिद हुसैन, क़ौमी तहज़ीब का मसअला, अंजुमन तरक़्क़ी उर्दू, नई दिल्ली, 1955, पृ. 117 119

(2) मुत्तहिदा हिन्दुस्तानी क़ौमियत, पृ. 43

(3) उपरोक्त संदर्भ, पृ.44

डॉ. सैयद महमूद ने अपनी पुस्तक 'मुत्तहिदा हिन्दुस्तानी क़ौमियत' में हैवेल (Havell) की बहुचर्चित पुस्तक 'After The Great Mughals' के संदर्भ से लिखा हैः-

''अकबर के काल में हिन्दू-मुस्लिम शैली में ठीक से भेद नहीं किया जा सकता। फतेहपुर सीकरी की मस्जिद अकबर की दिलचस्पी का एक अच्छा उदाहरण है। यह मस्जिद से ज़्यादा 'वैष्णव मंदिर' मालूम होती है। सारांश यह है कि हिन्दू और जैन आर्ट का प्रभाव अकबर और उसके उत्तराधिकारी के समय के भवनों में हर जगह स्पष्ट है।''

शेख़ सलीम चिश्ती के मक़बरे की हिंदू निर्माण शैली के संदर्भ में लिखा हैः-

''ऐसे उत्साही मुस्लिम फ़क़ीर के मक़बरे में हिंदू प्रभाव को देखना आश्चर्यजनक है, इमारत की पूरी संरचना हिंदू भावना को दर्शाती है और कोई भी स्तंभों के हिंदू प्रभाव को नज़रअंदाज़ नहीं कर सकता है।''[1]

इन उद्धरणों को पढ़ने और इन इमारतों को देखने के बाद, यह तुरंत ध्यान में आता है कि भारत की राष्ट्रीय संस्कृति और सामुदायिक एकजुटता के प्रभाव हमारी प्राचीन इमारतों में स्पष्ट रूप से देखे जा सकते हैं। हिंदू-मुस्लिम सांझी संस्कृति के प्रभुत्व का ऐसा प्रभाव था कि हिंदू रीति-रिवाजों, परम्पराओं और उनकी निर्माण शैली मुसलमानों और हिंदुओं के धार्मिक स्थलों में जगह-जगह देखने को मिलती है। राष्ट्रीय संस्कृति के ये वे अवशेष और उदाहरण हैं जिसे भुला देना भारत की अखण्डता और एकता के लिए कदापि उचित नहीं है।

(1) मुत्तहिदा हिन्दुस्तानी क़ौमियत, पृ. 45

सूफ़ीगण और सांझी संस्कृति

यह सर्वथा सत्य है कि भारतीय सूफ़ियों ने सामान्य संस्कृति और संयुक्त राष्ट्रीयता के प्रचार में बहुमूल्य सेवाएं प्रदान की हैं, परन्तु सत्य तो यह है कि जितना उन्होंने अपनी तपस्या और परिश्रम से मुस्लिम समाज में लोकप्रियता प्राप्त की उतना ही हिन्दू भी उनका सम्मान करते थे, उनके शिष्य बनते थे और अपने दुख-दर्द में उनसे दुआएं कराते थे। इस सुन्दर परम्परा के विषय में डॉ. सैयद महमूद ने लिखा हैः-

> ''कई सूफ़ी अरब और अन्य देशों से भारत आए, कई संत यहां पैदा हुए, भाषा की संरचना और रीति-रिवाजों में उनका जो हिस्सा है, उसको भाषाविद् नज़रअंदाज़ नहीं कर सकते। इन संतों की भाषाएं या तो अरबी थीं या फ़ारसी, लेकिन शहरों और गाँवों में घूम-फिर कर उन्होंने एक आम सांझी स्वदेशी भाषा की नींव डाली, जिसका प्रभाव आप उनकी बातों और शिक्षाओं में पाएंगे। शाह शरफ़ुद्दीन अहमद यहया मनेरी की शिक्षाएं हिंदी में उपलब्ध हैं, मुस्लिम फ़क़ीरों का प्रभाव क्षेत्र केवल मुसलमानों तक ही सीमित नहीं था, बल्कि कई हिंदू भी उनके भक्त थे। इन फ़क़ीरों ने बहुत से हिंदू परिवारों की जान बचाई और उन्हें सर्वोच्च पदों तक पहुंचाया। यह प्रक्रिया भारत में अफ़ग़ान राजाओं से लेकर मुग़ल काल तक चलती रही।''(1)

सूफ़ियों ने भारत के मूल्यों का कितना आदर किया उसके कुछ उदाहरण नीचे की पंक्तियों में देखेंः-

(1) मुत्तहिदा हिन्दुस्तानी क़ौमियत, पृ. 37

> ''शेख़ बुरहानुद्दीन, एक बुज़ुर्ग मुस्लिम दरवेश ने राजपूताना में ऐसा प्रभाव स्थापित किया था कि राजपूतों के एक बड़े समूह द्वारा उनकी पूजा की जाने लगी थी। मौकल जी एक राजपूत शासक था, जिसने शेख़ से एक बेटे के लिए प्रार्थना की थी। ख़ुदा ने उसे बेटा दिया। राजा ने उसका नाम 'शेख़ जी' रखा। शेख़ बुरहानुद्दीन का मक़बरा वहां विशिष्ट और साधारण लोगों के लिए पवित्र स्थान है और शेख़ावाटी राजपूतों के भगवा झण्डे के ऊपर दरवेश का नीला झण्डा लहराता है। इस संत के प्रति आस्था के कारण शेख़ावाटी के राजपूत जंगली सुअर का शिकार भी नहीं करते।''(1)

एक और दिलचस्प घटना डॉ. सैयद महमूद ने अपनी किताब 'ख़ुलासतुत्तवारीख़' के संदर्भ से उद्धृत किया हैः-

> ''औरंगज़ेब के शासन काल के प्रसिद्ध इतिहासकार मुंशी सुजान राय बटालवी ने अपने ऐतिहासिक ग्रंथ में दीपालीवाल नामक एक गाँव का उल्लेख किया है, जो कलानूर के निकट स्थित है और जहां शाह शम्सुद्दीन दरियाई का प्रसिद्ध मज़ार है। हिंदू और मुसलमान उन्हें बहुत मानते थे, लेकिन दीपाली नाम का एक हिन्दू अपनी भक्ति और श्रद्धा में तमाम हिन्दू-मुसलमानों से आगे निकल गया। जब हज़रत शाह दरियाई का निधन हो गया तो हिन्दू-मुसलमानों की सहमति से उनका सबसे पहला मुजाविर (दरगाह का संरक्षक) दीपाली को ही बनाया गया जो धर्म से मुसलमान नहीं था। आगे उल्लेख है। मुस्लिम

(1) मुत्तहिदा हिन्दुस्तानी क़ौमियत, पृ. 38

संतों की दरगाहों पर संरक्षक, सज्जादानशीन और मुजाविर आमतौर पर मुसलमान होते हैं, लेकिन इस मज़ार पर अभी तक दीपाली के वंशज ही मुजाविर हैं। कुछ वर्ष हुए मुसलमानों ने हिन्दू मुजाविरों को अलग करने का बहुत प्रयास किया, यहां तक कि अपने धार्मिक दावे भी किये, किन्तु औरंगज़ेब सरकार के अधिकारियों ने उन्हें सफल नहीं होने दिया।''(1)

इस प्रकार शिवाजी के पिता का नाम 'शाहजी' एक मुस्लिम फ़क़ीर के नाम पर रखा गया।(2)

सभी जानते हैं कि 'दाराशिकोह' ने स्वयं 'उपनिषद' का अनुवाद किया, संस्कृत साहित्य, हिंदू विद्वानों (पंडितों) और योगियों के प्रति यदि एक ओर उसकी आस्था थी, तो दूसरी ओर उसने मुल्ला शाह बदख़्शी के लिए अपने प्राणों की आहूति दे दी। जहाँगीर स्वयं एक हिंदू साधु 'गोसाईं जदरूप' के मठ का दौरा करता था, और इस साधु ने सूफ़ीवाद की समस्याओं को वेदांत के दुष्टांत के साथ समन्वय करते हुए एक शानदार व्याख्यान दिया।''(3)

सूफ़ीवाद पर भारतीय संस्कृति का प्रभाव

इसके अलावा सूफ़ियों के लेखों में उल्लेख मिलता है कि सूफ़ीवाद भारतीय संस्कृति के प्रभाव को दर्शाता है तथा मुस्लिम सूफ़ियों और हिंदू योगियों के बीच नियमित रूप से आध्यात्मिक शास्त्रार्थ भी होते रहे हैं। डॉ. मुहम्मद उमर ने इस बात के कई साक्ष्य प्रस्तुत किए हैं, वह लिखते हैंः-

(1) मुत्तहिदा हिन्दुस्तानी क़ौमियत, पृ. 39
(2) उपरोक्त संदर्भ, पृ.39
(3) उपरोक्त संदर्भ, पृ.37

शेख़ निज़ामुद्दीन औलिया एक मौक़े पर एक जोगी से मिले, शेख़ साहब ने उस जोगी से प्रश्न कियाः-

''आप में से असली कर्ता कौन है? उसने जवाब दिया कि हमारी किताबों में लिखा है कि एक व्यक्ति की आत्मा में दो विद्वान हैं। एक ईश्वरीय है और दूसरा सांसारिक। ईश्वरीय का स्थान सिर से नाभि तक है और सांसारिक का स्थान नाभि से पैर तक है। ईश्वरीय विद्वान में, सभी ईमानदारी, ज्ञान, नैतिकता और अच्छाई होनी चाहिए, और सांसारिक विद्वान में पूर्ण सुरक्षा, पवित्रता और नैतिकता का उल्लेख है। इसलिए शेख़ ने कहा, मुझे इसकी बात बहुत अच्छी लगती है।''(1)

भारतीय सूफ़ियों की एक प्रमुख विशेषता यह रही है कि उन्होंने तरीक़त के तथ्यों की व्याख्या के लिए हिंदू धर्म, उनकी देवमालाओं तथा आध्यात्मिक प्रवचनों से नैतिक शिक्षा प्राप्त की है, क्योंकि भारतीय मुसलमान इस्लामी परम्पराओं की तुलना में भारतीय परम्पराओं से अधिक परिचित थे। इसलिए उनको आसानी से रूहानी रहस्य समझाए जा सकते थे।(2)

शेख शरफ़ुद्दीन मनेरी के बारे में आता है कि उन्होंने फ़िरदौसिया श्रृंखला शुरू की, उन्होंने आध्यात्मिक जीवन के विकास के लिए मगध में एक झरने के किनारे वह स्थान तलाश किया जिसे हिन्दू पवित्र मानते थे। अब वह स्थान मख़दूम कुण्ड कहलाता है।(3)

सूफ़ीवाद में भारतीय संस्कृति के प्रभाव का एक और उदाहरण देखेंः-

(1) हिन्दुस्तानी तहज़ीब का मुसलमानों पर असर, पृ. 350
(2) उपरोक्त संदर्भ, पृ. 351
(3) उपरोक्त संदर्भ, पृ. 352

अल-बैरूनी के अलावा, एक अन्य मुसलमान रुकनुद्दीन समरक़ंदी ने हिंदू सूफ़ीवाद की पुस्तक 'अमृत कुण्ड' का पहले अरबी और बाद में फ़ारसी में अनुवाद किया।[1]

इन प्रमाणों से यह अनुमान लगाया जा सकता है कि इस्लामी सूफ़ीवाद में भारतीय राष्ट्रीय एकता की सांझी संस्कृति और परम्पराओं के तत्व प्रचुर मात्रा में पाए जाते हैं। इन्हीं कारणों से भारत की राष्ट्रीय परम्पराओं और सामाजिक शिक्षाओं में एकरूपता और समानता पाई जाती है।

यह हिंदू-मुस्लिम सभ्यता के कुछ संकेत थे जो लम्बे समय तक दोनों जातियों के बीच संपर्क से उत्पन्न हुए थे। दुर्भाग्य से यह उज्ज्वल और जीवंत संकेत फीके पड़ रहे हैं। इसलिए उन्हें तुरंत बचाने की आवश्यकता है। अगर यही स्थिति रही तो संभव है कि हमारे पुरखों की मेहनत और प्रयास नष्ट हो जाएं और भारत की सुन्दरता धूमिल हो जाए।

❑❑

(1) हिन्दुस्तानी तहज़ीब का मुसलमानों पर असर, पृ. 351

तीसरा अध्याय

धर्मनिरपेक्षता, देशभक्ति (राष्ट्रवाद), मुसलमान और भारत

यह बात भी अपनी जगह सच है कि जब किसी समाज में विविधता, बहुलवाद और बहुलता की मानसिकता होती है और उस समाज के लोग शांति से रहते हैं, तो यह ख़ुशनुमा रवैया ऐसे समाज के अस्तित्व और सुरक्षा के लिए एक अच्छा क़दम है, तथा यह समाज के लिए फ़ायदेमंद भी है तथा मानव जाति के लिए भी सुखद है, इसलिए इस समय हमारे सामने मुख्य और महत्वपूर्ण पहलू यह है कि आज कुछ तत्व बड़ी तेज़ी के साथ प्रचार कर रहे हैं कि भारत की धर्मनिरपेक्षता और लोकतांत्रिक दृष्टिकोण में मुसलमानों की आस्था विश्वसनीय नहीं है। राजनीतिक और तथाकथित सामाजिक तत्वों की यह विचारधारा उनका मनपसंद खेल बन गई है, इन दावों की वैधता क्या है? भारत में ही नहीं, पूरी दुनिया इस बात से अच्छी तरह वाक़िफ़ है। इन बातों को ध्यान में रखते हुए देशभक्ति और राष्ट्रवाद जैसे मुद्दों पर निम्नलिखित आलेख संकलित किए जाएंगे। राष्ट्रीयता और देशभक्ति, जैसे मुद्दों पर क़लम उठाना और आपत्ति करने वालों को उनका जवाब देना नैतिक कर्तव्य के साथ-साथ धार्मिक कर्तव्य भी है, मुसलमान एक ऐसी क़ौम है जो हर परिस्थिति में अपनी मातृभूमि के प्रति वफ़ादार और निष्ठावान रही है, और है।

धर्मनिरपेक्षता का अर्थ

भाषाविदों ने इसके अर्थ और महत्व को कई तरह से समझाया

है। डॉ. युसूफ़ क़रज़ावी ने लिखा हैः-

> ''धर्मनिरपेक्षता एक ऐसा आन्दोलन है जिसका मुख्य लक्ष्य लोगों का ध्यान परलोक की बातों से हटाकर संसार को अपने ध्यान का केन्द्र बनाना था। क्योंकि मध्य युग में लोगों में संसार से दूरी की प्रबल प्रवृत्ति थी और वे ख़ुदा और मृत्यु के बाद के जीवन की चिंता में विलीन रहते थे। इस प्रवृत्ति के विपरीत, मानवीय जुनून और प्रवृत्ति का दोहन करने के लिए धर्मनिरपेक्षता अस्तित्व में आई और पुनर्जागरण में लोगों ने मानवीय और सांस्कृतिक गतिविधियों और सांसारिक वस्तुओं की खोज में अधिक रुचि दिखाना शुरू कर दिया। धर्मनिरपेक्षता की ओर यह बढ़ते क़दम आधुनिक इतिहास के समस्त कालखण्ड में धर्म (ईसाई धर्म) के विपरीत आन्दोलन के रूप में आगे बढ़े।''[1]

डॉ. क़रज़ावी 'न्यू थर्ड वर्ल्ड डिक्शनरी' के संदर्भ से धर्मनिरपेक्षता का अर्थ भी समझाते हैंः-

''जीवन या जीवन के विशेष मामले में कोई हस्तक्षेप नहीं होना चाहिए अथवा धार्मिक अधिकारों को जानबूझकर सरकार की व्यवस्था से दूर रखा जाना चाहिए। जिसका आशय उदाहरण के लिए, सरकार में शुद्ध धर्मरहित राजनीति और वास्तव में इसका आधार इस दृष्टिकोण पर है, यह नैतिकता की एक सामूहिक प्रणाली है, जिसमें समकालीन जीवन और सामूहिक एकता ऐसी प्रथाओं और नैतिक मूल्यों पर आधारित हो जिसमें धर्म का कोई हस्तक्षेप न हो।''[2]

---

(1) डॉ. यूसुफ़ क़रज़ावी, इस्लाम और सेक्युलज़्म, अनुवाद, साजिदुर्रहमान सिद्दीक़ी, आलमी इदारा फ़िक्रे इस्लामी, इस्लामाबाद, प्रथम संस्करण, 1997, पृ. 50

(2) उपरोक्त संदर्भ, पृ. 51

उपर्युक्त दोनों परिभाषाओं के आलोक में यह कहा जा सकता है कि धर्मनिरपेक्षता एक ऐसी व्यवस्था चाहती है जिसमें धर्म और आस्था को अलग-अलग करके सरकार और शासन की व्यवस्था स्थापित हो, अर्थात धर्म और धार्मिक मामलों में उसका कोई हस्तक्षेप न हो। इसके अतिरिक्त अल्लामा इक़बाल ने अपने एक लेक्चर (जो उन्होंने 1930 में इलाहाबाद में दिया था) में 'धर्मनिरपेक्ष' शब्द का प्रयोग धर्म-विरोधी यानी 'अधर्म राजनीति' के अर्थ में किया है। मौलाना वहीदुद्दीन ख़ान द्वारा प्रस्तुत धर्मनिरपेक्षता के सिद्धांत को यहाँ उल्लिखित करना उचित प्रतीत होता हैः-

> ''धर्मनिरपेक्षता के बारे में एक निष्पक्ष राय बनाने के लिए दो चीज़ों के बीच अंतर करना आवश्यक है। एक धर्मनिरपेक्ष दर्शन है और दूसरी धर्मनिरपेक्ष नीति। दोनों के बीच एक स्पष्ट अंतर है, जो इस अंतर को नहीं समझते, वे धर्मनिरपेक्षता के बारे में एक सही राय नहीं दे सकते। धर्मनिरपेक्ष दर्शन शुरू में उन लोगों के दिमाग़ की उपज था जो नास्तिक सोच से प्रभावित थे। लेकिन बाद में दर्शन से अलग होकर धर्मनिरपेक्षता लोकतांत्रिक व्यवस्था की व्यावहारिक नीति बन गई। एक व्यावहारिक नीति के रूप में, इसका अर्थ धार्मिक मामलों को लोगों की व्यक्तिगत स्वतंत्रता के रूप में घोषित करना और सामान्य भौतिक हितों को राज्य के डोमेन के रूप में मानना था। प्राचीन काल धार्मिक उत्पीड़न का समय था। वर्तमान समय में धार्मिक स्वतंत्रता को लोगों का एक अविच्छेद्य अधिकार घोषित किया गया है। धर्मनिरपेक्ष नीति वास्तव में लोगों की उसी धार्मिक स्वतंत्रता का एक हिस्सा है। पहले के समय

में यह तरीक़ा था कि एक धार्मिक समूह दूसरे धार्मिक समूह को स्वतंत्रता देने के लिए तैयार नहीं था। इसने उन्हें धार्मिक उत्पीड़न (Religious Persecution) का शिकार बनाता था। आधुनिक लोकतंत्र में इसके विपरीत एक धर्मनिरपेक्ष नीति अपनाई गई है, अर्थात सामान्य भौतिक मामलों को राज्य के दायरे में रखना और लोगों को धर्म एवं संस्कृति के मामलों में पूर्ण स्वतंत्रता देना। प्रत्येक समाज को शांति के वातावरण की आवश्यकता होती है। शांति के बिना किसी भी प्रकार का विकास नहीं हो सकता। व्यावहारिक नीति के रूप में धर्मनिरपेक्षता शांति की रणनीति है। अमेरिका और ब्रिटेन से धर्मनिरपेक्ष राज्य का सिद्धांत अपनाया गया। इसका अर्थ धार्मिक विरोध नहीं, बल्कि धार्मिक अहस्तक्षेप है। इसलिए इन देशों में हर धार्मिक समूह को पूरी आज़ादी है। इन देशों में जो प्रतिबंधित है वह केवल हिंसा है, किसी के धर्म का पालन नहीं। धर्मनिरपेक्षता के विषय में जिन लोगों की नकारात्मक सोच है, इसका कारण यह है कि वे दो चीज़ों के बीच अंतर नहीं करते। वे धर्मनिरपेक्ष दर्शन और धर्मनिरपेक्षता नीति, दोनों को एक ही रूप में देखते हैं। हालांकि इस मामले में एक सही राय बनाने के लिए दोनों को एक दूसरे से अलग-अलग देखना आवश्यक है। धर्मनिरपेक्ष के बारे में नकारात्मक मानसिकता रखने वाले लोग एक ग़लत धारणा से ग्रस्त हैं। वे धर्मनिरपेक्ष नीति को सामान्य भौतिक मुद्दों तक सीमित नहीं रखते, बल्कि वे इसे धार्मिक विरोध का पर्याय मानते हैं, वर्तमान समय में इसका अर्थ धर्म विरोधी

सरकार नहीं है, बल्कि इसका मतलब केवल यह है धार्मिक मामलों में सरकार का अहस्तक्षेप (Non-Interference) की नीति के लिए प्रतिबद्ध है। इस मामले में सारी ग़लतफ़हमी इसलिए पैदा हुई है क्योंकि इन लोगों ने अहस्तक्षेप को विरोध का प्रयाय समझ लिया। इस मामले का एक और पहलू है। वह सिद्धांत यह है कि धार्मिक स्वतंत्रता में एक ही समय में दो प्रकार की स्वतंत्रता शामिल है - धार्मिक कर्म और धार्मिक उपदेश। इसका मतलब है कि एक धार्मिक समूह व्यक्तिगत रूप से अपने धर्म का परिपालन करते हुए अन्य धार्मिक समूहों के बीच अपने धर्म का शांतिपूर्वक प्रचार करना जारी रख सकता है। यह स्वतंत्रता इस हद तक वास्तविक है कि इन देशों में बहुत से लोग अपना धर्म बदलते हैं और सरकार द्वारा उन पर कोई प्रतिबंध नहीं लगाया जाता। अमेरिकी इस्लाम धर्म को अपनाते हैं। इस दृष्टि से धर्मनिरपेक्ष नीति का अर्थ है कि कोई धार्मिक समूह समयबद्ध तरीक़े से अपने धर्म का परिपालन करते हुए यह प्रयास कर सकता है कि दूसरों के विचारों और आस्था को बदल सके।''[1]

उपरोक्त उद्धरण के संदर्भ में यह कहा जा सकता है कि धर्मनिरपेक्षता के भीतर गुंजाइश है और धर्मनिरपेक्ष व्यवस्था आज कई राज्यों में लोगों के धार्मिक, राजनीतिक, आर्थिक और भाषाई अधिकारों को सुरक्षा प्रदान करती है, जिसमें धर्म का प्रचार भी शामिल है। अतः समकालीन परिपेक्ष्य में इस विचारधारा को अपनाने की आवश्यकता है, जो सहिष्णुता और संयम तथा संतुलन में सहायक हो सके।

(1) मौलाना वहीदुद्दीन ख़ान, अल-रिसाला, मार्च 2017

जाने-माने विद्वान मुशीरुल हक़ धर्मनिरपेक्षता की सभी परिभाषाओं और व्याख्याओं की समीक्षा करने के बाद अपनी पुस्तक 'मुस्लिम और सेक्युलर हिन्दुस्तान' में लिखते हैं:-

''उर्दू भाषी आमतौर पर धर्मनिरपेक्षता को नास्तिकता का पर्याय मानते हैं और एक धर्मनिरपेक्ष राज्य को एक धर्म-विरोधी राज्य मानते हैं। लेकिन ये शब्द हमें यूरोप के राज्यों और ईसाई चर्च के बीच सदियों के आपसी संघर्ष की याद दिलाते हैं। इसलिए जैसे ही हम उन्हें सुनते हैं, हम सोचने लगते हैं कि धर्मनिरपेक्षता वास्तव में जीवन की एक धर्म-विरोधी अवधारणा है। धर्मनिरपेक्षता को अपनाने वाले राज्य में धर्म और ईश्वर का नाम नहीं होता, कठिनाई यह है कि चूंकि ये शब्द एक अजनबी भाषा और एक विदेशी समाज की उपज हैं, इसलिए इन्हें समझने के लिए विदेशी वातावरण की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि को उजागर करने वाले शब्दकोशों का सहारा लेते हैं, जो ऐसे अजनबी वातावरण के ऐतिहासिक परिदृष्य को उजागर करते हैं, तो वहां भी हमें नज़र आता है कि 'सेक्युलरिज़्म' जीवन की उस अवधारणा को कहा जाता है जिसमें ईश्वर या धार्मिक विश्वासों की उपेक्षा कर मानवीय संघर्ष का पूरा ज़ोर सांसारिक जीवन के कल्याण पर होता है।''[1]

उपरोक्त पंक्तियों से पता चलता है कि सेक्युलरिज़्म अथवा धर्मनिरपेक्षता के भीतर पाया जाने वाला नकारात्मक दृष्टिकोण इस तथ्य के कारण है कि यह एक विदेशी भाषा का शब्द है, लेकिन भारतीय संदर्भ में इसके कई सकारात्मक पहलू हैं।

(1) मुशीरुल हक़, मुसलमान और सेक्युलर हिन्दुस्तान, मकतबा जामिआ लिमीटेड, जामिआ नगर नई दिल्ली, 2013, पृ. 17

धर्मनिरपेक्षता का सकारात्मक पहलू और भारत

इसके अतिरिक्त कई विद्वानों ने लिखा है कि 'धर्मनिरपेक्षता' का एक सकारात्मक पहलू भी है। हाफ़िज़ मुहम्मद अब्दुल क़य्यूम अपने आलेख 'सेक्युलरिज़्म व माबाद सेक्युलरिज़्म' (धर्मनिरपेक्षता की बदलती अवधारणाओं का पैग़म्बर (सल्ल.) की शिक्षा के आलोकन में मूल्यांकन) में लिखते हैं:-

> ''धर्मनिरपेक्षता की परिभाषा यह है कि सभी धर्म स्वतंत्र होंगे और राज्य में सभी को समान अधिकार प्राप्त होंगे। भारत की वर्तमान परिस्थितियों के अनुसार इसके लिए श्रेष्ठ और व्यवहार्य व्यवस्था धर्मनिरपेक्ष व्यवस्था ही है। इसके अतिरिक्त इस्लाम और धर्मनिरपेक्ष व्यवस्था के बीच कोई बदलाव नहीं है।''[1]

यही लेखक आगे लिखता है:-

> ''धर्मनिरपेक्ष और धर्मनिरपेक्षता के अर्थ जो अंग्रेज़ी शब्दकोशों में समझाए गए हैं, उनकी सहायता से केवल यूरोपीय धर्मनिरपेक्षता के अर्थ को समझा जा सकता है और उसके प्रकाश में सच्ची और सकारात्मक धर्मनिरपेक्षता की वह दिशाएं उजागर नहीं होतीं जो दुनिया के कुछ अन्य क्षेत्रों में उभरी हैं। विशेष रूप से भारत में धर्मनिरपेक्षता की अवधारणा, जिसे भारत की स्वतंत्रता के बाद प्रचारित किया गया है, और जो धर्म को नकारने के बजाय सभी धर्मों का समान रूप से सम्मान करना सिखाती है, अंग्रेज़ी शब्दकोशों में वर्णित अर्थ से मेल नहीं खाती।''[2]

(2) हाफ़िज़ मुहम्मद अबदुल क़य्यूम, सेक्युलरिज़्म और माबाद सेक्युलरिज़्म, पृ. 301
(1) माहनामा, बुरहान दिल्ली, जून-लाई-अगस्त, 1962, पृ. 33, उपरोक्त संदर्भ, पृ. 302

सैयद हामिद अली भारतीय धर्मनिरपेक्षता के विषय पर लिखते हैं:-

> ''धर्मनिरपेक्ष राज्य वह है जहां धर्म को सार्वजनिक मामलों से बाहर रखा गया है और निजी मामलों तक सीमित रखा गया हो, और इस छोटे से क्षेत्र में कार्रवाई की स्वतंत्रता राज्य के क़ानूनी ढांचे द्वारा निर्धारित सीमाओं के भीतर रहती हो। राज्य की इस अवधारणा के साथ, इस धर्म को समेटा जा सकता है, जिसके संस्थापक ने शुरुआत में ही घोषित कर दिया कि जो बादशाह का है वह बादशाह को और जो ईश्वर का है वह ईश्वर को दो। और जैसा कि डॉ. लूथर ने कहा, धर्मनिरपेक्षता का पहला आधार यही है लेकिन इस्लाम जैसा धर्म जो पूरे जीवन को, निजी हो या सार्वजनिक, व्यक्तियों से सम्बंधित हो या समुदाय और राज्य से, ईश्वर की इच्छा को सौंपना चाहता है, जिसमें सच्चा क़ानून बनाने वाला केवल ईश्वर है, और जिसमें राज्य की वास्तविकता यह है कि वह ईश्वर के क़ानून का प्रवर्तक है। राज्य की इस अवधारणा के साथ कोई कैसे सामंजस्य स्थापित कर सकता है, दोनों एक दूसरे के विपरीत हैं, जहां इस्लामिक व्यवस्था प्रबल होगी, वहां धर्मनिरपेक्षता नहीं होगी, और जहां धर्मनिरपेक्षता होगी, वहां सामूहिक मामलों में और व्यक्तिगत जीवन के सीमित क्षेत्र में कोई इस्लाम नहीं होगा। व्यक्तिगत जीवन के सीमित दायरे में भी उसकी हैसियत पराजित और उत्पीड़ित की होगी।''[1]

सैयद हामिद अली धर्मनिरपेक्षता की व्याख्या करने के बाद

(1) डॉ. अख़तर बस्तवी, सेक्युलरज़्मि और उर्दू शायरी, उत्तर प्रदेश उर्दू अकादमी लखनऊ, 1996, पृ. 25

भारत में धर्मनिरपेक्षता के बारे में लिखते हैंः-

> ''कहा जाता है कि ऊपर धर्मनिरपेक्षता की व्याख्या में जो कहा गया है वह पश्चिमी धर्मनिरपेक्षता की व्याख्या है। भारत की धर्मनिरपेक्षता की अपनी अवधारणा है, जो पश्चिमी धर्मनिरपेक्षता से अलग है, और इसे धर्म और आस्था के विरुद्ध मानना सही नहीं है।''(1)

इसके अतिरिक्त प्रसिद्ध भारतीय विचारक एवं बुद्धिजीवी डॉ. सैयद आबिद हुसैन ने भारतीय धर्मनिरपेक्षता की जो व्याख्या की है, यहाँ बताना उचित प्रतीत होता हैः-

> ''हमारे देश के लोगों और विशेष रूप से मुसलमानों को धर्मनिरपेक्षता के बारे में एक बड़ी ग़लतफ़हमी है। वे इसे सोचने का एक तरीक़ा मानते हैं जो धर्म और उसके उच्च मूल्य को अस्वीकार करता है, लेकिन वास्तव में धर्मनिरपेक्षता आवश्यक रूप से धर्म के ख़िलाफ़ या उससे बेगाना नहीं है। ऐसे बहुत से लोग हैं जो अकादमिक और राजनीतिक धर्मनिरपेक्षता के कायल हैं। वे धर्म को जीवन का सर्वोच्च आदेश मानते हैं और उसके आगे नतमस्तक हो जाते हैं।''(2)

इस विषय की और व्याख्या करते हुए मुशीरुल हक़ ने अपनी पुस्तक 'मुसलमान और सेक्युलर हिन्दुस्तान' में एक अंग्रेज़ी लेख 'सेक्युलरिज़्म, रिलिजन एण्ड एजुकेशन' के संदर्भ से लिखा हैः-

() सैयद हामिद अली, मुक़दमा किताब, सेक्युलरिज़्म, जमहूरीयत और इस्लाम, लेखक, इनामुल्लाह ख़ां, इदारा शहादते हक़, दिल्ली, 1970, पृ. 10-11

(2) सैयद आबिद हुसैन, हिन्दुस्तानी मुसलमान आईना-ए-अय्याम में, मकतबा जामिआ लिमीटेड, नई दिल्ली, 2012, पृ. 266-267

> ''धर्मनिरपेक्षता उस मानसिक प्रवृत्ति को संदर्भित करती है, जिसका धार्मिक दर्शन या विश्वास द्वारा विरोध नहीं किया जाता हो, जब तक कि मनुष्य को यह आज़ादी रहती है कि वह अपने अनुभव और बुद्धि के आलोक में सांसारिक जीवन की देखभाल कर सके।''(1)

इसके बाद उन्होंने इसका विश्लेषण करते हुए लिखा हैः-

> ''ऐसा नहीं है कि भारत में हर कोई धर्मनिरपेक्षता को केवल एक सकारात्मक अर्थ में लेता है, बल्कि कुछ लोग हैं जो इस बात पर ज़ोर देते हैं कि धर्मनिरपेक्षता और धर्म को एक साथ नहीं जोड़ा जा सकता है, लेकिन तथ्य और आम रुझान यही है कि धर्मनिरपेक्षता एक व्यक्ति को इस बात से रोकती नहीं है कि वह न केवल अपने पसंदीदा धर्म का पालन करे, बल्कि यदि वह चाहता है तो उसके प्रचार-प्रसार में भी भाग लेता रहे। यह बात किस सीमा तक व्यवहारिक है, यहां इस पर बहस नहीं, हमें तो केवल यह ध्यान रखना चाहिए कि धर्मनिरपेक्षता के सकारात्मक अर्थ ने ही भारतियों को धार्मिक रहते हुए भी मानसिक रूप से धर्मनिरपेक्षता और धर्मनिरपेक्ष राज्य को स्वीकार करने पर राज़ी कर दिया है।''(2)

इन तथ्यों का अन्दाज़ा उस समय भलीभांति होता है जब हम देश के संविधान का अध्ययन करते हैं, जिसके अनुसार देश का प्रत्येक नागरिक अपने धर्म का पालन करने, किसी धर्म का चुनाव करने और

(2) मुशीरुल हक़, मुसलमान और सेक्युलर हिन्दुस्तान, मकतबा जामिआ लिमेटेड नई दिल्ली, 1973, पृ. 20

(2) उपरोक्त संदर्भ, पृ. 20

उसका प्रचार-प्रसार करने में पूरी तरह आज़ाद है। अतः मुशीरुल हक़ ने लिखा हैः-

> जब हम भारत को एक धर्मनिरपेक्ष राज्य कहते हैं और साथ ही साथ देश के संविधान पर भी एक नज़र डालते हैं जिसके अनुसार देश का हर नागरिक अपने धर्म का पालन करने और अपनी धार्मिक मान्यताओं का प्रचार-प्रसार करने में पूर्ण रूप से स्वतंत्र है, फिर सेक्युलरिज़्म या सेक्युलर राज्य की पश्चिमी अवधारणा विचित्र सी लगती है। तथ्य यह है कि भारत के प्रत्येक नागरिक को न केवल अपना धर्म चुनने और उसका पालन करने की स्वतंत्रता है, बल्कि देश के संविधान में भी ईश्वर को प्रमुख स्थान दिया गया है। जैसे उच्च सरकारी पदों अर्थात राष्ट्रपति, मंत्रियों आदि के पद पर आसीन होने के बाद ईश्वर के नाम पर शपथ लेनी पड़ती है। यह सत्य है कि संविधान ने इसकी भी अनुमति दे रखी है कि अगर कोई व्यक्ति ईश्वर के नाम पर शपथ न लेना चाहे तो अपनी ओर से यह आश्वासन दे दे कि वह संविधान के प्रति वफ़ादार है। ऐसा इसलिए करे क्योंकि अगर कोई व्यक्ति ईश्वर को नहीं मानता है तो उससे शपथ लेना अर्थहीन होगा। इसलिए ऐसे लोगों के लिए शपथ के बजाय आश्वासन का एक वैकल्पिक तरीक़ा सुझाया गया था, लेकिन साथ ही हमें यह भी ध्यान रखना चाहिए कि संविधान में प्रस्तावित शपथ लेने और आश्वासन देने के वैकल्पिक तरीक़ों में शपथ को प्राथमिकता दी गई है।''[1]

इसी प्रकार डॉ. राधाकृष्णन ने भारतीय धर्मनिरपेक्षता की विशेषताओं

(2) मुशीरुल हक़, मुसलमान और सेक्युलर हिन्दुस्तान, पृ. 17-18

और उसके उदारवादी रवैये के बारे में जो कहा है, वह वर्तमान समय के तनाव को दूर करने के लिए बहुत उपयोगी हैः-

> ''सेक्युलरिज़्म न तो नास्तिकता है, न अधर्म, सेक्युलरिज़्म तो आध्यात्मिक मूल्यों की वैश्विकता पर ज़ोर देता है जिसे लोग अलग-अलग से प्राप्त करते हैं।''

साथ ही धर्मनिरपेक्षता की पश्चिमी अवधारणा की आलोचना करते हुए मुशीरुल हक़ ने गजेंद्र के संदर्भ से लिखा हैः-

> ''यह स्पष्ट किया जाना चाहिए कि भारतीय धर्मनिरपेक्षता धर्म के प्रभाव और उसकी उपयोगिता को मानती है। हमारे संविधान में, धर्मनिरपेक्षता का अर्थ केवल इतना है कि देश में सभी धर्मों को राज्य की दृष्टि में समान दर्जा प्राप्त है।''[1]

डॉ. आबिद हुसैन ने अपनी पुस्तक 'हिन्दुस्तानी मुसलमान आईना-ए-अय्याम में' में स्वतंत्रता के बाद देश में स्थापित सामंजस्यपूर्ण और धर्मनिरपेक्ष प्रणाली की उपयोगिता और विशेषताओं के बारे में एक अच्छी चर्चा की है, जो अनुकरणीय हैः-

> ''भारत ने जिस धर्मनिरपेक्षता को अपनाया और अपने राष्ट्रीय संविधान में समाहित किया है, वह धर्म-विरोधी प्रकार की नहीं है जो क्रांति के दौरान फ्रांस में पनपी, बल्कि यह धर्मनिरपेक्षता वह है जो पश्चिमी यूरोप के अन्य देशों विशेष रूप से ब्रिटेन में विज्ञान और धर्म के सहयोग से अस्तित्व में आई, जिसमें सदियों से मानव बुद्धि के राजनीतिक और सांस्कृतिक विचार और ईसाई तथा अन्य धर्मों की नैतिक भावना निहित है। यह वही धर्मनिरपेक्षता

(1) मुशीरुल हक़, मुसलमान और सेक्युलर हिन्दुस्तान, पृ. 19

है जिसे गांधी जी, विनोबा भावे जैसे धर्मात्माओं ने और अबुल कलाम आज़ाद और राधाकृष्णन जैसे धार्मिक विचारकों ने मानवतावाद को सार्वभौम धर्म स्वीकार कर लिया है।

भारत के धर्मनिरपेक्ष संविधान ने मुसलमानों और सभी धर्मों के अनुयायियों को विश्वास, कर्म, शिक्षा और सिद्धांत की पूर्ण स्वतंत्रता दी है। यह संविधान कई इस्लामी मूल्यों को स्वीकार करता है, जिनमें मानव आत्मा और विवेक की स्वतंत्रता, जाति और वर्ग के भेदभाव के बिना सभी मनुष्यों का भाईचारे के रिश्ते में एकजुट होना, क़ानून और सामाजिक न्याय शामिल हैं। इसे मौलिक अधिकारों के रूप में मान्यता दी गई है और भारतीय राज्य के मूल उद्देश्य के रूप में घोषित किया गया है। इसके अतिरिक्त, चूंकि यह एक लोकतांत्रिक राज्य का संविधान है, इसलिए यह भारत के नागरिक के रूप में मुसलमानों को यह अधिकार और अवसर देता है कि राष्ट्रीय संविधान या राष्ट्रीय जीवन में जो कुछ भी वे इस्लामी मूल्यों के विपरीत देखते हैं, उसका विरोध करके उसे समाप्त करने का प्रयास करें और इस्लामी मूल्यों की मान्यता और अनुपालन के लिए समर्थन और वकालत करें, लेकिन यह प्रयास इस मामले में प्रभावी हो सकता है जब वे भारतीय राष्ट्र को एक धार्मिक भाषा में नहीं बल्कि एक धर्मनिरपेक्ष भाषा में संबोधित करें और उन सुधारों के पक्ष में तर्क दें जिन्हें वे अनुकरण और परम्परा से नहीं बल्कि अवलोकन, अनुभव और तर्क से आवश्यक मानते हैं। मुसलमानों का दृढ़ विश्वास है कि इस्लामी शिक्षाएं मानव प्रकृति के अनुरूप हैं और बुद्धि, अवलोकन, अनुभव और मानवों पर पूरी उतरती हैं। इसलिए उन्हें

> धर्मनिरपेक्ष भाषा में सुधारों की आवश्यकता को समझाने और धर्मनिरपेक्ष तर्कों से इसे सिद्ध करने में कोई कठिनाई नहीं होनी चाहिए।''[(1)]

उपरोक्त बिंदुओं के अध्ययन से पता चलता है कि भारत में धर्मनिरपेक्षता की एक व्यापक अवधारणा है जिसके अंतर्गत सभी वर्गों के अधिकार सुरक्षित हैं। इस प्रकार भारत की धर्मनिरपेक्ष व्यवस्था में भाईचारा, सहिष्णुता, आपसी विश्वास और मेलजोल का तत्व पाया जाता है, इसलिए भारत की धर्मनिरपेक्ष, सहिष्णु और उदारवादी परम्पराओं और दृष्टिकोणों की रक्षा करना सभी का बुनियादी दायित्व है। धर्मनिरपेक्षता के नियम और शैली से भारतीय समाज में अलगाव और दुराव जैसी स्थिति से मुक्ति प्राप्त होती है।

मुसलमान और भारतीय धर्मनिरपेक्षता

अब यह प्रश्न उठता है कि क्या मुसलमान भारत की इस धर्मनिरपेक्ष व्यवस्था को स्वीकार करते हैं या नहीं? इसी प्रकार भारत की धर्मनिरपेक्ष संरचना की स्थापना कैसे हुई, प्रसिद्ध विचारक मुशीरुल हक़ ने इस बारे में अपनी पुस्तक 'मुसलमान और सेक्युलर हिन्दुस्तान' में लिखा हैः-

> ''आज़ादी के बाद, भारतीयों ने सर्वसम्मति से फ़ैसला किया कि अब से उनकी राजनीति धर्म के अधीन नहीं होगी।''[(2)]

भारतीय संविधान में सभी वर्गों के अधिकारों का उल्लेख है। मुशीरुल हक़ साहिब ने भारतीय लोगों के बारे में लिखा हैः-

(1) हिन्दुस्तानी मुसलमान आईना-ए-अय्याम में, पृ. 271-272
(2) मुसलमान और सेक्युलर हिन्दुस्तान, पृ. 12

''जब एक धर्मनिरपेक्ष राज्य का सवाल आता है, तो लगभग हर मुसलमान एक धर्मनिरपेक्ष राज्य के पक्ष में हाथ उठाता है।''(1)

यदि हम वर्तमान स्थिति का विश्लेषण करें तो यह देखा जा सकता है कि आज मुस्लिम समुदाय भारत को धर्मनिरपेक्ष राष्ट्र के रूप में स्वीकार करता है। बेशक कुछ लोग हैं जो इस्लाम और धर्मनिरपेक्षता की तुलना करके धर्मनिरपेक्षता के विचार की आलोचना करते हैं। धर्मनिरपेक्षता का जो अर्थ और व्याख्या हमारे उलेमा एवं विचारकों ने की है और भारतीय परिदृष्य में धर्मनिरपेक्षता की जो अवधारणा है उसको मुसलमानों का पूर्ण समर्थन प्राप्त है। अतः मुशीरुल हक़ ने अपनी किताब में दर्ज किया है। जमाअ्त-ए-इस्लामी हिंद ने अपने एक प्रस्ताव में इसे स्पष्ट रूप से समझा दिया हैः-

''धर्मनिरपेक्षता यदि राज्य अपने नागरिकों के बीच उनकी धार्मिक मान्यताओं के आधार पर भेदभाव नहीं करता है, तो फिर उस पर आपत्ति नहीं की जा सकती है। जमाअ्त-ए-इस्लामी ने बार-बार समझाया है कि वह वर्तमान स्थिति में यही चाहती है कि भारत में धर्मनिरपेक्ष सरकार बनी रहनी चाहिए। लेकिन इस व्यावहारिक आवश्यकता से परे, अगर किसी के मन में धर्मनिरपेक्षता का कोई गहरा दार्शनिक अर्थ है, तो हम उससे असहमत हैं।''(2)

इस उद्धरण के आलोक में यह पूरे विश्वास के साथ कहा जा सकता है कि मुस्लिम धर्मनिरपेक्ष विचारधारा इसके ख़िलाफ़ नहीं है, बल्कि यह उस सोच और चिन्तन के ख़िलाफ़ है जो धर्मनिरपेक्षता के

(2) मुसलमान और सेक्युलर हिन्दुस्तान, पृ. 15
(2) उपरोक्त संदर्भ, पृ. 25

नाम पर इस्लामी पहचान या दीनी प्रतीकों को मिटा देना चाहती है। धर्मनिरपेक्षता में यदि मानवता, प्रेम और सदभाव की भावना है तो यही व्यवस्था न केवल स्वीकार्य है वरन् श्रेष्ठ भी है, विशेष रूप से भारत जैसे बहुधर्मी समाज में इसके महत्व को कदापि नकारा नहीं जा सकता। जो लोग भारतीय विद्वानों और मुसलमानों पर भारत की धर्मनिरपेक्ष व्यवस्था को स्वीकार न करने का आरोप लगाते हैं, उन्हें पहले मुसलमानों के विचारों को गंभीरता और निष्पक्षता से पढ़ना और समझना चाहिए। आज भारत का बहुसंख्यक नहीं, बल्कि पूरा मुस्लिम समुदाय न केवल भारत की धर्मनिरपेक्ष व्यवस्था को मानता है, बल्कि हमेशा उसकी रक्षा और अस्तित्व को स्थिर करने का प्रयास करता है, इसके उदाहरण हमारे समाज में दिन प्रतिदिन देखने और पढ़ने को मिलते हैं। भले ही विरोधियों द्वारा यह स्वीकार कर लिया जाए कि मुसलमान धर्मनिरपेक्षता के ख़िलाफ़ हैं, तो इसका निहितार्थ यह है कि मुसलमान उस धर्मनिरपेक्षता के ख़िलाफ़ हैं जो मानवता को उग्रवाद या धर्म की ओर ले जाती है। भारतीय संविधान में सभी अल्पसंख्यकों के धर्म, संस्कृति, सभ्यता और पहचान की गारंटी मौजूद है।

भारत का संविधान और मुस्लिम अल्पसंख्यक

भारत एक स्वतंत्र लोकतांत्रिक और धर्मनिरपेक्ष देश है, इसका एक औपचारिक संविधान है जिसमें भारत के लोगों और नागरिकों के सभी मौलिक अधिकारों का विस्तार से उल्लेख है। इसका परिचय विकिपीडिया में इस प्रकार कराया गया हैः-

''भारतीय गणराज्य का संविधान सर्वोच्च है। इस बड़ी क़ानूनी दस्तावेज़ में लोकतंत्र के मूल राजनीतिक बिंदुओं और ज़िम्मेदारियों के साथ-साथ भारतीय नागरिकों के मौलिक अधिकारों, मार्गदर्शक सिद्धांतों और ज़िम्मेदारियों

का विस्तार से वर्णन किया गया है। उपमहाद्वीप 1857 से 1947 तक ब्रिटिश शासन के अधीन था, भारतीय संविधान 26 जनवरी 1947 को लागू हुआ, जिसके बाद 26 नवंबर 1949 को संविधान सभा द्वारा इसकी पुष्टि की गई और 26 जनवरी 1950 को पूरी तरह से लागू हो गया। जो बात भारतीय संविधान की प्रस्तावना में कही गई है उसका बहुत महत्व है, हम भारत के लोग, भारत को एक स्वतंत्र समाजवादी, धर्मनिरपेक्ष गणतंत्र के रूप में स्थापित करने का पवित्र संकल्प लेते हैं और इसके सभी नागरिक सामाजिक और राजनीतिक न्याय का आनंद लेंगे, सभी नागरिकों को अभिव्यक्ति, विश्वास, आस्था और पूजा की स्वतंत्रता होगी। सभी को पद और अवसर की स्वतंत्रता मिलेगी और उनमें भाईचारा बढ़ेगा, प्रत्येक व्यक्ति की गरिमा की गारंटी होगी और देश की एकता और अखंडता को बरक़रार रखा जाएगा।''

उचित प्रतीत होता है कि भारत के संविधान के शब्दों को भी यहां प्रस्तुत किया जाए।

> "We The people of India having solemnly resolved to constitute India into a sovereign socialist, secular democratic repulic,and to secure to all its citizens. Justice, social, economic and political, liberty of thought, expression, belief, faith and worship, equality of status and of opportunity and to promote among them all. Fraternity assuring the dignity of the individual and the unity and The integrity of the nation."

विकीपीडिया में बाबा साहब भीमराव अम्बेडकर की जो राय दर्ज

की गई है, यहां प्रस्तुत करना उचित होगाः-

> ''यह वास्तव में जीवन का एक तरीक़ा था जो स्वतंत्रता, समानता और बंधुत्व को जीवन के सिद्धांतों के रूप में स्वीकार करता है और ये सिद्धांत कभी भी एक दूसरे से अलग नहीं होते हैं, अतः स्वतंत्रता समानता से अलग नहीं होती, जिस तरह से स्वतंत्रता और समानता बंधुत्व से अलग नहीं है। समानता के बिना स्वतंत्रता कुछ लोगों को श्रेष्ठता देती है। समानता आज़ादी से सम्बद्ध न हो तो वह व्यक्तिगत कार्यों को कुचल देती है, और बंधुत्व के बिना स्वतंत्रता और समानता चीज़ों के प्राकृतिक प्रवाह को बनाए नहीं रख सकते।''(1)

इसलिए देश में अब एक ऐसा संविधान है जिसमें सभी नागरिकों के अधिकारों का उल्लेख है। इस बीच यह भी देखना होगा कि भारतीय संविधान में अल्पसंख्यकों, विशेषकर मुस्लिम अल्पसंख्यकों के अधिकार क्या हैं, इस मुद्दे पर प्रकाश डालने से उचित मालूम होता है कि सर्वप्रथम भारतीय धार्मिक अल्पसंख्यकों का उल्लेख कर दिया जाए।

भारत में अल्पसंख्यक

केंद्र सरकार ने 2006 में अल्पसंख्यक मामलों का मंत्रालय बनाया, जो भारत के धार्मिक अल्पसंख्यकों के लिए कार्यक्रमों को बढ़ावा देने और लागू करने के लिए केंद्र सरकार का सर्वोच्च विभाग है। राष्ट्रीय अल्पसंख्यक आयोग अधिनियम 1992 के गज़ट में खण्ड (सी) के तहत मुस्लिम, सिख, ईसाई, बौद्ध, पारसी और जैन धार्मिक अल्पसंख्यक माने गए हैं। हालांकि 2011 की जनगणना के अनुसार, भारत की कुल जनसंख्या 120 करोड़ है। इनमें हिंदू 79.8%, मुस्लिम

(1) विकीपीडिया

14.2%, ईसाई 2.3%:, सिख 1.7%, बौद्ध 5.7%, जैन 0.4% हैं। अब सवाल यह उठता है कि भारतीय संविधान में अल्पसंख्यकों के अधिकार क्या-क्या हैं?

स्वतंत्रता का अधिकार

संविधान के अनुच्छेद 19 से 22 में कहा गया है कि भारत में रहने वाले लोग विभिन्न स्वतंत्रताओं के हक़दार हैं। इसमें अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता, जैसे संस्थान और संगठन बनाने का अधिकार है। इसका विवरण इस प्रकार हैः-

(क) राज्य के हर हिस्से में भाषण और अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता।
(ख) स्वतंत्र रूप से और बिना हथियारों के इकट्ठा होने का अधिकार।
(ग) संस्थान या संगठन बनाने का अधिकार।
(ड.) पूरे भारत में आवागमन की स्वतंत्रता का अधिकार।
(प) भारत के किसी भी हिस्से में बसने और निवास करने का अधिकार।
(फ) किसी पेशे को अपनाने या किसी भी व्यापार या व्यवसाय को करने का अधिकार।

समानता का अधिकार

भारत में रहने वाले सभी लोगों को क़ानूनी और संवैधानिक रूप से समान अधिकार प्राप्त होंगे, उनके बीच ऊंच-नीच या किसी प्रकार का भेदभाव करने की अनुमति नहीं होगी।

अधिकारों और विकल्पों में किसी के साथ किसी भी प्रकार का भेदभाव नहीं किया जाएगा। इसी को संविधान के अनुच्छेद 14-15 में बयान किया गया है।

राज्य में कोई भी व्यक्ति क़ानून की दृष्टि में समानता या राज्य

के भीतर क़ानूनों के समान संरक्षण से वंचित नहीं होगा और राज्य केवल धर्म, जाति, लिंग, जन्म स्थान के आधार पर किसी भी तरह का भेदभाव नहीं करेगा। सरकारी नौकरियों के संबंध में नागरिकों के अधिकारों का उल्लेख अनुच्छेद 16 में किया गया है।

सांस्कृतिक एवं शैक्षिक अधिकार

भारत चूंकि विभिन्न संस्कृतियों और विविध विचारों का केंद्र है, इसलिए संविधान के अनुच्छेद 29 में कहा गया हैः-

''भारत के राज्य क्षेत्र या उसके किसी भी भाग में रहने वाले नागरिकों के किसी भी वर्ग की अपनी अलग भाषा, लिपि या संस्कृति होने पर उसे संरक्षित करने का अधिकार होगा।''

इसी तरह संविधान के अनुच्छेद 30 में कहा गया है किः-

''सभी अल्पसंख्यकों को, चाहे किसी धर्म के हों, धर्म के नाम पर अपनी पसंद की शिक्षण संस्थानों की स्थापना और प्रबंधन करने का अधिकार होगा।''

विचार एवं आस्था की स्वतंत्रता का अधिकार

भारत में विभिन्न धर्मों के अनुयायी रहते हैं और मनुष्य की आवश्यकता और प्रकृति के लिए आवश्यक है कि वह किसी भी धर्म को अपनाए। प्रत्येक व्यक्ति, समुदाय और समूह जहां भी रहे उसके धार्मिक अधिकारों की रक्षा की जाए। धार्मिक अधिकारों की सुरक्षा से समाज में शांति, सद्भाव, आपसी एकता और जुड़ाव रहता है, बेशक हमारे भारत देश की यह भी विशेषता है कि यहां सभी धर्मों का सम्मान किया जाता है। महत्वपूर्ण बात यह है कि केवल सम्मान नहीं बल्कि सामाजिक परंपराओं और मूल्यों के संरक्षण के लिए और आपसी सदभाव हेतु अल्पसंख्यकों के धर्म की रक्षा की गारंटी भारत

के संविधान में मौजूद है, अतः अनुच्छेद 25 में कहा गया हैः-

> ''सभी व्यक्तियों को अंतरात्मा की स्वतंत्रता और अपने धर्म को स्वीकार करने और उसका पालन करने की स्वतंत्रता का समान अधिकार है।''

इसके अतिरिक्त भारत में रहने वाले सभी व्यक्तियों को अपनी संपत्ति से वंचित न होने, संपत्ति ख़रीदने-बेचने और अपनी संपत्ति की आय को खुद पर खर्च करने का अधिकार होगा। साथ ही भारत में रहने वाले सभी लोगों को वैधानिक क़ानूनी कार्यवाही का अधिकार भी दिया गया है।

अल्पसंख्यक संस्थान

भारत सरकार ने अल्पसंख्यकों के लिए कुछ संस्थाएं भी स्थापित की हैं। उनमें से राष्ट्रीय अल्पसंख्यक आयोग प्रमुख है। अल्पसंख्यकों के विकास के लिए इस संस्था के प्राधिकार को निम्नलिखित कार्य सौंपे गए हैंः-

1. अल्पसंख्यकों की प्रगति और विकास की समीक्षा करना।
2. संविधान में निर्धारित क़ानूनों और संसद एवं राज्यों की विधान परिषदों द्वारा अधिनियमित क़ानूनों के अनुसार अल्पसंख्यकों की सुरक्षा से संबंधित कार्य का पर्यवेक्षण करना।
3. अल्पसंख्यकों के हितों की रक्षा के लिए केंद्र सरकार और राज्य सरकारों द्वारा प्रभावी प्रवर्तन की सिफ़ारिश करना।
4. अल्पसंख्यकों से संबंधित विशेष शिकायतों की जांच करना और ऐसे मामलों को संबंधित अधिकारियों को प्रस्तुत करना।

5. अल्पसंख्यकों के विरुद्ध किसी भी प्रकार के भेदभाव से उत्पन्न होने वाली समस्याओं के कारणों का अध्ययन करना तथा उनके समाधान के उपाय सुझाना।
6. अल्पसंख्यकों के सामाजिक, आर्थिक एवं शैक्षिक विकास से संबंधित विषयों पर अध्ययन, अनुसंधान एवं अनुभव का प्रावधान।
7. अल्पसंख्यकों से सम्बंधित कोई उचित कार्य का प्रस्ताव करना, जिसे केन्द्र या राज्य सरकारों को करना हो।
8. अल्पसंख्यकों से संबंधित किसी भी मामले, विशेष रूप से उनके सामने आने वाली कठिनाइयों पर केंद्र सरकार के लिए ठीक समय पर विशेष रिपोर्ट तैयार करना।
9. केंद्र सरकार को प्रस्तुत किए जाने वाले किसी भी अन्य मामले के लिए रिपोर्ट की तैयारी।

भारत के संविधान में उपरोक्त पंक्तियों में उल्लिखित भारतीय अल्पसंख्यकों के अधिकारों के संबंध में कहा जा सकता है कि भारत एक ऐसा राज्य है जिसमें सभी नागरिकों के मूल और महत्वपूर्ण अधिकारों का उल्लेख किया गया है।

यही भारत की वह छवि है जो भारत को एक सहिष्णु और धर्मनिरपेक्ष देश बनाने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है। भारत में अल्पसंख्यकों, विशेषकर मुस्लिम अल्पसंख्यकों की स्थिति क्या है, यह एक अलग मुद्दा है। हाँ, यह कहा जा सकता है कि वर्तमान समय में अल्पसंख्यकों, विशेषकर मुसलमानों की शैक्षिक, धार्मिक, आर्थिक और राजनीतिक स्थिति बहुत अच्छी नहीं है। इसके कई कारण हैं। प्रमुख कारण यह है कि संविधान में उल्लिखित अधिकारों को पूरी ईमानदारी के साथ ज़मीन पर लागू नहीं किया गया। यदि संविधान में

वर्णित सभी अधिकारों को सही अर्थों में लागू किया जाता है, तो यह पूरे विश्वास के साथ कहा जा सकता है कि अल्पसंख्यकों की स्थिति इतनी दयनीय नहीं होती। हां, हम गर्व से कह सकते हैं कि भारत के संविधान में बिना भेदभाव के सभी को सारे अधिकार प्रदान किए गए हैं, जो भारत जैसे महान लोकतांत्रक देश को गरिमापूर्ण स्थान प्रदान करते हैं।

देशभक्ति (राष्ट्रवाद) और मुसलमान

सामान्य तौर पर यह सवाल उठता रहता है कि मुसलमान अपनी मातृभूमि यानी भारत से प्यार नहीं करते हैं या ऐसी अन्य बातें आजकल कही जाती हैं, मातृभूमि के लिए प्यार को देशभक्ति कहा जाता है, आधुनिक शब्दावली में इसे राष्ट्रवाद Nationalism कहा जाता है, इसके दायरे में राष्ट्रयता और मातृभूमि जैसी समस्याएं आती हैं। राष्ट्रवाद या देशभक्ति और देशप्रेम के वैचारिक या भावनात्मक पहलू भी होते हैं, लेकिन इन सभी तथ्यों पर प्रकाश डालने से पहले यह स्पष्ट हो जाना चाहिए कि मुसलमानों का भारत से स्वाभाविक और भावनात्मक लगाव नहीं है, बल्कि इतिहास और परम्पराएं इस बात की गवाह हैं कि मुसलमान अपने देश भारत के समस्त आध्यात्मिक, सांस्कृतिक और राष्ट्रीय मूल्यों के प्रचार और संरक्षण में अग्रणीय हैं। पिछले अध्यायों में, हमने मुसलमानों के प्रति भारत के लिए आपसी शांति और प्रेम की झलक दी है। अब राष्ट्रवाद और देशभक्ति के वैचारिक पहलुओं पर प्रकाश डालने के बाद यह बताने का प्रयास किया जाएगा कि मुसलमानों के धार्मिक ग्रंथों और उनके धार्मिक साहित्य में देश प्रेम के क्या संकेत मिलते हैं, यहां यह बताने की भी ज़रूरत है कि विगत कई वर्षों में देश भर में मुसलमानों की देशभक्ति पर अभद्र और असभ्य हमले किए गए हैं तथा कट्टरता और हठ के

कारण अत्याचार और उत्पीड़न जारी रखा गया है। मुस्लिम अल्पसंख्यक भारत का अभिन्न अंग है जबकि यहां अल्पसंख्यकों, विशेष रूप से मुस्लिम अल्पसंख्यकों को समान माना जाएगा, तभी देश का पूर्ण विकास संभव होगा। मुसलमानों की देशभक्ति या उनकी वफ़ादारी और ईमानदारी के बारे में अभद्र टिप्पणी करना एक ऐसा कृत्य है जो देश के ताने-बाने और स्थिरता को गंभीर रूप से नुक़सान पहुंचा रहा है। राष्ट्रवाद या देशभक्ति किसी व्यक्ति या समूह की जागीर नहीं है। यदि कोई व्यक्ति या जाति और समूह ऐसा विचार रखता है तो निश्चित रूप से कहा जा सकता है कि वह सदियों पुरानी गंगा-जमुना संस्कृति और इस देश की राष्ट्रीय एकता के लिए हानिकारक है।

उस समय शेखुल इस्लाम मौलाना हुसैन अहमद मदनी ने 'संयुक्त राष्ट्रवाद और इस्लाम' के बारे में एक पुस्तिका लिखी जिसे 'मुत्तहिदा क़ौमियत और इस्लाम' (संयुक्त राष्ट्रवाद और इस्लाम) कहा जाता है, इसमें उन्होंने देश के लिए प्रेम की सही भावना देने की कोशिश की तो इस पर एक हंगामा बरपा हो गया। यहाँ तक कि अल्लामा इक़बाल भी ग़लतफ़हमी के शिकार हो गए थे और उन्होंने नियमित पत्राचार द्वारा मौलाना हुसैन अहमद मदनी से चर्चा की। यह बहस 'मिल्लत और वतन' के नाम से मुहम्मद अकरम ख़ान, संपादक दैनिक 'शम्स' ने संकलित करके 1968 में प्रकाशित की है। इसी प्रकार सैयद सरवर शाह गीलानी ने 'मुत्तहिदा क़ौमियत और इस्लाम' के शीर्षक से प्रकाशित की। यह चर्चाएं पढ़ने योगय हैं।

राष्ट्र या राष्ट्रवाद

'क़ौमियत' शब्द अरबी भाषा का शब्द है जिसका अर्थ विशेषज्ञों ने अलग-अलग बताया है।

'अल-क़ौमिया' से आशय एक धार्मिक या राष्ट्रीय या भाषाई

संबंध को संदर्भित करता है जिसके तहत एक निश्चित प्रकार की एकता स्थापित की जाती है, इसमें भावुकता अधिक शामिल होती है।[1]

'फ़रहंग-ए-आसफ़िया' (मान्यता प्राप्त उर्दू शब्दकोश) ने लोगों के समूह, संप्रदाय, परिवार, समाज और जाति के इस अर्थ का वर्णन किया है।[2]

'क़ौमियत' (राष्ट्रवाद) की परिभाषा बताने से पहले यह बताना भी ज़रूरी है कि इसकी उत्पत्ति पश्चिम से हुई है, इसलिए पश्चिमी विचारक Gellner अपनी पुस्तक 'Nations and Nationalism' में लिखता है:-

> "A principle which holds that the political and the national unit should be congruent."[3]

इसी तरह एक और पश्चिमी विचारक ने राष्ट्रवाद के सिद्धांत को दो प्रकार से विभाजित किया है, जिसमें Culturlal Nationalism और Statist Nationalism शामिल हैं। इस संदर्भ में यह उल्लेख करना आवश्यक प्रतीत होता है कि राष्ट्रवाद के सिद्धांत की उत्पत्ति और विकास कैसे हुआ?

इस बारे में विशेषज्ञों ने कई राय पेश की हैं। जैसे 19वीं सदी का सूर्य पूरे हर्षोल्लास के साथ उदय हुआ और इसे 'The Age of Nationalism' का नाम दिया गया। इसी तरह एक सिद्धान्त यह पाया जाता है:-

> ''इस के शुरुआती बिंदु सलीबी युद्ध के बाद यूरोपीय

(1) मौलाना वहीदुज़्ज़मां क़ासमी कैरानवी, अलक़ामूस उल-वहीद, इदारा इस्लामियात, लाहौर, 2001, पृ. 1370-1371

(2) सैयद अहमद देहलवी, फ़रहंग-ए-आसफ़िया, मकतबा हसन सबील लिमीटेड, उर्द बाज़ार, लाहौर, पृ. 402-403

(3) Nation and Natioanalism, P. 713

> राष्ट्रवाद की विचारधारा में तलाश किए गए और राष्ट्रीय अस्तित्व एवं अखण्डता के लिए राष्ट्रवाद की छाया में शरण ली गई। वह चर्च की शासन व्यवस्था जो सदियों से यूरोप की मानसिक गुलामी का कारण बनी हुई थी, राष्ट्रवाद और राष्ट्रीयता के हाथों उनकी पकड़ कमज़ोर हो गई और ईसाई समाज की मान्यताओं के अनुसार दो वर्गों - 'प्रोटेस्टेंट' और 'कैथोलिक' में विभाजित हो गया।''[1]

इस प्रकार जब Nationalism का नाम दिया गया तो दो विश्व युद्ध इसी आधार पर लड़े गए। जर्मनी में हिटलर ने नस्लीय श्रेष्ठता के सिद्धांत के माध्यम से मानवता विरोधी उत्पीड़न को सही ठहराया तथा मानवता पर अत्याचार की अति कर दी। इससे एक परिवर्तन यह भी हुआ कि विस्तारवादी व्यवस्था पर करारी चोट लगी, और अधीन राष्ट्रों में राष्ट्रवाद की जागरूकता की लहर दौड़ गई। राष्ट्रवाद का विचार एक आंदोलन बन गया और अधिकांश अफ़्रीक़ी और एशियाई देशों के लिए राष्ट्रीय अस्तित्व का संदेश साबित हुआ।[2]

उपरोक्त तथ्यों के आलोक में यह कहा जा सकता है कि पश्चिम में पाया जाने वाला राष्ट्रीवाद का सिद्धांत किसी भी प्रकार से संतुलित एवं न्यायपूर्ण नहीं है, उसी प्रकार यह कहा जा सकता है कि इस सिद्धांत की उत्पत्ति एक विशिष्ट उद्देश्य से हुई है। मुस्लिम विचारकों में बहुत से लोग इसके विरोधी हैं, जैसे मौलाना मौदूदी, अल्लामा इक़बाल, जमालुद्दीन अफ़ग़ानी और सैयद क़ुतुब शहीद आदि लोगों के नाम दर्ज हैं। कुछ इस्लामी विचारक इस सिद्धांत के क़ायल हैं। उनके यहां इसका अर्थ सहअस्तित्व और एकता है। क़ुरआन और

(1) डॉ. ताहिरा नय्यर, उर्दू शाइरी में पाकिस्तानी क़ौमियत का इज़हार, 1971-1977 अंजुमन तरक़्क़ी उर्दू पाकिस्तान, गुलशने इक़बाल कराची, 1999, पृ. 19

(2) उपरोक्त संदर्भ, पृ. 20

हदीस में सहमति है और इसके संकेत पाए जाते हैं। जो लोग इसके क़ायल हैं उनमें मौलाना हुसैन अहमद मदनी, मौलाना अबुल कलाम आज़ाद, ज़िया गोग अलप, मुस्तफ़ा कमाल अतातुर्क और जमाल अब्दुल नासिर आदि के नाम शामिल हैं।

राष्ट्रवाद और इस्लामी विचारक

मौलाना अबुल कलाम आज़ाद ने अपनी पुस्तक 'इस्लाम और नेशनलिज़्म' में इस प्रकार लिखा हैः-

> ''राष्ट्रवाद क्या है? यह मानव के सामूहिक जीवन की भावना और विश्वास की एक विशेष स्थिति का नाम है, यह मनुष्यों के एक समूह को दूसरे समूह से प्रतिष्ठित करती है, और इसके माध्यम से लोगों का एक बड़ा समूह परस्पर एकजुट होकर एक साथ जीवन बिताता है।''(1)

वह आगे लिखते हैं कि मनुष्य की सामूहिक चेतना भी क्रमिक विकास की एक संपूर्ण विकासशील प्रक्रिया है।

> ''राष्ट्रवाद और देशभक्ति मनुष्य के सामूहिक संबंधों की एक विशेष अवस्था का नाम है।''(2)

मौलाना आज़ाद ने देशभक्ति और मातृभूमि की रक्षा को लेकर राष्ट्रवाद और देशभक्ति की जो अवधारणा प्रस्तुत की है वह बहुत व्यापक और लाभकारी है।

> ''इस्लाम की दावत 'मानवता' और मानव समुदाय की दावत थी, इसलिए यह कार्य उन सभी पक्षपात के

(1) मौलाना अबुल कलाम आज़ाद, इस्लाम और नेशनलिज़्म, अलबलाग़ बुक एजेंसी, 5 गोलमंडी, लाहौर, 1929, पृ. 1
(2) उपरोक्त संदर्भ, पृ. 20

> ख़िलाफ़ था जो नस्ल और मातृभूमि के भेदभाव से पैदा हुए थे। दो चीज़ें हैं, एक राष्ट्र की रक्षा और दूसरा राष्ट्र का पक्षपात। इस्लाम की भावना पक्षपात के ख़िलाफ़ है, यह संरक्षण के ख़िलाफ़ नहीं है।''(1)

जैसे देशभक्ति और राष्ट्रवाद की अवधारणा जो लोगों के गर्व और किसी भी प्रकार के पक्षपात को उत्तेजित करती है, इस्लाम इसकी अनुमति कदापि नहीं देता, अलबत्ता वह एकता और एकजुटता जिसमें सुरक्षा, इच्छाशक्ति और राष्ट्रीय सहानुभूति की भावना पाई जाए उसकी अनुमति इस्लाम में मौजूद है। मौलाना अबुल कलाम आज़ाद का भी यही पक्ष है। इसी प्रकार सर सैयद भी राष्ट्रीय एकता और देशभक्ति के सच्चे वाहक थे। उनका 'राष्ट्र' से आशय हिन्दू और मुसलमान दोनों हैं। वह लिखते हैंः-

> ''क़ौम (राष्ट्र) शब्द से मेरा तात्पर्य हिंदू और मुसलमान दोनों से है। यही वह अर्थ है जिसमें मैं नेशन शब्द की व्याख्या करता हूं। मेरे लिए, इससे कोई फ़र्क़ नहीं पड़ता कि उनका धार्मिक विश्वास क्या है। हम सभी के लाभ का स्रोत एक है।''(2)

> ''हिंदू या मुसलमान होना मनुष्य का आंतरिक विचार या आस्था है जिसका बाहरी मामलों और आपस के व्यवहार से कोई सम्बंध नहीं है।''(3)

सर सैयद के आपसी एकता और देशभक्ति के प्रयासों को ख़्वाजा अल्ताफ़ हुसैन हाली ने इन शब्दों में लिखा हैः-

(1) मौलाना अबुल कलाम आज़ाद, इस्लाम और नेशनलिज़्म, पृ. 32
(2) लाहौर की इंडियन एसोसीएशन के भाषण से लिया गया।
(3) भाषणों का संग्रह, पृ. 232-233

''तहज़ीबुल अख़लाक़' (सर सैयद की पत्रिका) ने जहां तक संभव हो सका, पक्षपात की जड़ काटी, अनुकरण के बंधनों को तोड़ा, धार्मिक लेखों में स्वतंत्रता की जान डाली। धार्मिक समर्थन की अनर्थक पद्धति को बदल दिया जो उस समय लाभाकरी नहीं थी, और उनकी जगह अन्य विधि को जारी किया जो समय के अनुकूल थी।''(1)

इसी तरह सर सैयद ने एक दूसरी जगह कहा:-

''वास्तव में भारत में हम दोनों देशवासी होने के कारण एक हैं, और हमारी सहमति, आपसी सहानुभूति और एक-दूसरे के प्रति प्रेम से देश और हम दोनों का विकास और समृद्धि संभव है और आपस का द्वेष, हठ, दुश्मनी और एक दूसरे की बदहवासी से हम दोनों बरबाद हो जाएंगे।''(2)

सर सैयद ने देशभक्ति और देशप्रेम को लेकर जो सकारात्मक और सौहार्दपूर्ण प्रस्ताव रखा था, उनकी बातों का सख़्ती से पालन करना आज भी आवश्यक है ताकि देश के निर्माण और विकास में चार चाँद लग सकें।

देशभक्ति और राष्ट्रवाद की इस अवधारणा के विषय में मौलाना मनाज़िर अहसन गीलानी ने भी लिखा है और उन्होंने सभी को एक राष्ट्र के रूप में घोषित किया है, वे लिखते हैं:-

''फिर क़ुरआन ने किस आधार पर इन समूहों और उम्मतों को इन अलग-अलग पैग़म्बरों की क़ौम घोषित किया है? इसके अलावा और क्या था कि जो पैग़म्बर को इंसानों के जिस समूह के सुधार और मार्गदर्शन के लिए भेजा गया,

(1) अलताफ़ हुसैन हाली, हयात-ए-जावेद, नई दिल्ली, 1979, पृ. 358

(2) यकजहती की तौसीअ में उलमा-ए-देवबंद का किरदार, लेखक, मौलाना अजरार अहमद क़ासमी, मासिक 'दारुल उलूम', अंक 4, जिल्द 101, सन् 2017

उन्हीं लोगों को उनकी 'क़ौम' माना जाता था। अब यदि इसी आधार पर भारत के मुसलमानों को, भारत के उन सभी नागरिकों को, जिन पर सुधार और मार्गदर्शन का दीनी कर्तव्य है, और जिनको अँधेरे से उजाले में लाने के लिए, मुसलमानों के एक समूह को, गंगा और यमुना के किनारे, कृष्णा और गोदावरी की घाटियों में बसाया गया था, उनके पूर्वज इसी उद्देश्य से इस देश में आए थे, यदि मुसलमान उन सभी समूहों को अपनी क़ौम घोषित करते हैं, तो क्या क़ुरआन की परिभाषा से इसकी पुष्टि नहीं होती है? बेशक इस आधार पर भारतीय मुसलमानों की क़ौम भारत की प्राचीन जनजातियाँ द्रविड़, कोल और भील भी हैं, आर्य और राजपूत भी हैं, कायस्थ और ब्राह्मण भी हैं कि उन लोगों के लिए, और उन्हीं के सुधार एवं मार्गदर्शन के लिए वे इस देश में आए और भारत में बस गए। निश्चित रूप से इसी परिभाषा के आधार पर चीनी मुसलमानों की क़ौम चीन के वे नागरिक हैं जिनकी ओर चीन के मुसलमान नियुक्त थे, और क़ुस्तुनतुनिया, इस्तांबुल, थेरिस, बल्क़ान, अल्बानिया, हर्ज़ेगोविना व बोस्निया के मुसलमानों की क़ौमें यूरोप के वे नागरिक हैं, जो उन देशों में उनके साथ आए हैं। क़ाज़ून और सराए बाग़ीचा के मुसलमानों की क़ौम रूस के वे नागरिक हैं जिनके बीच मुसलमानों का यह समूह बस गया है। मिस्री मुसलमानों की क़ौम उन क्षेत्रों की रहने वाली है जो आसपास के देशों में रहते हैं और जिनको इस्लाम की ओर बुलाना उनका क़ुरआनी कर्तव्य है।''(1)

(1) मुज़फ़्फ़र गीलानी, मज़ामीन-ए-मौलाना गीलानी, बिहार उर्दू अकादमी, पटना, 1984, पृ. 117-118

इस लंबी चर्चा के बाद निष्कर्ष के रूप में लिखते हैंः-

''अर्थात 'क़ौम' के शब्द को क़ुरआन ने जिस अर्थ में प्रयोग किया है, हम कभी ग़लती नहीं करेंगे, अगर इस क़ुरआनी परिभाषा को ध्यान में रख कर भारत के हिंदुओं, बौद्धों, जैनियों और अछूतों को अपनी क़ौम घोषित कर दें और इस प्रचार क्षेत्र के कारण, यदि भारतीय मुसलमान हिंदुओं के भाई और हिंदू उनके भाई समझे जाएं तो क़ुरआन से इस दावे के अतिरिक्त और किस दावे की पुष्टि हो सकती है।''(1)

उपरोक्त प्रमाणों और उद्धरणों के आधार पर यह कहा जा सकता है कि क़ुरआन में जहाँ भी 'क़ौम' (राष्ट्र) शब्द का प्रयोग किया गया है, उसमें बहुत गुंजाइश और सार्वभौमिकता है। इससे यह भी सिद्ध होता है कि मुसलमान एक संदेशवाहक हैं, इस कारण से उसे अपने व्यवहार को अन्य सभी क़ौमों से बहुत अधिक सुखद रखने की आवश्यकता है ताकि जो कर्तव्य सौंपा गया है उसका निर्वाह ठीक से हो सके, यह कहना भी उचित प्रतीत होता है कि भारत जैसे बहुलतावादी समाज में, यदि अन्य सभी जातियां हिन्दू और मुसलमानों के साथ एकता और एकजुट हो कर रहेंगे, तो उसके परिणाम राष्ट्रीय स्तर पर सुखद और संतोषजनक होंगे। 'रेशमी रूमाल आन्दोलन' के संस्थापक स्वतंत्रता सेनानी मौलाना महमूद हसन देवबंदी ने जमीयत उलमा-ए-हिन्द (1920 में आयोजित) की आम सभा में राष्ट्रीय एकता और देशभक्ति को लेकर हिन्दू-मुस्लिम एकता पर प्रकाश डालते हुए कहा थाः-

''इसमें कोई संदेह नहीं है कि अल्लाह तआला ने आपके हमवतन और भारत के सबसे बहुसंख्यक (हिंदुओं)

(1) मुज़फ़्फ़र गीलानी, मज़ामीन-ए-मौलाना गीलानी, पृ. 118

को किसी न किसी माध्यम से इस तरह के महान लक्ष्य को प्राप्त करने में आपका समर्थन करने के लिए बनाया है, और मैं उन दोनों के समझौते और सामंजस्य की बहुत सराहना करता हूं और स्थिति की गंभीरता को महसूस करते हुए, दोनों पक्षों के प्रमुखों द्वारा किए गए और किए जा रहे प्रयासों ने मेरे दिल को बहुत प्रभावित कियाहै, क्योंकि मैं जानता हूं कि अगर स्थिति इसके ख़िलाफ़ जाती है, तो यह भारत की स्वतंत्रता को असंभव बना देगी, और सरकारी लोहे का पंजा दिन प्रति दिन अपनी पकड़ मज़बूत करता जाएगा। यदि इस्लामी सत्ता का कोई धुंधलासा चिन्ह शेष रह गया है, तो वह हमारे कुकर्मों से मिट कर रहेगा। इसलिए यदि भारत की जनसंख्या के ये दो तत्व, बल्कि सिखों की बहादुर क़ौम भी, एक साथ शांति और सद्भाव से रहते हैं, तो यह समझ में नहीं आता कि चौथी क़ौम चाहे कितनी बड़ी और शक्तिशानली हो, उन क़ौमों के सामूहिक आदर्शों को केवल अपने उत्पीड़न और अत्याचार से पराजित कर सकेगी।''(1)

मौलाना हुसैन अहमद मदनी ने देशभक्ति, देशप्रेम और नेशनलिज़्म या राष्ट्रवाद के बारे में जो कुछ लिखा है, वह किसी की आंखों से छिपा नहीं है। इसका वर्णन हो चुका है कि उन्होंने 'मुत्तहिदा क़ौमियत और इस्लाम' नाम से एक किताब भी लिखी थी, कुछ अन्य विचारकों और विद्वानों ने इसका उत्तर भी तैयार किया था। मौलाना हुसैन अहमद मदनी ने लिखा हैः-

''वर्तमान समय में क़ौमें देश से बनती हैं, न कि नस्ल

(1) अबू सलमान शाहजहांपुरी, शेख़ुल हिंद मौलाना महमूद हसन, एक सियासी मुताला, ज़ैद बुक डिपो, नई दिल्ली, 2011, पृ. 215-216

और धर्म से। क़ौम ऐसे समुदाय के लिए बोला जाता है जिसमें एकजुटता का कोई कारण हो, चाहे वह धर्म हो या देश, नस्ल हो या व्यवसाय, वर्ण या कोई अन्य आध्यात्मिक एवं भौतिक विशेषता आदि। यह दावा कि इस्लाम की शिक्षा, राष्ट्रीयता का आधार भौगोलिक सीमाओं या जातीय एकता या रंग की समानता के बजाय मानवीय गरिमा और मानव भाईचारे पर रखता है, मुझे मालूम नहीं कि क़ुरआन की किस आयत या कल्पना से साबित है।''[1]

उपरोक्त प्रमाण देशभक्ति, राष्ट्रवाद और देशप्रेम की अवधारणा को कितना मज़बूत करते हैं, इस पर हज़रत मदनी ने संयुक्त राष्ट्रीयता की सोच को इस्लामी और ऐतिहासिक आधार पर प्रमाणित करके देश के दूरदराज़ क्षेत्रों में परिचित कराया। मौलाना मदनी की पुस्तिका राष्ट्रवाद और देशभक्ति पर एक महत्वपूर्ण दस्तावेज़ की हैसियत रखती है। फिर भी हमारी देशभक्ति पर संदेह किया जाए, तो यह केवल पक्षपात पर आधारित है। इसके अतिरिक्त मौलाना हुसैन अहमद मदनी ने एक और पुस्तक भारत की गरिमा और मातृभूमि के प्रेम में लिखी थी, उसका नाम उन्होंने 'हमारा हिन्दुस्तान और उसके फ़ज़ाइल' रखा था। इस पुस्तक में मौलाना मदनी ने भारत को मुसलमानों की मातृभूमि बताया है और इसके औपचारिक तर्क प्रस्तुत किए हैं। इस पुस्तक में एक लेख मौलाना मुहम्मद मियां का है। वह लिखते हैंः-

''भारत जिस तरह हिंदुओं की मातृभूमि है उसी तरह मुसलमानों की भी मातृभूमि है। उनके पूर्वजों को भारत आए हुए और रहते हुए सदियां बीत गईं। आज भी भारत

(1) मौलाना राज़ी, मुत्तहिदा क़ौमियत और इस्लाम, इशाअते सीरत मिस्री शाह लाहौर, पृ. 3

में जगह-जगह मुसलमानों के गौरव और गरिमा के निशान मौजूद हैं जो उनके ज्ञान, कार्यकुशलता, उदारता और देशभक्ति की गवाही देते हैं। वर्तमान पीढ़ी भारत की माटी से जन्मी है। भारत में उनके भव्य धार्मिक एवं सांस्कृतिक स्मारक हैं। इस वजह से उन्हें भारत से ऐसा प्यार है जैसा एक सच्चे देशभक्त को होना चाहिए।''[1]

इन सब बातों से पता चलता है कि मुसलमानों ने देश-प्रेम और देशभक्ति को अपनी मूल भावना बना लिया है, इसीलिए मौलाना हुसैन अहमद मदनी ने लिखा हैः-

''भारत में रहने वाले लोगों में, केवल मुसलमान उन पुरातन लोगों में से हैं जिनका धर्म और विश्वास यह है कि वे हज़रत आदम अलैहिस्सलाम के वंशज हैं और मानव विकास पवित्र क़ुरआन की शिक्षाओं के अनुसार हज़रत आदम अलैहिस्सलाम से हुआ है। अन्य भारतीय जातियां इस बात से सहमत नहीं हैं। इस्लामी किताबें कहती हैं कि हज़रत आदम अलैहिस्सलाम को भारत में उतारा गया, यहाँ बसाया गया, और वहाँ से उनके वंशज दुनिया भर में फैल गए, जैसा कि 'सुब्हतुल मरजान फ़ी आसार-ए-हिन्दुस्तान' में उल्लेख है। इस्लामी परम्पराओं और शिक्षाओं के अनुसार भारत प्राचीन काल से मुसलमानों का ही है और हर मुसलमान को इसे अपनी प्राचीन मातृभूमि के रूप में मानना चाहिए।''[1]

इसी प्रकार उन्होंने यह भी लिखा हैः-

(1) मौलाना हुसैन अहमद मदनी, व मौलाना मुहम्मद मियां, हमारा हिन्दुस्तान और उसके फज़ाइल, दफ्तर जमीअत, दिल्ली, 1970, पृ. 30

(2) उपरोक्त संदर्भ, पृ. 3-4

''मुसलमानों के अलावा जो क़ौमें भारत में बसती चली आई हैं, वे आमतौर पर अपने मृतकों का दाहसंस्कार करती हैं और उनकी राख को नदी में बहा देती हैं या पारसी अपने मृतकों को पक्षियों को खिला देते हैं, इसके विपरीत मुसलमान अपने मृतकों को ज़मीन में दफ़नाते हैं। इसलिए मुसलमानों का निवास अन्य क़ौमों की तरह शारीरिक रूप से इसी भूमि में रहा और मृत्यु के बाद भी उनका निवास यहीं रहा। उनकी क़ब्रें सुरक्षित रखी जाती हैं, मुसलमानों का मानना है कि प्रलय के दिन उनके मुर्दे भी इन्हीं क़ब्रों से उठेंगे और उनके शरीर के अंग जो क़ब्र में मिट्टी बन गए थे, उनको फिर से बनाया जाएगा, इसलिए इस भूमि में मुसलमानों का भौतिक निवास सदैव के लिए है अन्य क़ौमों के विपरीत, इसलिए मुस्लिम क़ब्रिस्तान, मज़ार, मक़बरे, ज़ियारतगाहें, दरगाह आदि मौजूद हैं और मुसलमान उनकी सुरक्षा और सम्मान को आवश्यक मानते हैं।''[2]

मौलाना ने आगे यह भी लिखा हैः-

''जिस तरह आर्य, यूनानी या अन्य लोग भारत में आकर बस गए और उन्होंने यहाँ खेती की, बाग़ लगाए, घर बनाए और निवास किया, उसी तरह मुसलमान भी यहाँ पहुंचे और इन कामों और तरीक़ों को अपनाया। उनकी पीढ़ियां यहां गुज़र गईं, इसलिए मुसलमान जीवन और उसके संसाधनों में किसी क़ौम से पीछे नहीं हैं, विशेषकर वे जातियां जो पहले से ही भारत की निवासी हैं। आज कोई यह दावा करे कि भारत मुसलमानों की मातृभूमि नहीं, केवल हमारी मातृभूमि है, भारत के कल्याण में अन्य

(1) मौलाना हुसैन अहमद मदनी, हमारा हिन्दुस्तान और उसके फज़ाइल, पृ. 5-6

जातियों के समान भारत के मुसलमानों का भी कल्याण है। इसलिए यह देश भारतीय मुसलमानों के लिए अत्यंत प्रिय है। मुसलमान इसके बाद किसी और जगह जा सकते हैं, न जाएंगे, मुसलमानों को यहीं रहना है और शांतिपूर्ण जीवन व्यतीत करना है।''[1]

इसी तरह मुसलमानों के धार्मिक और पवित्र दीनी साहित्य में देशभक्ति और अपनी मातृभूमि के प्रति प्रेम के बारे में अनेक कथन पाए जाते हैं।

क़ुरआन और हदीस के अनुसार देशभक्ति

अपनी धरती और मातृभूमि के लिए प्रेम एक स्वाभाविक भावना है, जो व्यक्ति जहां रहता है, उसे उस जगह से प्यार और लगाव हो जाता है, यहां तक कि जानवर भी अपनी जगह से प्यार करने लगता है। अब देखना यह है कि देशभक्ति और निष्ठा के विषय में इस्लामी शरीअत में क्या निर्देश आए हैं।

हज़रत मूसा अलैहिस्सलाम ने अपनी क़ौम बनी इस्राईल को आदेश दिया कि वह अपनी क़ब्ज़े वाली ज़मीन में प्रवेश करें और अपने वतन को ज़ालिमों से आज़ाद कराने का आदेश देते हुए कहाः-

يَا قَوْمِ ادْخُلُوا الْأَرْضَ الْمُقَدَّسَةَ الَّتِي كَتَبَ اللَّهُ لَكُمْ
وَلَا تَرْتَدُّوا عَلَىٰ أَدْبَارِكُمْ فَتَنْقَلِبُوا خَاسِرِينَ۔

''ऐ मेरे लोगों! पवित्र भूमि (सीरिया या बैतुल मुक़द्दस) में प्रवेश कर जाओ जो अल्लाह ने तुम्हारे लिए लिख दी है और अपनी पीठ (पीछ) पर न लौटना, अन्यथा तुम घाटा उठाने वाले बन कर पलटोगे।''[2]

(1) मौलाना हुसैन अहमद मदनी, हमारा हिन्दुस्तान और उसके फज़ाइल, पृ. 10
(2) सूरह अलमायदा, आयतः 21

पवित्र क़ुरआन की यह आयत भी देश के प्रति प्रेम और वफ़ादारी को स्पष्ट रूप से प्रमाणित करती है। पवित्र क़ुरआन में उल्लेख है कि पैगंबर इब्राहिम अलैहिस्सलाम ने मक्का को शांति का स्थान बनाने के लिए प्रार्थना की, वास्तव में यह उनकी मातृभूमि या पवित्र शहर के लिए प्यार का संकेत है। क़ुरआन में अल्लाह तआला फ़रमाता हैः-

وَإِذْ قَالَ إِبْرَاهِيمُ رَبِّ اجْعَلْ هَٰذَا الْبَلَدَ آمِنًا وَاجْنُبْنِي
وَبَنِيَّ أَن نَّعْبُدَ الْأَصْنَامَ۔

''और (याद कीजिए) जब इब्राहीम अलैहिस्सलाम ने अर्ज़ किया, ऐ मेरे रब! इस शहर (मक्का) को शांति का स्थान बना दे और मुझे और मेरे बच्चों को इस (बात) से बचा ले कि हम बुतों की पूजा करें।''[1]

वतन से मुहब्बत की वजह से अपने प्रिय बेटे को मक्का मुकर्रमा में छोड़ने का उद्देश्य भी अपने प्रिय नगर को आबाद करना था। उन्होंने अल्लाह की बारगाह में अर्ज़ कियाः-

رَّبَّنَا إِنِّي أَسْكَنتُ مِن ذُرِّيَّتِي بِوَادٍ غَيْرِ ذِي زَرْعٍ عِندَ بَيْتِكَ
الْمُحَرَّمِ رَبَّنَا لِيُقِيمُوا الصَّلَاةَ فَاجْعَلْ أَفْئِدَةً مِّنَ النَّاسِ
تَهْوِي إِلَيْهِمْ وَارْزُقْهُم مِّنَ الثَّمَرَاتِ لَعَلَّهُمْ يَشْكُرُونَ۔

''ऐ हमारे रब! बेशक मैंने अपनी औलाद (इस्माइल अलैहिस्सलाम) को आपके पवित्र घर के पास (मक्का की) निर्जल और बंजर घाटी में बसाया है, ऐ हमारे रब! ताकि वे नमाज़ क़ायम रखें, अतः तू लोगों के दिलों को ऐसा कर दे कि वह रुचि और प्रेम से उसकी ओर आकर्षित रहें और उन्हें (हर प्रकार के) फलों की आजीविका प्रदान कर ताकि वे आभारी रहें।''[2]

(1) सूरह इबराहीम, आयत 35 (2) सूरह इबराहीम, आयत 37

सूरह 'तौबा' की निम्नलिखित आयत में 'मसाकिन' का अर्थ मुफ़स्सिरीन (टीकाकारों) और विद्वानों ने घर और मातृभूमि दोनों लिया हैः-

قُلْ إِن كَانَ آبَاؤُكُمْ وَأَبْنَاؤُكُمْ وَإِخْوَانُكُمْ وَأَزْوَاجُكُمْ
وَعَشِيرَتُكُمْ وَأَمْوَالٌ اقْتَرَفْتُمُوهَا وَتِجَارَةٌ تَخْشَوْنَ كَسَادَهَا
وَمَسَاكِنُ تَرْضَوْنَهَا أَحَبَّ إِلَيْكُم مِّنَ اللَّهِ وَرَسُولِهِ وَجِهَادٍ فِي سَبِيلِهِ
فَتَرَبَّصُوا حَتَّىٰ يَأْتِيَ اللَّهُ بِأَمْرِهِ وَاللَّهُ لَا يَهْدِي الْقَوْمَ الْفَاسِقِينَ۔

''(ऐ पैगंबर!) आप फ़रमा दें कि अगर तुम्हारे बाप-दादा और तुम्हारे बेटे-बेटियां और तुम्हारे भाई-बहन और तुम्हारी पत्नियाँ और तुम्हारे (अन्य) रिश्तेदार और तुम्हारी सम्पत्ति जो तुमने (कड़ी मेहनत से) कमाई है और व्यापार और व्यवसाय, जिसके नुक़सान से तुम डरते हो और वो घर जिन्हें तुम पसन्द करते हो, वह तुम्हें अल्लाह और उसके रसूल (सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम) और उसकी राह में जिहाद से ज़्यादा प्यारे हैं, तो इंतिज़ार करो यहां तक कि अल्लाह अपना अज़ाब (प्रकोप) ले आए और अल्लाह अवज्ञाकारी लोगों को सद्मार्ग नहीं दिखाता।''[1]

अतः यह आयत भी देश-प्रेम का शरई औचित्य देती है, इसी प्रकार निम्नलिखित पवित्र आयत में अल्लाह तआला ने मुसलमानों को अन्य आशीर्वादों के साथ-साथ एक स्वतंत्र वतन प्राप्त करने के लिए शुक्र अदा करने की प्रेरणा प्रदान की हैः-

وَاذْكُرُوا إِذْ أَنتُمْ قَلِيلٌ مُّسْتَضْعَفُونَ فِي الْأَرْضِ تَخَافُونَ أَن
يَتَخَطَّفَكُمُ النَّاسُ فَآوَاكُمْ وَأَيَّدَكُم بِنَصْرِهِ وَرَزَقَكُم مِّنَ
الطَّيِّبَاتِ لَعَلَّكُمْ تَشْكُرُونَ۔

(1) सूरह तौबा, आयत 24

''और (वह समय याद करो) जब तुम (मक्का के जीवन में, संख्या में) थोड़े (यानी अल्पसंख्यक में) थे, देश में उत्पीड़ित थे (अर्थात् आर्थिक रूप से कमज़ोर और शोषित) तुम इस बात से (भी) डरते थे कि (शक्तिशाली) लोग तुम्हें उचक लेंगे (यानी सामाजिक रूप से भी आप स्वतंत्रता से वंचित थे और कोई सुरक्षा नहीं थी) इसलिए (मदीना में प्रवास के बाद) उसने (अल्लाह ने) तुम्हें एक (स्वतंत्र और सुरक्षित) निवास (वतन) प्रदान किया और (इस्लामी शासन एवं सत्ता के रूप में) तुम्हें अपनी सहायता से शक्ति प्रदान कर दी और (भाई बनाने, माल-ए-ग़नीमत और मुक्त अर्थव्यवस्था के माध्यम से) तुम्हें शुद्ध चीज़ों से आजीविका प्रदान की ताकि तुम (अल्लाह की भरपूर बंदगी द्वारा उसका) आभार प्रकट करो।''(1)

क़ुरआन की उपरोक्त आयतें वतन से मुहब्बत करने, वतन के लिए पलायन करने और वतन के लिए क़ुरबानी देने के शरई औचित्य को साबित करती हैं।

पवित्र क़ुरआन के अलावा पैग़म्बर सल्लल्लाहु अलैहि वसललम की हदीसों में देश प्रेम के पुख़्ता सबूत मिलते हैं। हदीस (पैग़म्बर का कथन), तफ़सीर (टीका), सीरत (पैग़म्बर की जीवनी) और इतिहास की लगभग हर किताब में इस घटना का उल्लेख है कि जब पवित्र पैग़म्बर सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम पर 'वही' (ईश्वरीय आदेश) का सिलसिला शुरू हुआ, तो सैयदा ख़दीजा रज़ियल्लाहु अनहा पैगंबर (सल्ल.) को अपने चचेरे भाई को वरक़ा बिन नौफ़िल के पास ले गईं। वरक़ा बिन नौफ़िल ने हज़रत मुहम्मद (सल्ल.) से 'वही' आने की बात विस्तार से सुनकर तीन बातें कहीं:-

(2) सूरह अनफ़ाल, आयत 26

- आपको नकारा जाएगा, यानी आपकी क़ौम आपको झुठलाएगी।
- आपको सताया जाएगा, और
- आपको अपने देश से निकाल दिया जाएगा।

इस तरह वरक़ा बिन नौफ़िल ने बताया कि नबूवत के ऐलान के बाद नबी सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम को अपनी क़ौम की ओर से किन-किन समस्याओं का सामना करना पड़ेगा। इस प्रसंग में वतन से प्रेम भलीभांति साबित होता है।

इमाम सुहैली ने 'अल-रौज़ुल अनफ़ु' में नियमित रूप से इसे शीर्षक बनाया है: ''अल्लाह के रसूल (सल्ल.) की अपने वतन से मुहब्बत'' इस शीर्षक के अंतर्गत इमाम सुहैली लिखते हैं कि जब वरक़ा बिन नौफ़िल ने पैगंबर सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम से कहा कि उनके लोग उन्हें नकारेंगे, तो हुज़ूर सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम चुप रहे। दूसरी बार जब उन्होंने बताया कि आपकी क़ौम आपको उत्पीड़ित करेगी तब भी आपने कुछ नहीं कहा। तीसरी बार जब उसने कहा कि आपको आपकी मातृभूमि से निष्कासित कर दिया जाएगा, तो पैगंबर सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम ने तुरन्त फ़रमाया:-

اَوَ مُخْرِجِيَّ؟

''क्या वे मुझे मेरे वतन से निकाल देंगे?''

यह बयान करने के बाद इमाम सुहैली लिखते हैं:-

فَفِي هٰذَا دَلِيْلٌ عَلٰى حُبِّ الْوَطَنِ وَشِدَّةِ مُفَارَقَتِهِ عَلَى النَّفْسِ۔

''इसमें आप सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम की अपनी मातृभूमि से गहरी मुहब्बत की दलील है और यह कि आप सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम के लिए अपनी मातृभूमि से अलग होना कितना कष्टदायी था।''(1)

(1) अबुल क़ासिम अबदुर्रहमान बिन अबदुल्लाह बिन अहमद अल-सुहैली, अल-रौज़ुल अनफ़ु फ़ी शरह अल-सीरह अल-नबवीयह लिइब्ने हिशाम, शोधकर्ता, उमर अबदूस्सलाम अस्सलामी, दारो इहयाउत्तुरास अल-अरबी, बैरूत लेबनान, 2002, जिल्द2, पृ. 273

और वतन भी वह बरकत वाली जगह कि जो अल्लाह तआला का हरम और उसके घर पड़ोस का है, जो आप सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम के आदरणीय पितामः हज़रत इस्माईल अलैहिस्सलाम का शहर है। आप सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम ने पहली दो बातों पर कोई प्रतिक्रिया नहीं दिखाई, लेकिन जब मातृभूमि से निष्कासन का उल्लेख किया गया, तो उन्होंने तुरंत कहा, क्या मेरे दुश्मन मुझे यहां से निकाल देंगे?' हुज़ूर सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम का सवाल भी बहुत अर्थपूर्ण है। आप सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम ने 'अलिफ़' प्रश्नवाचक के बाद 'वाव' का उल्लेख किया और फिर निष्कासन को निश्चित किया। इसका कारण यह है कि 'वाव' पिछली बात को नकारने के लिए आता है और अभिभाषक को जागरूक करता है कि यह आशय इनकार के अर्थ में है कि उसने दर्द और पीड़ा का अनुभव किया है, अर्थात वतन से निष्कासन की सूचना आप सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम के लिए सबसे कष्टदायी थी।

यही कारण है कि अल्लाह के रसूल सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम ने मक्का मुकर्रमा को संबोधित करते हुए कहाः-

مَا اَطْيَبَكِ مِنْ بَلَدٍ وَ اَحَبَّكِ إِلَيَّ، وَلَوْلَا اَنَّ قَوْمِي
اَخْرَجُوْنِي مِنْكِ مَا سَكَنْتُ غَيْرَكِ۔

''तू कितना पवित्र श्हार है और मुझे कितना प्रिय है।
यदि मेरे लोगों ने मुझे तुझे छोड़ने पर विवश न किया होता,
तो मैं तेरे सिवा कहीं और जाकर न बसता।''(1)

यहाँ जह़रत मुहम्मद सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम ने अपनी मातृभूमि मक्का के लिए अपने प्यार का स्पष्ट रूप से उल्लेख किया है।

इसी तरह यात्रा से लौटने पर अपनी मातृभूमि में प्रवेश करने के

(1) मिरक़ातुल मसाबीह शरह मिस्बाहुल मसाबीह, किताबहुल मनासिक, बाब हरम मक्का।

लिए अपनी सवारी को तेज़ करना भी मातृभूमि के प्रति प्रेम का एक बड़ा उदाहरण है। ऐसा लगता है कि आप (सल्ल.) अपनी मातृभूमि के प्यार के प्रति इतने समर्पित थे कि उन्होंने इसमें प्रवेश करने की जल्दबाज़ी की, जैसा कि हज़रत अनस रज़ियल्लाहु अन्हु ने बयान किया हैः-

اِنَّ النَّبِيَّ صلى الله عليه وآله وسلم كَانَ اِذَا قَدِمَ مِنْ سَفَرٍ، فَنَظَرَ اِلٰى
جُدُرَاتِ الْمَدِيْنَةِ، اَوْضَعَ رَاحِلَتَهِ، وَاِنْ كَانَ عَلٰى دَابَّةٍ، حَرَّكَهَا مِنْ حُبِّهَا۔

''जब अल्लाह के रसूल सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम
यात्रा से लौटते हुए मदीना मुनव्वरा की दीवारों को देखते
तो वह अपनी ऊंटनी की गति बढ़ा देते थे, और यदि अन्य
जानवर पर सवार होते, तो मदीना मुनव्वरा की मुहब्बत में
उसे एड़ी मारकर तेज़ भगाते थे।''(1)

इस पवित्र हदीस में स्पष्ट रूप से उल्लेख किया गया है कि अल्लाह के रसूल सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम अपनी मातृभूमि मदीना मुनव्वरा के प्यार में अपनी सवारी को गति देते थे। हाफ़िज़ इब्ने हजर अस्क़लानी ने इसका वर्णन करते हुए लिखा हैः-

وَفِي الْحَدِيثِ دَلَالَةٌ عَلٰى فَضْلِ الْمَدِينَةِ، وَعَلٰى
مَشْرُوعِيَةِ حُبِّ الْوَطَنِ وَالْحَنِيْنِ اِلَيْهِ۔

''यह पवित्र हदीस मदीना मुनव्वरा की उत्कृष्टता,
वतन के प्रति प्रेम की वैधता और औचित्य तथा उसके प्रति
अभिलाषी होने की ओर इशारा करती है।''(2)

एक अन्य रिवायत में हज़रत अनस बिन मालिक रज़ियल्लाहु अन्हु कहते हैं, ''मैं अल्लाह के रसूल सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम के

(1) अल-सहीहुल बुख़री, किताब फ़ज़ाइलुल मदीना, बाब अलमदीनतु तनफ़िल ख़ुबस।
(2) इब्ने हिजर अस्क़लानी, फतहुल बारी शरह सहीहुल बुख़ारी, बैरूत, 1379, जिल्द 3, पृ. 621

साथ ख़ैबर की ओर निकला ताकि आप (सल्ल.) की सेवा करता रहूं। जब हुज़ूर सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम ख़ैबर से वापस लौटे और आपको ओहद पर्वत नज़र आया ते आप (सल्ल.) ने फ़रमायाः-

هٰذَا جَبَلٌ يُحِبُّنَا وَنُحِبُّهُ۔

''यह पहाड़ हमसे प्यार करता है और हम भी इससे प्यार करते हैं।''

इसके बाद उन्होंने मदीना की तरफ़ अपने मुबारक हाथ से इशारा किया और फ़रमायाः-

اَللّٰهُمَّ! إِنِّی اُحَرِّمُ مَا بَیْنَ لَابَتَیْهَا کَتَحْرِیْمِ اِبْرَاهِیْمَ مَکَّةَ
اَللّٰهُمَّ بَارِكْ لَنَا فِیْ صَاعِنَا وَمُدِّنَا۔

''ऐ अल्लाह! मैं उसके दोनों पहाड़ों के बीच की जगह को हरम बनाता हूँ, जैसे इब्राहिम अलैहिस्सलाम ने मक्का को हरम बनाया था। ऐ अल्लाह! हमारे इरादों में बरकत अता फ़रमा।''[1]

यह और इस प्रकार की कई हदीसों में हुज़ूर सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम अपने वतन मदीना मुनव्वरा की ख़ैर-ओ-बरकत के लिए दुआ करते हैं, जो कि वतन के लिए उनके प्यार का एक स्पष्ट प्रमाण है।

हज़रत अबू हुरैरा रज़ियल्लाहु अन्हु से वर्णित है कि जब लोग पहला फल देखते तो हुज़ूर सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम की सेवा में लेकर हाज़िर होते। इसे स्वीकार करने के बाद आप सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम दुआ करते, ऐ अल्लाह! हमारे फलों में बरकत अता फ़रमा, हमारे वतन (मदीना) में बरकत अता फ़रमा, हमारे 'साअ़' (234 तोले का बाट) और हमारे 'मुद' (नापने का पैमाना) में बरकत अता फ़रमा। और ओगे फ़रमातेः-

(1) अस्सहीहुल बुख़ारी, किताबुल जिहाद वस्सियर, बाब फ़ज़लुल ख़िदमतु फ़िल ग़ज़्वा

اَللّٰهُمَّ اِنَّ اِبْرَاهِیْمَ عَبْدُكَ وَخَلِیْلُكَ وَنَبِیُّكَ، وَاِنِّیْ عَبْدُكَ وَنَبِیُّكَ وَاِنَّهٗ
دَعَاكَ لِمَکَّةَ وَاِنِّیْ اَدْعُوْكَ لِلْمَدِیْنَةِ بِمِثْلِ مَا دَعَاكَ لِمَکَّةَ وَمِثْلِهٖ مَعَهٗ۔

''ऐ अल्लाह! इब्राहीम अलैहिस्सलाम तेरे बन्दे, तेरे ख़लील (मित्र) और तेरे पैगंबर थे, और मैं भी तेरा बंदा और तेरा पैगंबर हूं। उन्होंने मक्का के लिए दुआ मांगी थी। मैं उनकी दुआओं के बराबर और एक गुना अधिक मदीना के लिए दुआ करता हूं (यानी मदीना में मक्का से दोगुनी बरकत नाज़िल फ़रमा)।''[1]

हज़रत अबू हुरैरा रज़ियल्लाहु अन्हु बयान करते हैं कि उसके बाद आप सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम एक छोटे बच्चे को बुलाते और उसे वह फल दे देते।

वतन से प्रेम करने का दूसरा तरीक़ा यह है कि पैग़म्बरे इस्लाम सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम ने फ़रमाया कि देश की मिट्टी सर्वशक्तिमान अल्लाह के आदेश से बीमारों को स्वस्थ करती है। हज़रत आयशा सिद्दीक़ा रज़ियल्लाहु अन्हा फ़रमाती हैः-

اِنَّ النَّبِیَّ صلی اللہ علیہ وآلہ وسلم کَانَ یَقُوْلُ لِلْمَرِیْضِ بِسْمِ اللهِ تُرْبَةُ
اَرْضِنَا، بِرِیْقَةِ بَعْضِنَا یُشْفٰی سَقِیْمُنَا بِاِذْنِ رَبِّنَا۔

''हुज़ूर सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम रोगी से कहते थे, अल्लाह के नाम से शुरू। हमारी भूमि (वतन) की मिट्टी हम में से कुछ के लार से हमारे बीमार को हमारे रब के आदेश से ठीक करती है।''[2]

सैयदा आयशा रज़ियल्लाहु अन्हा बयान करती हैं कि एक बार एक व्यक्ति मक्का से आया और अल्लाह के रसूल सल्लल्लाहु अलैहि

(1) शरह अल-जरक़ानी अला मुअत्ता इमाम मालिक, किताबुल जामे, बाब फ़ज़लुल मदीना।
(2) अस्सहीहुल बुख़ारी, किताबुल तिब, बाब रकीयतुन्नबी सल्लाहु अलैहि वसल्लम।

वसल्लम की पास उपस्थित हुआ। सैय्यदा आयशा रज़ि. ने उससे पूछा, मक्का में स्थितियां कैसी हैं? जवाब में वह व्यक्ति मक्का के गुणों का वर्णन करने लगा, तो आप (सल्ल.) की पवित्र आंखें आंसुओं से भीग गईं। आप सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम ने फ़रमायाः-

لَا تُشَوِّقْنَا يَا فُلَانُ۔

''ऐ अमुक! हमारी अभिलाषा को न बढ़ा।''[1]

अल्लामा ज़रक़ानी 'अल-मुअत्ता' की व्याख्या में लिखते हैंः-

وَالاَخْرَجَ ابْنُ اِسْحَاقَ عَنِ الزُّهْرِيِّ، عَنْ عَبْدِ اللهِ بْنِ عَمْرِو بْنِ الْعَاصِ،
قَالَ الاَصَابَتِ الْحُمَّى الصَّحَابَةَ حَتّٰى جَهِدُوا مَرَضًا۔

''इब्न इस्हाक़ ने अल-ज़हरी के संदर्भ से लिखा है कि उन्होंने हज़रत अब्दुल्ला बिन उमर बिन अल-आस के हवाले से रिवायत की कि अल्लाह उनसे प्रसन्न हो सकता है, कि बुख़ार ने पैगंबर के सहाबा यहां तक कि वे रोग के कारण बहुत कमज़ोर हो गए।

अल्लामा ज़रक़ानी इस प्रसंग का विवरण देते हुए लिखते हैंः-

قَالَ السُّهَيْلِيُّ وَفِي هٰذَا الْخَبَرِ وَمَا ذُكِرَ مِنْ حَنِينِهِمْ إِلٰى مَكَّةَ مَا جُبِلَتْ
عَلَيْهِ النُّفُوسُ مِنْ حُبِّ الْوَطَنِ وَالْحَنِينِ إِلَيْهِ۔

''इमाम सुहैली कहते हैं कि इस बयान में पैगंबर (सल्ल.) के सहाबा के मक्का मुकर्रमा से भावुक प्रेम और चाहत की सूचना है कि वतन की मुहब्बत और उसकी चाहत को मानव स्वभाव में जमा कर दिया गया है और (वतन से) इसी जुदाई के कारण सहाबा बीमार हुए।''[2]

---

(1) अली बिन बुरहानुद्दीन हलबी, अल-सीरतुल हलबियह, मकतबा नूर, 1400 हि. जि. 2, पृ. 283

(1) शरह अल-ज़रक़ानी, अला मुअत्ता इमाम मालिक, किताबुल जामे, बाब फ़ज़्ज़ल अल-मदीनतु मा जाआ फ़ी वबाइल मदीना।

पवित्र क़ुरआन के सबसे प्रसिद्ध और प्रामाणिक शब्दकोश यानी 'अल-मुफ़रदात' के लेखक इमाम राग़िब अस्फ़हानी ने अपनी पुस्तक 'अल-मुहाज़िरातुल उदबा' में देश-प्रेम के बारे में बहुत कुछ लिखा है। उनके आलेख का ख़ुलासा नीचे प्रस्तुत हैः-

لَوْلَا حُبُّ الْوَطَنِ لَخَرَبَتْ بِلَادُ السُّوْءِ۔ وَقِيْلَ بِحُبِّ الْاَوْطَانِ عِمَارَةُ الْبُلْدَانِ۔

''यदि देश-प्रेम न होता तो पिछड़े हुए देश नष्ट हो जाते (कि लोग उन्हें छोड़कर दूसरे अच्छे देशों में चले जाते और परिणाम स्वरूप वे देश उजड़ने की तस्वीर बन जाते)''

इसीलिए कहा गया है कि मातृभूमि के प्रेम से ही देश और राष्ट्र का निर्माण और विकास होता है।

इसके बाद इमाम राग़िब अस्फ़हानी ने हज़रत अब्दुल्लाह बिन अब्बास रज़ि. के कथन को नक़ल किया और लिखा है कि जब एक व्यक्ति ने उसकी कमी के बारे में शिकायत की, तो हज़रत अब्दुल्लाह बिन अब्बास रज़ि. ने उससे कहाः-

لَوْقَنَعَ النَّاسُ بِالْاَرْزَاقِهِمْ قُنُوْعَهُمْ بِالْاَوْطَانِهِمْ۔

''काश! लोग अपने भरण-पोषण से वैसे ही संतुष्ट होते जैसे वे अपनी मातृभूमि से संतुष्ट हैं।''

उसके बाद इमाम राग़िब अस्फ़हानी ने 'फ़ज़्लुल मुहब्बतिल वतन' (देश-प्रेग का गुण) शीर्षक से एक अलग अध्याय स्थापित करते हुए लिखा हैः-

حُبُّ الْوَطَنِ مِنْ طِيْبِ الْمَوْلِدِ

''वतन से प्रेम अच्छे स्वभाव और वृत्ति का प्रतीक है।''

इसका अर्थ है कि अच्छे स्वभाव वाले लोग ही अपने वतन से प्रेम करते हैं और उसकी सेवा करते हैं। ऐसे लोग अपने देश की

ख्याति और दुनिया की क़ौमों के उत्थान और विकास की ओर ले जाते हैं, न कि देश के लिए बदनामी ख़रीद कर उस पर दाग़ लगाते हैं। इसी प्रकार एक स्थान पर इसका उल्लेख भी मिलता है:-

مِمَّا يَدُلُّ عَلٰى كَرَمِ الرَّجُلِ وَطِيْبِ غَرِيْزَتِهٖ حَنِيْنُهٗ إِلٰى الْأَوْطَانِهٖ وَحُبُّهٗ
مُتَقَدِّمِي إِخْوَانِهٖ وَبُكَاؤُهٗ عَلٰى مَا مَضٰى مِنْ زَمَانِهٖ۔

''मनुष्य की प्रतिष्ठा और उसकी प्रवृत्ति की पवित्रता की पहचान उसकी मातृभूमि और उसके लंबे समय के रिश्तेदारों (यानी प्रियजनों और मित्रों तथा पड़ोसियों से) से प्रेम करना और अपने अतीत (के पापों और कुकर्मों) पर विलाप करना (और अल्लाह से उनकी क्षमा मांगना) है।[(1)]

इन्हीं कारणों से दार्शनिकों का कहना है:-

فِطْرَةُ الرَّجُلِ مَعْجُوْنَةٌ بِحُبِّ الْوَطَنِ۔

''मनुष्य के स्वभाव को देश प्रेम से गूंथा गया है (अर्थात् देश-प्रेम को मानव खमीर में डाल दिया गया है)।''[(1)]

इसी तरह हमारे बुज़ुर्गों ने देश-प्रेम और देशभक्ति पर नियमित किताबें लिखी हैं। इब्ने ख़बीर अल-अशबेली (मृत्यु 502 हिजरी) ने 'अल-फ़ेहरिस्त' (पृ. 343, हदीस संख्या 1006) में लिखा है कि तीसरी सदी हिजरी के प्रसिद्ध इमाम अबू उस्मान अम्र बिन बह्र अलजाहिज़ (159-255 हिजरी) ने देश-प्रेम पर एक संपूर्ण पुस्तिका लिखी है, जिसका नाम 'किताब हुब्बुल वतन, इब्ने ख़ैबर अलअशबेली' हैं। 'अल-फ़ेहरिस्त' में इस पुस्तिका की पूरी प्रमाण श्रृंखला को बयान किया गया है। 1982 में इस पुस्तिका को लेबनान के 'दारुल किताब

(1) राग़िब हसन बिन मुहम्मद बिन अलमुफ़स्सल अस्फ़हानी, अलमुहाज़िरातुलउदबा व मुहाविरातुश शोरा वलबुलग़ा, दारे अरक़म, बैरूत, 1999, जिल्द 2, पृ. 652

(2) उपरोक्त संदर्भ, पृ. 652

अल-अरबी' द्वारा 'अल-हुनैन इलल औतान' के शीर्षक से प्रकाशित किया जा चुका है।

पवित्र क़ुरआन की इन सभी आयतों और हदीसों की बुनियादी मांग यह है कि एक व्यक्ति को उस देश और भूमि से प्यार करना चाहिए जिसमें वह रहता है, वह अपनी मातृभूमि के प्रति वफ़ादारी सुनिश्चित करे और देश की महानता और सुरक्षा तथा विकास परियोजनाओं में भाग ले। जहां तक भारत के मुसलमानों का संबंध है, केवल यह कहना उचित होगा कि मुसलमानों की धार्मिक पुस्तकों, पवित्र क़ुरआन और पैगंबर (सल्ल.) की हदीसों में पाए जाने वाले देश-प्रेम के संकेतों और प्रतीकों पर विश्वास करना और जीवन का उद्देश्य समझना आवश्यक है। इसलिए भारतीय मुसलमान स्वाभाविक रूप से अपने देश से प्यार करते हैं और यह उनकी आस्था का एक हिस्सा भी है। इतने आंखें खोलने वाले तथ्यों के बाद भी अगर कोई मुसलमानों की देशभक्ति, उनकी वफ़ादारी और ईमानदारी पर कीचड़ उछाले तो यही कहा जा सकता है कि वह ऐसा पक्षपात और घृणा और संकीर्णता के कारण कर रहा है।

❑❑

चौथा अध्याय

आधुनिक एवं पुरातन विचारों के आलोक में भारत की शरई हैसियत

O

ऐतिहासिक पृष्ठभूमि

यह एक सच्चाई है कि सत्ताधारियों से लेकर अन्य पक्षपात और भेदभाव करने वाले संगठनों और दलों ने आज़ादी के बाद से भारतीय मुसलमानों और उनके इतिहास और सभ्यता को विकृत करने में कोई कसर नहीं छोड़ी है। जब भी मौक़ा मिला, अपनी ताक़त और सत्ता के नशे में न सिर्फ़ मुसलमानों की कुर्बानी और उनकी महत्वपूर्ण उपलब्धियों को भूल गए, बल्कि स्थिति यहां तक पहुंची कि अब वे उनके लिए लुटेरा और न जाने कैसे-कैसे अभद्र शब्दों के प्रयोग किए जा रहे हैं। जब कि भारत के प्राचीन समाज और उसके इतिहास और सभ्यता का न्याय के साथ अध्ययन करने पर हम पाते हैं कि भारत में मुसलमानों का आगमन एक वरदान साबित हुआ है। इतिहासकारों और लेखकों ने इसके अनेक प्रमाण अपनी पुस्तकों में दर्ज किए हैं। इस तथ्य और सच्चाई को जानने से पहले यह भी गंभीरता से जान लेना ज़रूरी है कि कुछ पक्षपाती इतिहासकारों और मुस्लिम विरोधी तत्वों ने इतिहास को इस तरह तोड़-मरोड़ कर पेश किया और इसका लगातार प्रचार-प्रसार किया गया। आज भी ऐसी ही मानसिकता और विचारों को जनसंचार माध्यमों तथा अन्य प्रकाशन संस्थाओं के माध्यम से प्रसारित किया जा रहा है। इसके पीछे कुछ तत्वों का मक़सद राजनीतिक वर्चस्व प्राप्त करना है। लेकिन प्रामाणिकता को कभी मिटाया या भुलाया नहीं जा सकता। इसके अतिरिक्त आज हिन्दुओं

और मुसलमानों में कितने लेखक और विद्वान हैं जो सच को सच और झूठ को झूठ कहने और लिखने में गर्व महसूस करते हैं। जो लोग किसी भी कारण से ग़लतफ़हमी से ग्रस्त हो गए हैं उन लोगों को ऐतिहासिक तथ्यों की कभी उपेक्षा नहीं करनी चाहिए। इतिहास के इन उज्ज्वल और निष्पक्ष पन्नों की सत्यता को प्रस्तुत करने से पहले यह बताना उचित प्रतीत होता है कि इस्लाम के आने से पहले भारत की राजनीतिक, सामाजिक और आर्थिक व्यवस्था के साथ-साथ मुसलमानों के आने के बाद भारत में क्या-क्या विकास हुआ? ताकि जो लोग भारत में मुसलमानों के आगमन को ग़लत समझते हैं, वे वास्तविकता से परिचित हो सकें।

भारत की धार्मिक स्थिति

प्रसिद्ध इस्लामिक विद्वान मौलाना अकबर शाह ख़ाँ नजीबाबादी ने अपनी लोकप्रिय पुस्तक 'आईना-ए-हक़ीक़त नुमा' में एक चीनी पर्यटक के शब्दों में भारत की स्थिति की विस्तृत समीक्षा की है। मौलाना लिखते हैंः-

> ''चीन के प्रसिद्ध विद्वान 'ह्वेनसांग' ने अपनी यात्रा का वर्णन करते हुए उल्लेख किया है कि वह अपनी यात्रा के दौरान कई स्थानों पर लुटेरों द्वारा पकड़ा गया था, और हमेशा उन (लुटेरों) को काफ़िर और अधर्मी बताता है, यद्यपि वे ब्राह्मण धर्म के मानने वाले और बुद्ध के विरोधी थे।''[1]

इसी प्रकार मुफ़्ती शौकत अली फ़हमी ने अपनी पुस्तक 'हिन्दुस्तान पर इस्लामी हुकूमत' में भारत की धार्मिक स्थिति का विस्तार से विवेचन किया है, जिसका मुख्य बिंदु यह है कि भारत में बौद्ध धर्म

(1) मौलाना अकबर शाह ख़ाँ नजीबाबादी, आईना-ए-हक़ीक़त नुमा, नफ़ीस अकादमी कराची, पाकिस्तान, दूसरा ऐडीशनए 1958, पृ. 85

का प्रसार सबसे अधिक सम्राट अशोक के शासनकाल में हुआ था, उसने बौद्ध धर्म केवल इसलिए स्वीकार किया कि इसमें 'अहिंसा' का दर्शन पाया जाता है। उसके शासनकाल के पश्चात उसका राज्य कई टुकड़ों में विभाजित हो गया, जिसका अपरिहार्य परिणाम यह हुआ कि बुद्ध की मूल शिक्षाएं विकृत हो गईं, और पूजा एवं नैतिकता का आधार खोखला होकर रह गया क्योंकि अशोक के शासनकाल को नौ सौ वर्ष और गौतम बुद्ध के युग को लगभग 21 सौ वर्ष हो चुके थे।[1] इस प्रकार पूरे समाज में मूर्तिपूजा का प्रचलन हो गया, समाज आधारहीन आस्था और अन्य अनावश्यक कार्यों में बुरी तरह उलझा हुआ था। अकबर शाह ने इस स्थिति को इस प्रकार लिखा हैः-

> ''यहाँ (सिंध में) मूर्तिपूजा आम तौर पर प्रचलित थी, अपराधियों की पहचान करने के लिए उन्हें जलती हुई आग में डालना आम बात थी, अगर आग में जल गया तो दोषी और अगर बच गया तो निर्दोष।''

वह आगे लिखते हैंः-

> ''आम तौर पर जादू टोने का रिवाज था। आलौकिक बातों और शकुन बताने वालों (ज्योतिषियों) का बहुत महत्व था। सगी बहनों के साथ विवाह करने में संकोच नहीं किया जाता था, पंडितों की सहमति से राजा दाहिर ने अपनी सगी बहन से शादी कर ली थी। अधिकांश लोगों का पेशा लूटमार था, परमात्मा की धारणा लुप्त हो गई और वे बड़ी छोटी पत्थर की मूर्तियों को परमेश्वर मानते थे।''[2]

(1) मुफ़्ती शौकत अली फ़हमी, हिन्दुस्तान पर इस्लामी हुकूमत, बुक प्वाइंट कराची, 2005, पृ. 21-22

(2) आईना-ए-हक़ीक़त नुमा, पृ. 471-472

भारत में मुसलमानों के प्रारंभिक चिन्ह

इस सत्य का वर्णन करने के बाद भारत-अरब संबंधों की पृष्ठभूमि को संक्षेप में बताना उचित प्रतीत होता है। इस विषय पर मुहम्मद इसहाक़ भट्टी ने अपनी पुस्तक 'बर्रे-सग़ीर में इस्लाम के अव्वलीन नुक़ूश' में बहुत विद्वतापूर्ण और शोधपरक चर्चा की है। उन्होंने भारत और अरब के प्रारंभिक इतिहास के बारे में लिखा हैः-

> ''हज़रत मुहम्मद सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम के पैग़म्बर बनने से पहले भी, भारत की विभिन्न जनजातियाँ जैसे ज़त (जाट), मेद, सियाबचा, अहामरा, इसावरा, ब्यासरा और तकड़ी (ठाकुर) आदि मौजूद थीं। इन जातियों के अस्तित्व और निवास का सबुत (प्रमाण) बहरैन, बसरा, मक्का और मदीना में मिलता है।[1]

इसहाक़ भट्टी के शोध के अनुसार पता चला है किः-

> ''ज़त' (जाट) उपमहाद्वीप से ईरान गए और वहां के विभिन्न शहरों और क़स्बों में बस गए और फिर ईरान से अरब पहुंचे और अरब के कई इलाकों में बस गए।''[2]

इसी तरह, इसहाक़ भट्टी ने इन जनजातियों द्वारा इस्लाम स्वीकार करने के बारे में दर्ज किया है कि उन्होंने 'शैख़ैन' (हज़रत अबू बकर और हज़रत उमर रज़ि.) की ख़िलाफ़त (शासन) के दौरान हज़रत अबू मूसा अशअरी रज़ियल्लाहु अन्हु के हाथों इस्लाम स्वीकार किया।[3] इन सबूतों के प्रकाश में यह कहा जा सकता है कि इन जनजातियों के अरबों के साथ बहुत सौहार्दपूर्ण संबंध थे और उनके

(1) मुहम्मद इसहाक़ भट्टी, बर्रे-सग़ीर में इस्लाम के अव्वलीन नुक़ूश, इदारा सकाफ़ते इस्लामिया लाहौर, 1990, पृ. 23-28

(2) उपरोक्त संदर्भ, पृ. 18

(2) उपरोक्त संदर्भ, पृ. 52

अनेक रिश्तेदार उस समय हिंद महासागर के तट पर रहते थे। अनुमान यह लगाया जा सकता है कि मुसलमानों के साथ उनके संबंध अच्छे होगे। इस प्रकार अरब और भारत के संबंधों का धीरे-धीरे विस्तार हुआ और अंतर्जातीय विवाह भी होने लगे। व्यापार के माध्यम से इन संबंधों की सीमा को विस्तार मिला जो व्यापार के द्वारा विकसित हुआ। इस बारे में इसहाक़ भट्टी ने लिखा हैः-

> ''यही कारण है कि भारत के नित नए खाद्य पदार्थ, नारियल, लौंग, चंदन, सूती मख़मली कपड़ा, सिंधी मुर्ग़ियां, तलवारें, चावल और गेहूं तथा अन्य वस्तुएं अरब के बाज़ारों में जाती थीं।''[(1)]

अरबों के साथ व्यापारिक संबंध और यहाँ की कुछ जनजातियों का मक्का, मदीना और बसरा में बसना ऐसा प्रमुख कारण है कि जिस से भारत के कई क्षेत्रों में इस्लाम के बारे में जानने-समझने की रुचि बढ़ रही होगी। इतिहासकारों ने लिखा है कि फ़ारूक़ी काल (15 हिरी/639 ईसवी) में ही मालाबार और सरनदीप (श्रीलंका) के क्षेत्रों में इस्लाम का प्रसार शुरू हो गया, और क्रमिक रूप से ख़िलाफ़त-ए-उमय्या से लेकर ख़िलाफ़त-ए-उस्मानिया (तुर्क काल) तक, बहुत से लोग पैगंबर (सल्ल.) और तौहीद (एकेश्वरवाद) से प्रकाशमान होने के बाद इस क्षेत्र में इस्लामी शिक्षाओं का प्रचार-प्रसार कर रहे थे और इस्लाम बिना किसी रोक-टोक के लोगों के दिलों में घर करता जा रहा था और उनके दिलो-दिमाग को मुग्ध कर रहा था। यही कारण है कि 'हिन्दुस्तान में इस्लामी हुकूमत' के लेखक मुफ़्ती शौकत अली फ़हमी ने मालाबार के बादशाह 'जमोरन' या 'सामरी' की घटना 'फ़रिश्ता के इतिहास के संदर्भ से बहुत विस्तार से लिखी है, लेकिन यह उपयोगी होगा यहां उसका सारांश दर्ज कर दिया जाए। 'जमोरन' या 'सामरी' ने हज़रत

(1) मुहम्मद इसहाक़ भट्टी, बर्रे-सग़ीर में इस्लाम के अव्वलीन नुक़ूश, पृ. 29

मुहम्मद सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम द्वारा चन्द्रमा के दो टुकड़े होने के चमत्कार को देखा और तारीख़ और दिन को समक्ष रखकर शोध शुरू किया। यह पाया गया कि अरब में एक पैग़म्बर का जन्म हुआ था, यही उन्हीं का चमत्कार है।[(1)]

इन ऐतिहासिक साक्ष्यों के आलोक में यह पूरे विश्वास के साथ कहा जा सकता है कि भारत के कई क्षेत्रों और जनजातियों में न केवल इस्लाम की चर्चा हो रही थी, बल्कि लोग इस्लाम को स्वीकार भी कर रहे थे। यह बताना यहां आवश्यक है कि भारत में जो इस्लाम आया था उसे यहां के लोगों ने सहर्ष स्वीकार कर लिया था। किसी के साथ कोई दुर्व्यवहार या ज़बरदस्ती नहीं की गई थी। इस्लाम के इतिहास में ऐसी एक भी घटना नहीं मिलेगी जिसमें किसी को ज़बरदस्ती इस्लाम स्वीकार करने के लिए विवश किया गया हो। इसके बावजूद कुछ अज्ञानी और संकीर्ण मानसिकता के लोग इस्लाम पर यह आरोप लगाते हैं कि तलवार के बल पर इस्लाम के प्रचार-प्रसार की प्रक्रिया को अंजाम दिया गया है। उनके लिए बस इतना ही कहा जा सकता है कि उन्हें इस्लाम की शिक्षाओं का निष्पक्ष अध्ययन करना होगा। यदि वे ऐसा करते हैं, तो निश्चित रूप से वे कहीं भी निराश नहीं होंगे।

भारत के निर्माण एवं विकास में मुसलमानों की भूमिका

भारत में मुसलमानों के आगमन और यहाँ की सत्ता ग्रहण करने के बाद रचनात्मक, सांस्कृतिक और सभ्यतागत उपलब्धियों की एक लंबी सूची है, जिसका वर्णन इन संक्षिप्त पंक्तियों में नहीं किया जा सकता। हां, यह सच है कि मुस्लिम शासकों ने भारत को हर मामले में गौरवान्वित किया और इसकी सांस्कृतिक विशेषताओं का पूरी तरह

(2) हिन्दुस्तान पर मुसलमानों की हुकूमत, पृ. 33

ध्यान रखा। अल्लामा शिब्ली नोमानी ने अपनी किताब 'इस्लामी हुकूमत और इस्लाम' में इस बारे में लिखा हैः-

> ''विदेशी क़ौम का किसी पराये देश पर अधिकार करना कोई अपराध नहीं है, अन्यथा विश्व के सबसे बड़े विजेता सबसे बड़े अपराधी होंगे, लेकिन यह देखना चाहिए कि जीतने वाली क़ौम का देश की सभ्यता पर कैसा प्रभाव पड़ा, चंगेज़ ख़ान विजय के मामले में विश्व का महान विजेता है, लेकिन उसकी कहानी का हर अक्षर ख़ून से रंगा हुआ है। मराठे एक समय में पूरे भारत पर छा गए लेकिन इस तरह कि वे एक तूफ़ान की तरह उठे, लूटा मारा, चौथ कर (आय का चौथाई) वसूल किया और निकल गए, इसके विपरीत, जब एक सभ्य क़ौम किसी देश पर विजय प्राप्त करती है, तो वहां की संस्कृति और सभ्यता अचानक बदल जाती है, यात्रा के साधन, रहन-सहन का ढंग, खाने-पीने का ढंग, पहनावे का ढंग, घरों की साज-सज्जा, घरों की साफ़-सफ़ाई, व्यापार का सामान, उद्योग धन्धों की स्थिति, हर चीज़ में एक नया रंग नज़र आता है, और भले ही विजित क़ौम हठपूर्वक एहसान स्वीकार न करे, लेकिन दरोदीवार से शुक्र गुज़ारी की आवाज़ें सुनाई देती हैं।''[1]

यह सत्य ऐतिहासिक दस्तावेज़ों में भी संरक्षित है कि भारत पर लंबे समय तक मुस्लिम शासन की नियमित शुरूआत सुल्तान ज़हीरुद्दीन बाबर से हुई, क्योंकि बाबर से पहले जो भी आया उसका शासन एक सीमित क्षेत्र तक रहा। यद्यपि महमूद ग़ज़नवी ने इसका काफ़ी विस्तार

(1) अल्लामा शिबली नोमानी, इस्लामी हुकूमत और हिन्दुस्तान में इसका तमद्दुनी असर, अलनाज़िर प्रैस, लखनऊ, 1927, पृ. 1-2

किया। दूसरे यह कि एक के बाद दूसरे के आने तक लम्बे समय का ख़ालीपन भी रहा। अतः जब बाबर ने देश की बागडोर संभाली तो उसके द्वारा स्थापित विकास एवं निर्माण परियोजनाओं पर एक दृष्टि डालना उचित प्रतीत होता है। अल्लामा शिब्ली नोमानी अपनी उपरोक्त पुस्तक में लिखते हैंः-

> ''यद्यपि यह स्पष्ट है कि पिछली इस्लामी सरकारों ने भी कुछ हद तक भारत की सभ्यता का विकास किया था, लेकिन बाबर ने तुर्किस्तान से आकर भारत को जिस हालत में देखा उसका चित्रण उसी के शब्दों में यह है : भारत में अच्छे घोड़े नहीं, अच्छा मांस नहीं, अंगूर नहीं, ख़रबूज़ा नहीं, बर्फ़ नहीं, ठण्डा पानी नहीं, स्नान गृह नहीं, मदरसा नहीं, शमा नहीं (एक ऐसा दीपक जो हर जगह और हर अवसर पर प्रयोग किया सके) कोई मशाल नहीं, कोई शमादान (दीवट) नहीं, बगीचों और इमारतों में बहता पानी नहीं, इमारतों में सफ़ाई नहीं, आम लोग नंगे पाँव लंगोटी लगाए घूमते हैं, महिलाएं एक लुंगी बांधती हैं, जिसका आधा हिस्सा कमर पर लपेटती हैं और आधा सिर पर डाल लेती हैं।''[1]

इस तथ्य को भूलना इतिहास या भारत के लिए न्याय संगत नहीं होगा कि यदि कोई यह कहे कि भारत को मुस्लिम शासकों ने विकसित नहीं किया। सच तो यह है कि मुस्लिम शासकों ने भारत के समस्त विकास में बहुत रुचि ली है। इसके बहुत से प्रमाण हैं। अतः 'हिन्दुस्तान के मुसलमान हुकमरानों के तमद्दुनी कारनामे' नामक पुस्तक में मुस्लिम शासकों के संदर्भ से जो उद्धरण दर्ज है उससे भारत की विकासात्मक और रचनात्मक योजनाबद्धता का प्रदर्शन होता हैः-

(1) अल्लामा शिबली नोमानी, इस्लामी हुकूमत और हिन्दुस्तान में इसका तमद्दुनी असर, अलनाज़िर प्रैस, लखनऊ, 1927, पृ. 2-3

''यद्यपि मुसलमान विजेता के रूप में भारत आए, लेकिन विदेशी शासकों की तरह, उन्होंने इसे केवल व्यापार के लिए एक बाज़ार और धन प्राप्ति का स्रोत नहीं माना, बल्कि इसे अपना वतन बना लिया और पूर्ण रूप से यहां बस गए और मृत्यु के बाद भी इसी की मिट्टी में समाहित हो गए। इसलिए कि उन्होंने सत्ता और राजनीति, विज्ञान और कला, उद्योग और शिल्प, कृषि तथा व्यापार, सभ्यता और समाज के हर पहलू को विकसित करके सही अर्थों में भारत को स्वर्ग बनाया।''[1]

अल्लामा शिब्ली नोमानी द्वारा लिखित निम्न उद्धरण को भी उसी संदर्भ में देखा जा सकता हैः-

''हिंदू हमेशा बहुत साधारण कपड़े पहनते थे और शायद वे गज़ीगाढ़े के अलावा कुछ और पहनना नहीं जानते थे, (जो पिछली पंक्तियों में स्पष्ट रूप से वर्णित है) अकबर ने दिल्ली, लाहौर, आगरा, शेखपुर अहमदाबाद में कपड़ा बुनने के बड़े-बड़े कारखाने खोले और (इतना ही नहीं) ईरान, अफ़ग़ानिस्तान और चीन के कारीगरों को बुलाकर सभी प्रकार के मूल्यवान कपड़े तैयार कराए।''[2]

भारत के प्रति मुस्लिम शासकों ने वफ़ादारी और इसके विकास के लिए हर संभव प्रयास किया है। इस सच्चाई को केवल मुस्लिम लेखकों ने ही नहीं बल्कि कई ग़ैर-मुस्लिम लेखकों ने भी स्वीकार किया है, जिनमें से एक बड़ा नाम पंडित जवाहर लाल नेहरू का है। मौलाना अली मियां नदवी ने अपनी पुस्तक 'हिन्दुस्तानी मुसलमान एक

(1) हिन्दुस्तान के मुसलमान हुकमरानों के तमद्दुनी कारनामे, पृ. 1
(2) इस्लामी हुकूमत और हिन्दुस्तान में इसका तमद्दुनी असर, पृ. 7

तारीख़ी जायज़ा और मौजूदा सूरतेहाल की अक्कासी' में पंडित नेहरू की प्रसिद्ध पुस्तक 'Discovery of India' (इस पुस्तक का उर्दू अनुवाद 'तलाश-ए-हिन्द' के नाम से हुआ है) से उद्धृत किया है। साथ ही यह उल्लेख करना उचित प्रतीत होता है कि सत्य और झूठ के बीच मुख्य अंतर यह है कि सत्य हमेशा जीवित रहता है और झूठ की आयु बहुत कम होती है। इसलिए मुस्लिम शासकों के बारे में फैली तमाम शंकाओं और संदेहों के बावजूद भी लोगों ने सच्चाई को पढ़ा और उसको आगे बढ़ाया। पंडित नेहरू का निम्नलिखित उद्धरण इसका प्रमाण हैः-

''भारत में इस्लाम और उन विभिन्न जातियों के आगमन ने जो अपने साथ नए विचार और जीवन के विभिन्न तरीक़ों को लेकर आए, यहां की आस्थाओं और सामूहिक स्थिति को प्रभावित किया, विदेशी विजेता चाहे जो भी बुराइयां लेकर आए, उसका एक फ़ायदा अवश्य होता है, यह लोगों के मानसिक क्षितिज को चौड़ा करता है और उन्हें मजबूर करता है कि अपने मानसिक दायरे से बाहर निकलें। वे यह समझने लगते हैं कि दुनिया उनकी सोच से कहीं ज़्यादा बड़ी और विविधतापूर्ण है

बिल्कुल इसी तरह, अफ़ग़ान विजय ने भारत को प्रभावित किया और मुग़लों के भारत आने पर और भी कई परिवर्तन हुए, क्योंकि अफ़ग़ानों की तुलना में मुग़ल अधिक सभ्य और विकासशील थे। उन्होंने भारत में विशेष रूप से उस नफ़ासत (स्वच्छता) को प्रचलित किया जो ईरान का हिस्सा थी।''[1]

(1) मौलाना अली मियां नदवी, हिन्दुस्तानी मुसलमान, मज्लिसे तहक़ीक़ात नशरियाते इस्लाम, लखनऊ, 1992, पृ. 30

इसी प्रकार भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस के अधिवेशन में स्वाधीनता संग्राम के एक अन्य नेता डॉ. सीता रमैया ने मुस्लिम शासकों के प्रयासों और उनकी आसमान छूती उपलब्धियों को इन शब्दों में स्वीकार किया हैः-

> ''मुसलमानों ने हमारी संस्कृति को समृद्ध किया है और हमारे प्रशासन को स्थिर और मज़बूत बनाया है तथा वे देश के दूरदराज़ के हिस्सों को एक-दूसरे के क़रीब लाने में सफल रहे हैं। इस देश के साहित्य और सामूहिक जीवन पर उनकी छाप बहुत गहरी दिखाई देती है।''[1]

ये मुस्लिम शासकों की शासन शैली के अंतर-साक्ष्य और शानदार रचनात्मक उपलब्धियां हैं। फिर भी यदि कोई व्यक्ति या कोई संगठन या आंदोलन यह कहता है कि मुस्लिम शासकों ने भारत की जनता और उसके निवासियों के साथ अन्याय किया, तो यही कहा जा सकता है कि ऐसे लोगों में न तो इतिहास का ज्ञान है और न ही उनमें सच बोलने की हिम्मत। भारत के मुस्लिम शासकों की विशेषता यह है कि उन्होंने भारत की प्रजा के साथ किसी प्रकार का अन्याय या पक्षपात नहीं किया। आज सबसे ज़्यादा दोष औरंगज़ेब आलमगीर पर मढ़ा जाता है, लेकिन जब हम उसके शासन और न्याय की घटनाओं का अध्ययन करते हैं, तो हमें पता चलता है कि औरंगज़ेब आलमगीर पर आरोप लगाने वाले सही नहीं हैं। इसके लिए नीचे दिया गया केवल एक उदाहरण ही पर्याप्त होगा।

महमूद अली ने अपनी पुस्तक 'अह्द-ए-वुस्ता में मुशतरका तमद्दुन और क़ौमी यकजहती' में बिशंभर नाथ पाण्डेय के एक कथन को उद्धृत किया है जो सहिष्णुता, न्याय और उनकी ईमानदारी का प्रमाण है। अब वह इतिहासकार स्वयं अपनी समझ का विस्तार करे

(1) मौलाना अली मियां नदवी, हिन्दुस्तानी मुसलमान, पृ. 30

जिसने बिहार के कॉलेज में दाख़िल एक पुस्तक में स्पष्ट रूप से यह प्रश्न उठाया दिया हैः-

> ''औरंगज़ेब ने मंदिर तुड़वाकर कौन सी मस्जिद बनवाई थी? और पांडेय जी यहीं नहीं रुकते, आगे कहते हैं, जैसे महाकाल मंदिर (उज्जैन), बालाजी मंदिर (चित्रकूट), कामाख्या मंदिर (गुवाहाटी) जैन मंदिर (गिरनार) गुरुद्वारा राम राय (देहरादून) आदि को जागीर प्रदान करते हुए यह दुआ करने का निर्देश दिया कि क़यामत तक उनके परिवार में हुकूमत बनी रहे।''[1]

आज भारतवर्ष में एक विशिष्ट विचारधारा का पोषण हो रहा है और जो बातें इस विचारधारा के विकास, विचार या सत्ता प्राप्ति में बाधक बन रही हैं, चाहे वे इतिहास से संबंधित हों या धर्म, जाति आदि से, राजनीतिक शक्ति द्वारा उन्हें दबाया जा रहा है, सच छिपाया जा रहा है, इन बातों और मौजूदा स्थिति पर गहरी नज़र रखनी होगी। कहीं ऐसा न हो कि हमारी लापरवाही के कारण ऐसा आधुनिक इतिहास संकलित हो जाए, जो मूल इतिहास और मुस्लिम शासकों की गौरवशाली उपलब्धियों पर मोटी चादर डाल दे। इसलिए भारतीय समाज की राजनीतिक परिस्थितियों, उसके विचारों और मानसिकता को न केवल समझना होगा बल्कि सैद्धान्तिक रूप से अध्ययन भी करना होगा। भारत अपनी बहुलता के लिए जाना जाता है और यह इसकी प्रमुख विशेषता है, इसकी पहचान को न केवल भारत के मुस्लिम शासकों द्वारा संरक्षित रखा गया बल्कि इसे बढ़ावा देने के लिए नियमित क़दम उठाए गए थे।

भारत की शरई हैसियत क्या है? यह मुद्दा हमारे पूर्ववर्तियों और

(1) महमूद अली, अह्द-ए-वुस्ता में मुशतरका तमद्दुन और क़ौमी यकजहती, मकतबा जामिआ लिमिटेड, उर्दू बाज़ार, नई दिल्ली, 1996, पृ. 156

पहले के विद्वानों तथा बुज़ुर्गों के दिमाग़ में विरोधाभासी रहा है, इसका मुख्य कारण इस लेखक के विचार में यह है कि हमारे बड़े इस्लामी विद्वानों ने 'दार' शब्द को कई प्रकारों से प्रभाषित किया है, अर्थात 'दारुल-हर्ब', 'दारुल-इस्लाम', दारुल-अम्न' और 'दारुल-मुआहिदा' आदि। फिर उनके अलग-अलग नियम भी बताए हैं। इसलिए इन सभी चर्चाओं के बावजूद, यह देखा जाना चाहिए कि भारत एक स्वतंत्र राज्य, एक संवैधानिक और धर्मनिरपेक्ष देश है। इस देश की भी कई हैसियतें रही हैं। एक दौर था जब भारत में मुस्लिम सरकार थी और यह अवधि काफ़ी लंबी है। उसके बाद भारत में फ़्रांसीसी या अंग्रेज़ आए और देश की सत्ता उनके नियंत्रण में चली गई। फिर यहाँ के हिन्दुओं और मुसलमानों ने भारत को अंग्रेज़ों के अत्याचार से मुक्त कराया। तब से यह एक स्वतंत्र देश है और यहाँ नियमित संविधान और क़ानून है जो धर्मनिरपेक्ष चिंतन और विचारधाराओं पर आधारित है। दूसरे शब्दों में यह कहा जा सकता है कि भारत में वर्तमान में कोई विशेष धर्म अथवा वर्ग का शासन नहीं है, बल्कि यहाँ की व्यवस्था और क़ानून सभी को समान अधिकार प्रदान करता है, चाहे वह किसी भी धर्म, वर्ग या जाति का हो, इसलिए भारत की शरई हैसियत के विषय में कुछ कहने से पहले यह बताना उचित लगता है कि अंग्रेज़ भारत में कैसे आए और किस प्रकार यहाँ के ताने-बाने और अन्य मूल्यों को नष्ट कर दिया। ऊपर कहा जा चुका है कि भारत में जब मुसलमान आए तो उन्होंने देश को विकास की बुलंदी पर पहंचाया, इसके विपरीत अंग्रेज़ों ने हर तरह से देश को बरबाद किया।

भारत में अंग्रेज़ों का आगमन

ज़ाहिर सी बात है कि भारत में अंग्रेज़ों का आधिपत्य था और उनके साथ लगातार संघर्ष होता रहा, आज़ादी की लड़ाई लड़ी गई,

इसका सारा विवरण अनेकों किताबों में उपलब्ध है। यहाँ यह देखने वाली बात है कि जिस समय देश को ग़ुलाम बनाया गया था उस समय यह प्रश्न उठा कि अब तक तो भारत एक इस्लामी राज्य के रूप में था और अब जबकि इस्लामी सत्ता समाप्त हो चुकी है और पूरे देश पर अंग्रेज़ों की हुकूमत क़ायम हो गई है उस समय उन्होंने राजनीतिक और धार्मिक मूल्यों को जो नुक़सान पहुंचाया उसे निम्न पंक्तियों में देखेंः-

विश्लेषकों और इतिहासकारों ने लिखा है कि मुग़ल सरकार का पतन औरंगज़ेब आलमगीर की मृत्यु के बाद शुरू हुआ और देश की स्थिति दिन-प्रतिदिन बिगड़ती चली गई। अंततः ईस्ट इण्डिया कंपनी का शासन भारत पर हावी हो गया और देश की आर्थिक, सामाजिक, राजनीतिक और धार्मिक हालत पूरी तरह से ख़राब होती चली गई, उस समय खुल कर कहा जाता थाः-

> ''ख़िलक़त ख़ुदा की, मुल्क बादशाह का, हुक्म कंपनी बहादुर का।''

इसका अर्थ है कि फ़िरंगियों का प्रभाव देश में इतना शक्तिशाली हो गया कि उनकी इच्छा के बिना कुछ नहीं कर सकते थे, उधर मुस्लिम शासकों ने देश के ढांचे को अत्यंत स्थिर और मज़बूत बनाया था, अचानक अंग्रेज़ों ने देश की पूरी स्थिति और इसकी समृद्धि को बदल डाला। उस समय देश की सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक और धार्मिक स्थिति का विश्लेषण सर सैयद ने अपनी पुस्तक 'असबाब-ए-बग़ावत-ए-हिन्द' और मौलाना मुहम्मद मियाँ ने अपनी पुस्तक 'उलेमा-ए-हिन्द का शानदार माज़ी' में बहुत विस्तार से किया है। यह ऐसा है जैसे देश पूरी तरह से अराजकता और उथल-पुथल का शिकार हो गया और देश के सभी आदर्शों का पतन हो गया। यह कहा जा सकता है कि 1857 का काल इस पतनशील युग का चरमोत्कर्ष है।

सामाजिक मूल्यों पर प्रहार

जब भारत में लोग अंग्रेज़ों द्वारा अनादर और अपमान का शिकार होने लगे, तो सर सैयद का हृदय व्याकुल हो उठता था, अतः उन्होंने अपनी पुस्तक 'असबाब-ए-बग़ावत-ए-हिन्द' में लिखा:-

> ''कोई भी इस बात से इनकार नहीं कर सकता कि प्रजा का सम्मान करना और उन्हें ख़ुश रखना, यानी उनके दिलों को अपने हाथों में रखना बहुत बड़ा कारण है शासन की स्थिरता, जिसमें आदमी को थोड़ा मिले और सम्मान हो, तो वह ज़्यादा ख़ुश रहता है इसके विपरीत बहुत मिले और आदर सम्मान कम मिले। किसी का अपमान करना ऐसी बुरी चीज़ है जो आदमी के दिल को दुखाती है, यही बात है जो बिना ज़ाहिरी नुक़सान पहुंचाए दुशमनी पैदा करती है और उसका घाव इतना गहरा होता है कि कभी नहीं भरता।
>
> جراحات لسان لها التيام ولا يلتام ما جرح اللسان۔
>
> संतुष्ट रखने की विशेषता इसके विपरीत है, वह यह चीज़ है कि उसके लिए शत्रु मित्र हैं और मित्र से प्रेम अधिक होता है। पराया पराया ही होता है। यही चीज़ है जिसके द्वारा जंगल के जानवर, पशु और पक्षी आज्ञाकारी हो जाते हैं, फिर यदि प्रजा के साथ हो तो वे कितने आज्ञाकारी और प्रेमी होंगे, आरंभिक सत्ता में यही वह चीज़ थी जिसने सब के दिलों को सरकार की ओर खींच लिया था। एक हार्दिक आज्ञाकारिता पैदा कर दी थी। निश्चित रूप से हमारी सरकार इन बातों को भूल गई है निःसंदेह भारत की समस्त जनता ने इस ओर इशारा किया है कि हमारी सरकार ने उनके

> साथ बड़ी हीनता और अनादर का व्यवहार किया है। एक भद्र भारतीय की एक छोटे से यूरोपियन के सामने इतनी भी इज़्ज़त नहीं है जितनी एक छोटे यूरोपियन की, उसकी एक बड़े ड्यूक (शासक, राजा) के सामने होती है। यह माना जाता था कि भारत में कोई जेन्टिलमैन है ही नहीं।''[1]

इसके अतिरिक्त, ब्रिटिश सरकार की ओर से जो भेदभाव और विसंगति बरती जाती थी उसका नक़्शा शेख़ इकराम ने अपनी पुस्तक 'मौज-ए-कौसर' में डॉ. सर विलियम हंटर की प्रसिद्ध पुस्तक 'अवर इंडियन मुसलमान्स' के संदर्भ से प्रस्तुत किया है:-

> ''जब देश हमारे नियंत्रण में आया, तो मुसलमान अन्य सभी जातियों से बेहतर थे, न केवल वे दूसरों की तुलना में अधिक बहादुर और शारीरिक रूप से मज़बूत थे, बल्कि उनके पास राजनीतिक और प्रशासनिक कौशल भी अधिक था, लेकिन आज यही मुसलमान सरकारी और ग़ैर-सरकारी नौकरियों से पूर्णतः वंचित हैं।''[2]

इन्ही लेखक के इस उद्धरण को भी देखें जिसमें सरकारी नौकरियों में मुसलमानों के अनुपात की तुलना अन्य जातियों के साथ करते हैं, पहले वह वित्त और न्याय के विभागों में मुसलमानों की दुर्दशा बताते हैं, उसके बाद लिखते हैं:-

> ''लेकिन मुसलमानों के दुर्भाग्य का असली नक्शा इन विभागों में देखा जा सकता है, जिनमें लोग नौकरियों के बंटवारे पर इतना ध्यान नहीं देते हैं। 1869 में इन विभागों की हालत यह थी कि असिस्टेंट इंजीनियरों के तीन दर्जों में

(1) सर सैयद अहमद ख़ान, अस्बाब बग़ावत-ए-हिंद, मतबा मुफ़ीद-ए-आम, आगराए 1903, पृ. 41-42

(2) शेख़ मुहम्मद इकराम, मौज-ए-कौसर, इदारा सक़ाफ़ते इस्लामिया, लाहौर, 2003, पृ. 76

चौदह हिंदू और शून्य मुसलमान थे। लेखा विभाग में पचास हिंदू और शून्य मुस्लिम आदि। सरकारी नौकरियों के अतिरिक्त, हाईकोर्ट के वकीलों की सूची बहुत चिंताजनक थी। एक समय था जब यह पेशा पूरी तरह से मुसलमानों के हाथों में था। उसके बाद भी 1851 तक मुसलमानों की स्थिति अच्छी रही और मुस्लिम वकीलों की संख्या हिंदुओं और अंग्रेज़ों की कुल संख्या की तुलना में कम नहीं थी, लेकिन 1851 से परिवर्तन शुरू हुआ, अब नए तरह के आदमी आने शुरू हुए और परीक्षा की पद्धति भी बदल गई। 1852 से 1868 तक, वकील का लाइसेंस पाने वाले भारतीयों में 239 हिंदू और एक मुसलमान। डॉ. हंटर ने यह भी लिखा है कि अगले दिन एक बड़े सरकारी विभाग में यह देखा गया कि पूरे विभाग में एक भी अधिकारी ऐसा नहीं था जो मुस्लिम भाषा जानता हो, और वास्तव में अब कलकत्ता में शायद ही कोई सरकारी दफ़्तर ऐसा होगा जिसमें किसी मुसलमान को दरबानी, चपरासी या दवातें भरने, कलम ठीक करने से ज़्यादा कुछ मिलने की उम्मीद हो सकती हो। ऊंची-नीची सभी नौकरियां धीरे-धीरे मुसलमानों से छीनी जा रही हैं और अन्य जातियों या विशेष हिंदुओं को दी जा रही हैं। सरकार का कर्तव्य है कि प्रजा के सभी वर्गों को एक दृष्टि से देखे, लेकिन अब यह स्थिति है कि सरकारी गज़ट में सरकार मुसलमानों को सरकारी नौकरियों से अलग रखने की खुलेआम घोषणा करती है।''[1]

उपरोक्त उद्धरण से यह अनुमान लगाया जा सकता है कि सामाजिक मूल्यों और उसके मूल कर्तव्यों का जिस प्रकार से हनन हो

(1) शेख़ मुहम्मद इकराम, मौज-ए-कौसर, इदारा सक़ाफ़ते इस्लामिया, लाहौर, 2003, पृ. 75-76

रहा था, न्याय और समानता जैसी कोई चीज़ नहीं थी, एक ओर मुसलमानों और भारतीय जनता के आदर और सम्मान को रौंदा जा रहा था और दूसरी ओर सभी सरकारी विभागों में उनके साथ अन्याय किया जा रहा था, जो निश्चय ही सामाजिक दृष्टि से एक बहुत ही ख़तरनाक खेल था।

आर्थिक मूल्यों पर हमला

जिस प्रकार से देश में भ्रष्टाचार और सामाजिक न्याय को पूरी तरह से समाप्त कर दिया गया था, उसी प्रकार से देश की आर्थिक स्थिति अत्यंत दयनीय हो गई थी, इतिहासकारों और विशेषज्ञों ने इसके बारे में विस्तार से लिखा है। मौलाना मुहम्मद मियां अपनी किताब 'उलेमा-ए-हिंद का शानदार माज़ी' में लिखते हैंः-

> ''तथ्य यह है कि 1857 की यह ख़ूनी घटना मिटे हुए सामंतवाद की अंगड़ाई नहीं बल्कि एक क़ौम के बढ़ते हुए सामंतवाद के मुक़ाबले दूसरी क़ौम का अपमानजनक व्यवहार था। यह बहस लंबी है, इसका हर कोना एक दास्तान रखता है। वेतन में अंतर, मालगुज़ारी में वृद्धि, मालगुज़ारी की वसूली के लिए प्राणियों की नीलामी, नीलामी के दिल दहला देने वाले और अपमानजनक तरीक़े, ब्याज दर पर ब्याज का रिवाज इत्यादि एक दुखद कहानी है।''[1]

मौलाना मुहम्मद मियां ने अपनी उपरोक्त पुस्तक में विलियम एडवर्ड्स के एक पत्र का हवाला दिया है जो उस समय बदायूं के ज़िलाधिकारी थे, इससे यह अंदाज़ा लगाया जा सकता है कि भारत की आर्थिक स्थिति कितनी ख़राब हो गई थी।

(1) सैयद मुहम्मद मियां, उलेमा-ए-हिंद का शानदार माज़ी, अलजमीअत प्रैस, 1960 जिल्द 4, पृ. 24

''ज़िले में बहुत से लोग मेरे दोस्त थे जो मुझे आश्रय दे सकते थे, बल्कि ये लोग इसके इच्छुक भी थे, लेकिन मेरे साथ मेरे कई साथियों को आश्रय देकर अपनी शांति को ख़तरे में डालना पसंद नहीं करते। विशेष रूप से इस कारण कि उनमें से कुछ लोगों ने ऐसी ज़मींदारी ख़रीदी थी जो हमारी दीवानी अदालतों की डिग्रियों में सख़्ती से नीलाम हुई थीं और इसीलिए ज़िले के लोग इनसे दुश्मनी रखते थे, पिछले बारह से पंद्रह वर्षों में इस तरह की नीलामी अधिकता से होती रही और मालगुज़ारी वसूल करने के ऐसे तरीक़े अपनाए गए कि देश के रईस लोगों को बर्बाद कर दिया गया और गांवों के समूह टूट गए। अधिकतर समृद्ध परिवारों के इलाक़ों को धोखे और दग़ाबाज़ी से छीन लिया गया, और अजनबी लोगों ने, जिनका प्रजा में कोई प्रभाव नहीं था, यह लोग अपने ख़रीदे हुए इलाक़ों से अनुपस्थित रहते हैं, या तो ये लोग वहां रहने से डरते हैं या वहां रहना उन्हें पसन्द नहीं क्योंकि उनको वहां के लोग बेजा क़ब्ज़ा करने वाला मानते हैं। फिर उन छीने हुए इलाक़ों के पुराने मालिकान उस भूमि पर जो पहले कभी उनकी थी, खेतिहर के रूप में क़ाबिज़ हैं। अपनी हालत का बदलाव उनके लिए अत्यंत कष्टदायक होता है। हालांकि मालिकों की ज़मीनें उनके हाथों से चली गई हैं, लेकिन वे हमेशा की तरह प्रजा के प्यार और सहानुभूति पर उसी स्थायी वंशानुगत प्रभाव को बनाए रखते हैं और प्रजा भी उनका समर्थन करने के लिए तैयार और उत्सुक रहती है कि जब कभी उनके मुखिया, खोया हुआ स्थान अथवा अपने इलाक़ों पर क़ब्ज़ा करने का इरादा करें तो उनका साथ दे।''[1]

(1) सैयद मुहम्मद मियां, उलेमा-ए-हिंद का शानदार माज़ी, 13-14

मौलाना मुहम्मद मियां ने सर सैयद की पुस्तक 'असबाब-ए-बग़ावत-ए-हिन्द' के संदर्भ से लिखा हैः-

''भारत की प्रजा दिन-प्रतिदिन ग़रीब होती जा रही थी, टैक्स की अधिकता ने ज़मींदारों और काश्तकारों को तबाह कर दिया था, ज़मींदारियां छीनकर नीलाम की जाती थीं। भारत में एक बिल्कुल नया संविधान था। विदेशी सामान के आगमन ने कारीगरों को बर्बाद कर दिया था। सरकार ने ऐसे नोट जारी किए जिन पर देश से ब्याज वसूल किया जाता था। पहले की व्यवस्था में शाही इनाम प्रजा के लिए संतोष और आराम का एक स्थायी स्रोत था। जब शाहजहां बादशाह बना तो केवल तख़्तनशीनी के पहले दिन चार लाख बीघा ज़मीन और 120 गाँव तथा लाखों रुपये उपहार में दिए थे, यह बात हमारी गवर्नमेंट में थी ही नहीं। इस आम ग़रीबी का नतीजा था कि अब बाग़ियों ने लोगों को नौकर रखना चाहा तो जैसे भूखा आदमी अकाल के दिनों में अनाज पर गिरता है उसी तरह लोग नौकरियों पर जा गिरे। बहुत से लोग एक आना प्रतिदिन पर नौकर हुए और बहुत से लोग सेर डेढ़ सेर जौ अनाज पाते थे।''[1]

मौलाना मुहम्मद मियां ने सर सैयद के संदर्भ से यह भी लिखा है

''देश हर तरह से दरिद्र हो गया था, धनी परिवार जो हज़ारों के मालिक थे, जीविका से भी तंग आ गए थे और यही असली कारण था सरकार के प्रति प्रजा के असंतोष का। लोगों के दिल जो सत्ता परिवर्तन के इच्छुक थे और नई सत्ता के लिए आकर्षित और ख़ुश थे, मैं सच कहता हूं कि

(1) सैयद मुहम्मद मियां, उलेमा-ए-हिंद का शानदार माज़ी, 28, 'असबाब बग़ावत-ए-हिंद, के हवाले से, पृ. 35-36

यह इसी कारण से था। हम सच कहते हैं और फिर हम सच कहते हैं, हम बहुत सच कहते हैं कि जब अफ़ग़ानिस्तान पर सरकार ने विजय पाई तो लोग बहुत दुखी हुए, कारण क्या था, कारण केवल इतना था कि अब धर्म पर खुला आक्रमण होगा, जब ग्वालियर जीता, पंजाब जीता, अवध लिया गया तो प्रजा को भारी कष्ट हुआ, क्यों हुआ? ऐसा इसलिए हुआ कि उनके पास के भारतीय शासन से भारत को बहुत सहजता थी, नौकरियां हाथ आती थीं, सभी प्रकार के भारतीय सामानों का व्यापार प्रचुर मात्रा में होता था, इन हुकूमतों के बिगड़ने से अधिक ग़रीबी और मोहताजी होती जाती थी।''[(1)]

उपरोक्त सभी तथ्य और तर्क इस बात के प्रमाण हैं कि अंग्रेज़ों ने न केवल मुसलमानों की बल्कि पूरे देश की हालत ख़राब कर दी थी, पूरे देश की अर्थव्यवस्था चरमरा गई थी, जबकि यह निर्विवाद तथ्य है कि किसी भी समाज को जीवित रखने और उसके बौद्धिक, व्यावहारिक और अनुसंधान ऊर्जा की उन्नति के लिए अर्थव्यवस्था और अर्थशास्त्र को पूरी तरह से सुरक्षित और शांतिपूर्ण बनाना होता है, लेकिन जिस तरह से देश की अर्थव्यवस्था अंग्रेज़ों के हाथों में जाने के बाद नष्ट और ख़राब हुई, वह एक दुखद बात थी, शेख़ इकराम ने अपनी किताब 'मौज-ए-कौसर' में लिखा है:-

''डॉ. सर विलियम हंटर ने अपनी किताब के चौथे अध्याय में मुसलमानों की आर्थिक स्थिति का रेखाचित्र बनाया है, जिसमें वे लिखते हैं कि मुसलमानों को सरकार से बहुत सी शिकायतें हैं, एक शिकायत यह है कि सरकार

(1) सैयद मुहम्मद मियां, उलेमा-ए-हिंद का शानदार माज़ी, 29, 'असबाब बग़ावत-ए-हिंद, के हवाले से, पृ. 36-37

ने उनके लिए सभी अहम पदों के दरवाज़े बंद कर दिए हैं। दूसरी, उन्होंने एक ऐसी शिक्षा प्रणाली जारी की है जिसमें उनके लोगों के लिए कोई प्रावधान नहीं है। तीसरी, क़ाज़ियों को हटाने पर हज़ारों परिवार जो इस्लामी शिक्षा के रक्षक थे, बेकार और मोहताज कर दिए गए। चौथी शिकायत यह है कि उनके औक़ाफ़ की आय जिसे उनकी शिक्षा पर ख़र्च किया जाना चाहिए था, लेकिन यह ग़लत कार्यो पर ख़र्च की जा रही है।''[(1)]

यह ऐसा है जैसे मुसलमान आर्थिक रूप से पूरी तरह से अपंग बना दिए गए थे।

धार्मिक एवं सांस्कृतिक मूल्यों पर हमला

यहाँ इस तथ्य का उल्लेख करना भी आवश्यक है कि अंग्रेज़ों ने न केवल देश की अर्थव्यवस्था और सामाजिक तानेबाने पर प्रहार किया, बल्कि उन्होंने धर्म, संस्कृति और नागरिक अस्मिता को भी बुरी तरह चोट पहुंचाई थी। वास्तव में यह उनका बड़ा गंभीर अपराध था, इस बारे में सर सैयद ने उनकी कड़ी आलोचना की है, अतः वह अपनी पुस्तक 'असबाब-ए-बग़ावत-ए-हिन्द' में लिखते हैं:-

''हर व्यक्ति दिल से जानता है कि हमारी सरकार के आदेश बहुत धीरे-धीरे निकलते हैं और जो करना चाहिए उसे धीरे-धीरे करते हैं। इसलिए तुरंत और जबरन दीन बदलने को नहीं कहते, मगर जितना क़ाबू करते जाएंगे उनता हस्क्षेप करते जाएंगे और जो बातें धीरे-धीरे ज़ाहिर होती गईं उनके इस ग़लत संदेह को मज़बूत करती गईं। सब को यक़ीन था कि हमारी सरकार ज़बरदस्ती नहीं

(1) मौज-ए-कौसर, पृ. 74

करेगी, बल्कि गुप्त रूप से उपाय करके समाप्त करने, अरबी और संस्कृत के ज्ञान को कंगाल कर देने, देश के लोगों को, जो उनका धर्म है, उनके आदेशों से अनभिज्ञ करके और अपने धर्म की पुस्तकों, आदेशों और उपदेशों को फैला कर, नौकरियों का लालच देकर लोगों को नास्तिक कर देंगे। 1837 के अकाल में जो अनाथ लड़के ईसाई किए गए वह सभी ज़िले पश्चिमी एवं उत्तरी देशों में सरकारी संस्थाओं के आदर्श ज़िले गिने जाते कि भारत को इस प्रकार से कंगाल और निर्धन करके अपने धर्म में ले आएंगे। मैं सच कहता हूं कि जब सरकार माननीय ईस्ट इंडिया कम्पनी किसी देश पर विजय प्राप्त करती है तो भारत की प्रजा को बहुत दुख होता था, और यह भी मैं सच कहता हूं कि उद्देश्य इस दुख का और कुछ नहीं होता था सिवाए इसके कि लोग जानते थे कि जैसे-जैसे हमारी सरकार का अधिकार अधिक होता जाएगा और किसी शत्रु और पड़ोसी राजा के मुक़ाबले और दंगे की आशंका बढ़ेगी वैसे-वैसे हमारे धर्म और परंपरा में हस्तक्षेप करेंगे।''[1]

एक अन्य जगह लिखते हैं:-

''पादरी लोगों के उपदेशों ने एक नया तरीक़ा निकाला था, धार्मिक विवादों की पुस्तकें प्रश्न-उत्तर के रूप में छपनी और वितरित होनी शुरू हुईं। उन पुस्तकों में अन्य धर्म के महान लोगों के सम्बंध में दुखद शब्द और लेख लिखे गए। भारत में उपदेश और कथा की परम्परा यह है कि अपने-अपने धार्मिक स्थान या मकान पर बैठकर कहते हैं कि जिसका दिल चाहे और जिसको रुचि हो वहां जाकर

(1) सर सैयद अहमद ख़ान, असबाब बग़ावत-ए-हिंद, मुफ़ीद-ए-आम, आगरा, 1903, पृ. 16-17

सुने। पादरी लोगों का तरीक़ा इसके विरीत था। वह स्वयं अन्य धर्म की सभा, तीर्थ और मेले में जाकर उपदेश देते थे और कोई व्यक्ति केवल अधिकारियों के भय से रोकता नहीं था। कुछ ज़िलों में यह रिवाज निकला कि पादरी साहब के साथ थाने का एक चपरासी जाने लगा। पादरी साहब उपदेश में केवल पवित्र इंजील (बाइबल) के बयान तक ही सीमित नहीं रहते थे बल्कि अन्य धर्म के महानुभावों और पवित्र स्थानों को बहुत हीन भावना और अपमान से याद करते थे जिससे सुनने वालों को बहुत दुख और हार्दिक पीड़ा पहुंचता था और हमारी सरकार द्वारा आक्रोश का बीज लोगों के दिलों में बोया जाता था।''[1]

इसी तरह सर सैयद ने यह भी लिखा है:-

''मिशनरी स्कूल बहुत खोले गए और उनमें धार्मिक शिक्षा शुरू हुई। सब लोग कहते थे कि सरकार की ओर से हैं। कुछ ज़िलों में बहुत बड़े-बड़े उच्च पद के अधिकारी उन स्कूलों का दौरा करते और लोगों को उनमें प्रवेश लेने और जुड़ने के लिए प्रोत्साहित करते थे। परीक्षाएं धार्मिक पुस्तकों में ली जाती थीं और छात्रों में जो लड़के छोटी आयु के होते थे, पूछा जाता था कि तुम्हारा ख़ुदा कौन है? तुम्हारा मुक्ति देने वाला कौन है? और वह ईसाई धर्म के अनुसार उत्तर देते थे, इस पर उनको पुरस्कार मिलता था, इन सब बातों द्वारा प्रजा का दिल हमारी सरकार से फिरता जाता था।''[2]

(1) सर सैयद अहमद ख़ान, असबाब बग़ावत-ए-हिंद, पृ. 18
(2) उपरोक्त संदर्भ, पृ. 18

इसी तरह अन्य मामले भी चलाए जा रहे थे, जिसके कारण देश में मुसलमानों या अन्य जातियों का धर्म तेज़ी से बदला जा रहा था। सर सैयद परिणाम स्वरूप लिखते हैंः-

> ''इन सब बातों से मुसलमान हिन्दुओं की अपेक्षा अधिक क्रोधित थे, इसका कारण यह है कि हिन्दू अपने धर्म के आदेश कर्मकांड और रीति-रिवाजों के रूप में मानते हैं न कि धार्मिक आदेश के रूप में। आदेश, विश्वास और वह मान्यताएं जिन पर उनके धर्म के अनुसार मृत्यु के बाद मुक्ति निर्भर है, कुछ भी मालूम नहीं हैं और न उनके चरित्र में हैं। इस कारण से वे अपने धर्म में बहुत आलसी हैं और औपचारिक बातों अथवा खाने-पीने से परहेज़ के अतिरिक्त किसी धार्मिक आस्था में परिपक्व और पक्षपाती नहीं हैं। उनके सामने उनकी मान्यता और आस्था के विपरीत बातें हुआ करें, उनको कुछ क्रोध या दुख नहीं होता। मुसलमान इसके विपरीत हैं, वह अपने धर्म के आदेशानुसार जो बातें उनके धर्म में मुक्ति देने वाली और प्रकोप में डालने वाली हैं उन्हें भलीभांति जानते हैं और उन आदेशें को धार्मिक आदेश और ख़ुदा का आदेश समझ कर मानते हैं, इस कारण से अपने धर्म में परिपक्व हैं।''(1)

इसके अतिरिक्त मौलाना मुहम्मद मियां ने अपनी किताब 'उलमा-ए-हिन्द का शानदार माज़ी' में शम्सुल उलमा ज़काउल्लाह ख़ाँ की किताब 'तारीख़-ए-उरूज अह्द-ए-इंग्लेशिया' के संदर्भ से लिखा हैः-

> ''मिशनरियों और ब्रिटिश अधिकारियों के उन प्रयासों को जो हिन्दुओं के धर्म और उनकी परम्परा के विरुद्ध थे

(1) सर सैयद अहमद ख़ान, असबाब बग़ावत-ए-हिंद, पृ. 23

> उनका विरोध पंडित भी करते थे। पंडितों ने अपने धार्मिक ग्रंथों में सांसारिक ज्ञान की हर शाखा को नियमित व्यवस्था के रूप में शामिल कर रखा है। अतः इस दुनिया में और इससे बाहर हिन्दुओं पर जो सत्ता पंडितों को प्राप्त है उसका उदाहरण दुनिया में नहीं। अब अंग्रेज़ी शासन में उनकी सारी सत्ता और अधिकार में विघटन पड़ा। मुक़दमे अंग्रेज़ अदालतों में जाते और उनकी अपील भी उच्च न्यायालयों में होती। पंडितों की पूछताछ उनमें कम हो गई, इसलिए यह पूरा वर्ग अंग्रेज़ी शासन का अहितचिंतक हो गया।''(1)

उपरोक्त पंक्तियों के आलोक में यह कहा जा सकता है कि अंग्रेज़ों या फ़िरंगियों ने न केवल देश पर क़ब्ज़ा किया बल्कि उन्होंने यहां के लोगों को धर्मांतरित करने का भरसक प्रयास भी किया, इस कारण से हिन्दुओं विशेषकर मुसलमानों में उनके विरुद्ध साहस उत्पन्न हुआ। उन्होंने भारत की सांझी संस्कृति और यहां के आपसी मूल्यों को रौंदना शुरू कर दिया, जैसा कि सर सैयद ने अपनी पुस्तक 'असबाब-ए-बग़ावत-ए-हिन्द' में दर्ज किया हैः-

> ''वर्तमान अधिकारियों की अपेक्षा पहले के अधिकारियों का लोग बहुत सम्मान करते थे, जो हर तरह से भारतीयों का ख़याल रखते थे, उनके दिलों को अपने हाथों में रखते थे, उनके दुख और आराम को दोस्ताना तरीक़े से साझा करते थे, इसके बावजूद भी कि उनके पास महान नेतृत्व और शासन था, उसका रौब और दबदबा भी, जो हुकूमत की शान है वह भी हाथ से जाने नहीं देते थे। फिर वे भारतियों को ऐसा प्यार और आदर देते थे कि हर कोई उनकी नैतिकता और प्रेम का कायल हो जाता था।''(2)

(1) उलमा-ए-हिंद का शानदार माज़ी, पृ. 43 (2) उपरोक्त संदर्भ, पृ. 42-43

मगर अफ़सोस, भारत के ये सभी गुण और रचनात्मक विचार नष्ट कर डाले जिससे जनता अंग्रेज़ों के ख़िलाफ़ असहज हो गई और देश की अखण्डता की भावना आम और ख़ास लोगों के दिलों में तेज़ी से विकसित होने लगी। अतः मौलाना मुहम्मद मियां ने अपनी पुस्तक में इस बेचैनी की शुरूआत के विषय में लिखा हैः-

> ''इस बेचैनी ने सब से पहले 22 जनवरी 1857 को दमदम (कलकत्ता) में सक्रिय रूप दिखया, जब वहां तैनात देशी सैनिकों ने अपने ब्रिटिश अधिकारी से शिकायत की कि एन-फील्ड राइफ़ल्स के लिए जहां कारतूस बनाए जाते हैं, उसमें गाय और सुअर की चर्बी है। उस अधिकारी ने भारत सरकार को सूचित किया। सरकार ने कुछ छावनियों में देशी सिपाहियों को समझा दिया कि कारतूसों में ऐसी चीज़ों का उपयोग नहीं किया जा रहा है, लेकिन यह अफ़वाह बारूद के ढेर में चिंगारी बन चुकी थी। बारकपुर के सैनिकों ने बहरामपुर की 19वीं रेजीमेंट में बेचैनी का बीज बो दिया। 19 फ़रवरी की रात को इस रेजीमेंट ने प्रदर्शन शुरू कर दिया। कर्नल 'मिचेल' ने सैनिकों से इस प्रदर्शन का कारण पूछा तो सैनिकों का उत्तर था, सरकार हमारे धर्म को दूषित कर रही है।''(1)

मौलाना मुहम्मद मियां ने यह भी लिखा हैः-

> ''यह दीन-दीन(2) का नारा लगाने वाला एक ब्राह्मण मंगल पाण्डे था। उसकी घटना यह थी कि सेना के एक ख़लासी ने जो निचली जाति का था, पाण्डे से कहा, मुझे अपने लोटे से पानी पिला दे। मंगल पाण्डे ने पूछा, तू किस

(1) उलेमा-ए-हिंद का शानदार माज़ी, पृ. 90-91
(2) 1857 के संग्राम में स्वतंत्रता सेनानियों का नारा।

> जाति का है? ख़लासी ने व्यंग्य से कहा, जाति क्या पूछते हो, सब जातपात रखा रह जाएगा, वह कारतूस आ गए हैं जिनमें सुअर और गाय की चर्बी लगी है। उनको दांत से काटना पड़ेगा।।''(1)

इस घटना का पूरा विवरण मौलाना मुहम्मद मियां ने अपनी पुस्तक ''उलेमा-ए-हिन्द का शानदार माज़ी' में लिखा है, विवरण विस्तृत होने के कारण छोड़ दिया गया है। निश्चय ही इन सब स्थितियों से देश में अशांति और भारतीय समाज में असामंजस्य पैदा होना स्वाभाविक था, मुसलमानों की धार्मिक भावनाओं और हिन्दुओं के रीति-रिवाजों का पूरी तरह से उल्लंघन हुआ और अंग्रेज़ी सरकार ने देश पर पूरी तरह क़ब्ज़ा कर लिया, तब हमारे उलमा ने जिहाद का फ़तवा जारी किया। इस फ़तवे के बारे में मौलाना मुहम्मद मियां ने विस्तार से लिखा है। मुफ़्ती-ए-आज़म शाह अब्दुल अज़ीज़ ने लिखा है।

> ''इस क्षेत्र में और यहाँ से कलकत्ता तक ईसाइयों का शासन चलता है, वे बिना रोकटोक जो चाहें करते हैं, वे पूजा स्थलों को भी नष्ट कर देते हैं, उन्हें धर्म का कोई सम्मान नहीं है।''(2)

इसी तरह के प्रयासों ने भारतियों के दिलों में स्थापित कर दिया कि देश को अंग्रेज़ों की गुलामी से मुक्त करना है, मौलाना मुहम्मद मियां लिखते हैंः-

> ''हम भारतीय हैं, भारत हमारी मातृभूमि है, अंग्रेज़ व्यापार के उद्देश्य से सात समुद्र पार से भारत आए, भारत की मुग़ल सरकार ने उन्हें व्यापार करने की अनुमति दी, इन

(1) उलमा-ए-हिंद का शानदार माज़ी, पृ. 91
(2) उपरोक्त संदर्भ, पृ. 183

विदेशियों ने धीरे-धीरे भारत पर क़ब्ज़ा कर लिया, यह क़ब्ज़ा ज़बर्दस्ती और अन्याय है। इस बाहरी ताक़त से देश को आज़ाद कराना देश के नागरिकों का कर्तव्य है।''[1]

उपरोक्त पंक्तियों में वर्णित पृष्ठभूमि से यह ज्ञात होता है कि जब मुसलमान भारत आए तो उन्होंने देश की महानता और सुरक्षा तथा देश के निर्माण और विकास के लिए संघर्ष किया और देश को आर्थिक, सामाजिक तथा अन्य सभी क्षेत्रों में उल्लेखनीय बनाया। लेकिन दुर्भाग्य से जब भारत जैसे महान देश पर फ़िरंगियों का क़ब्ज़ा हो गया तो उन्होंने न केवल देश को आर्थिक और सांस्कृतिक रूप से कमज़ोर कर दिया, बल्कि यहां के लोगों की धार्मिक भावनाओं को भी ठेस पहुंचाई। इसी प्रकार देश में न तो इस्लामी मूल्य सुरक्षित थे और न ही हिन्दू रीति-रिवाज और परम्पराएं, जो अब से पहले यहां की श्रेष्ठता थी, साथ ही मैं यह भी कहना चाहूँगा कि अंग्रेज़ों के अत्याचार, ज़्यादतियाँ और धार्मिक मामलों में हस्तक्षेप और सख़्ती से दुखी होकर देश को आज़ाद कराने के लिए सबसे पहला फ़तवा एक मुस्लिम आलिम का आया, यही नहीं, बल्कि इस फ़तवे पर उस समय के बड़े-बड़े आलिमों और बुद्धिजीवियों ने हस्ताक्षर किए, इससे यह नतीजा निकलता है कि मुसलमानों ने अपने वतन से मुहब्बत और वफ़ादारी के कारण जिहाद का फ़तवा दिया था, भारत जो अब तक मुसलमानों के अधिकार में था, अब पूरी तरह अंग्रेज़ों के क़ब्ज़े में चला गया। उन्होंने हर प्रकार के अत्याचार किए, इसी बीच यह बहस भी उठी कि इस समय भारत की शरई हैसियत क्या है? अतः उस समय के उलमा ने जो फ़तवे दिए थे और भारत की शरई हैसियत बयान की थी उसको नीचे प्रस्तुत किया जाता हैः-

(1) उलमा-ए-हिंद का शानदार माज़ी, पृ. 195

स्वतंत्रता से पूर्व भारत की शरई हैसियत

जब भारत ग़ुलाम था और देश पर पूरी तरह से अंग्रेज़ों का शासन था, इस दौरान मुफ़्तियों द्वारा भारत की शरई हैसियत के बारे में दी गई राय को नीचे प्रस्तुत किया जाएगा। भारत की शरई हैसियत के बारे में बहुत कुछ लिखा जा चुका है और विभिन्न फ़तवों की पुस्तकों में बाक़ायदा फ़तवे भी मौजूद हैं, अलबत्ता मौलाना सईद अहमद अकबराबादी ने 'नफ़्सतुल मस्दूर और हिन्दुस्तान की शरई हैसियत' शीर्षक से एक पुस्तक लिखी है, जिसमें मौलाना ने उन तमाम फ़तवों को जमा कर दिया है जो आज़ादी के पहले या आज़ादी के बाद दिए गए थे। मौलाना ने उन फ़तवों पर आलोचनात्मक टिप्पणी भी की है।

शाह अब्दुल अज़ीज़ (1109 -1239 हिजरी)

भारत के बारे में शाह अब्दुल अज़ीज़ के फ़तवे का ज़िक्र भी ऊपर उल्लेखित किताब में मौजूद हैः-

''इस शहर (दिल्ली) में मुसलमानों के इमाम का हुक्म बिल्कुल भी लागू नहीं है, लेकिन ईसाइयों के प्रमुखों और अधिकारियों का शासन बेख़ौफ़ जारी है। हाँ, यदि इस्लाम के मूल सिद्धांत जैसे अज़ान, जुमा और गौकुशी आदि पर आपत्ति नहीं करते तो न करें लेकिन इस्लाम के असल नियम उनकी नज़र में व्यर्थ है। निःसंकोच मस्जिदों को जो ख़ुदा के घर हैं, नष्ट और नुक़सान पहुंचाते हैं। यहां तक कि कोई मुस्लिम या ग़ैर-मुस्लिम अंग्रेज़ों की अनुमति के बिना इस शहर में नहीं आ सकता है, यहां तक कि शुजा और विलायती बेगम तक उनकी अनुमति के बिना शहर में प्रवेश नहीं कर सकते, इसलिए जब हदीसों और सहाबा

> तथा महान ख़लीफ़ाओं के जीवन चरित्र पर जिज्ञासु निगाहें डाली जाती हैं, तो समझ में आता है कि यह नगर 'दारुल-हर्ब' (युद्ध क्षेत्र) है।''[1]

मौलाना के इस फ़तवे से पता चलता है कि भारत 'दारुल-हर्ब' की श्रेणी में आता है, हालांकि मौलाना सईद अहमद अकबराबादी ने इस फ़तवे पर टिप्पणी करते हुए लिखा हैः-

> ''इसके अतिरिक्त एक व्यक्ति ने 'दारुल-हर्ब' में ब्याज के लेन-देन के बारे में सवाल किया, तो हज़रत शाह साहब ने अपने जवाब में 'दारुल-हर्ब' और 'दरुल इस्लाम' की चर्चा शुरू कर दी और इस सिलसिले में अलग-अलग राय पेश करने और अपनी राय बयान करने के बाद लिखते हैं, ''और जब यह है तो अंग्रेज़ों और उनके जैसे काफ़िरों की विजित भूमि निःसंदेह दारुल-हर्ब हैं।''[2]

सैयद अहमद शहीद राय बरैलवी (1786-1831 ई.)

यह एक वास्तकिवता है कि सैयद अहमद शहीद ने देश की आज़ादी के लिए बहुत बलिदान दिया है, उन्होंने ग्वालियर रियासत के महामंत्री राजा हिंदू राव को जो पत्र लिखा है, उसमें फ़रमाते हैंः-

> ''आप पर यह बात स्पष्ट और ज़ाहिर है कि विदेशी लोग समुद्र पार से यहां आए और यहां के राजा बन गए, और जो व्यापारी थे वे साम्राज्य के स्तर तक पहुंच गए हैं। इन लोगों ने बड़े-बड़े राज्य और रियासतें बरबाद कर दी हैं और उनकी इज़्ज़त आबरू को ख़ाक में मिला दिया है (इन परिस्थितियों के बावजूद) चूंकि रियासत और सियासत के

(1) मौलाना सईद अहमद अकबराबादी, नफ़्सतुल मस्दूर और हिन्दुस्तान की शरई हैसियत, अलीगढ़ मुस्लिम यूनीवर्सिटी, अलीगढ़, पृ. 38
(2) उपरोक्त संदर्भ, पृ. 28

> लोग गुमनामी में पड़े हुए हैं, इसलिए हम कुछ फ़क़ीर और आम लोग अल्लाह तआला की ख़िदमत करने के लिए उठ खड़े हुए हैं।''[1]

मौलाना अब्दुल हई लखनवी (1848-1886 ई.)

जब मौलाना अब्दुल हई लखनवी से भारत की शरई हैसियत के से सम्बंधित फ़तवा पूछा गया, तो उन्होंने निम्नलिखित उत्तर दियाः-

> ''जहां तक अंग्रेज़ों का आधिपत्य है, भारत दारुल-हर्ब है या नहीं? यदि है, तो केवल 'साहिबैन' (इमाम अबू यूसुफ़ और इमाम मुहम्मद) के पंथ के अनुसार है या इमाम अबू हनीफ़ा के पंथ के अनुसार भी है? इस प्रश्न का उत्तर मौलाना ने दिया कि भारत 'दारुल-हर्ब' (युद्ध क्षेत्र) नहीं, बल्कि 'दारुल इस्लाम' (शांति क्षेत्र) है। उसके बाद इस दावे के प्रमाण में फ़िक़्ह की पुस्तकों से लम्बे उद्धरण नक़ल किए हैं, इसके अंत में लिखते हैंः-
>
> इन उद्धरणों और उनके उदाहरणों से स्पष्ट है कि दारुल-इस्लाम के 'दारुल-हर्ब' होने में शर्त यह है कि कुफ़्र के आदेश खुल्लम-खुल्ला घोषित हों और इस्लामी आदेशों को पूर्ण रूप से निलंबित कर दिया जाए और इस्लामी रीति-रिवाजों और धार्मिक आवश्यकताओं में काफ़िर (अधर्मी) हस्तक्षेप करने लगें, और यह शर्त सब के यहां मान्य है। इमाम अबू हनीफ़ा ने इसके अतिरिक्त और भी दो शर्तें अधिक लगाई हैं। एक यह कि उस क्षेत्र और 'दारुल-हर्ब' में कोई नगर मुसलमानों का बाक़ी न रहे, दूसरे यह कि पिछले समझौते का हनन होने लगे और

(1) मौलाना सईद अहमद अकबराबादी, नफ़्सतुल मस्दूर और हिन्दुस्तान की शरई हैसियत, अलीगढ़ मुस्लिम यूनीवर्सिटी, अलीगढ़, पृ. 39-40

अधर्मियों की दया पर रहने की नौबत आई हो, और स्पष्ट है कि भारतीय नगरों में यह स्थिति नहीं पाई जाती। अतः इस्लामी रीति-रिवाज में अभी तक अधिकारियों की ओर से हस्तक्षेप और विरोध नहीं है। यदि अधिकतर न्यायाधीश अधर्मी हैं और इस्लाम के विरुद्ध आदेश जारी करते हैं, परन्तु बहुत से मामलों में इस्लामी धर्म और शरीअत के अनुसार भी निर्णय देते हैं। भारत इमाम अबू हनीफ़ा और 'साहिबैन' (इमाम अबू यूसुफ़ और इमाम मुहम्मद) किसी के अनुसार 'दारुल-हर्ब' नहीं है।''(1)

मौलाना अनवर शाह कश्मीरी (1875-1933 ई.)

इस बीच यह उचित प्रतीत होता है कि अब अन्य हनफ़ी विद्वानों की राय भी रखी जाए, अतः मौलाना सईद अहमद अकबराबादी ने मौलाना अनवर शाह कश्मीरी के बारे में लिखा हैः-

> ''हज़रत मौलाना अनवर शाह कश्मीरी ने पेशावर में जमीयत उलेमा-ए-हिंद के भव्य वार्षिक सम्मेलन में अध्यक्ष के रूप में फ़ारसी भाषा में एक ख़ुतबा (व्याख्यान) प्रस्तुत किया था जिसमें उन्होंने भारत को 'दारुल अम्न' (शांत क्षेत्र) कह दिया था, परन्तु 'दारुल अम्न' से शाह साहब का तात्पर्य 'दारुल अह्द' (समझौता क्षेत्र) है।''

इस पर मौलाना सईद अहमद अकबराबादी मौलाना अनवर शाह के मत को और विस्तार से बयान करते हुए लिखते हैंः-

> ''हमें पता चला कि शाह इस्हाक़ साहब मुहद्दिस देहलवी भारतियों को अंग्रेज़ों के हाथ में क़ैदी मानते थे और किसी समझौते के क़ायल नहीं थे, लेकिन मेरे लिए शोध

(1) मौलाना अब्दुल हई फ़िरंगीमहली, मजमूआ फ़तावा, यूसुफ़ी प्रैस फ़िरंगी महल, लखनऊ, 1312 हिजरी, जिल्द 1, पृ. 73-74

> का बिंदु यह है कि यद्यपि सरकार और भारत के लोगों के बीच कोई औपचारिक समझौता नहीं हुआ है किन्तु व्यवहार में एक समझौता है। हम अपने मामलों को उनकी अदालतों में ले जाते हैं और व्यक्तिगत और वित्तीय मामलों में उनकी मदद लेते हैं और इन सभी मामलों के समाधान के लिए हम उनके पास जाते हैं, चाहे इस बात को किसी इस्लामी विद्वान ने नहीं लिखा मगर मेरे अनुसार आदेश यही है और इस पर ही सभी समाधान होंगे। इसके बाद फ़रमाते हैं, यह समझौते पहले जान और माल दोनें से सम्बंधित थे, परन्तु अब जान से सम्बंधित समझौते को हमने उनके मुंह पर दे मारा है (अर्थात वह हमारी जान के ज़िम्मेदार नहीं और हम उनकी जान के) लेकिन संपत्ति के बारे में समझौता अभी तक बाक़ी है।''(1)

मौलाना क़ासिम नानौतवी (1880-1833 ई.)

मौलाना सईद अहमद अकबराबादी ने मौलाना क़ासिम नानौतवी के बारे में लिखा है कि वे भारत में सूदी लेन-देन से संबंधित अनेक हदीसें (पैग़म्बर के कथन) नक़ल करने के बाद लिखते हैंः-

> ''ब ऐतबार रिवायाते मनक़ूला हिन्दुस्तान 'दारुल-हर्ब' अस्त।'' (उपरोक्त हदीसों के अनुसार भारत 'दारुल-हर्ब' है।)

इसके बाद पुस्तक के अंत में लिखते हैंः-

> ''भारत के 'दारुल-हर्ब' होने के बारे में विरोधाभास है जैसा कि पिछली नक़ल की गई हदीसों से तुमको मालूम हुआ होगा, यद्यपि मेरी नज़र में यही ठीक है कि भारत 'दारुल-हर्ब' है।''

(1) नफ़्सतुल मस्दूर और हिन्दुस्तान की शरई हैसियत, पृ. 48

इसके बाद मौलाना नानौतवी उन लोगों पर व्यंग्य करते हैं जो देश को 'दारुल-हर्ब' (युद्ध क्षेत्र) मानकर सूदी लेन-देन को जायज़ ठहराते हैं:-

> ''ये बड़े विचित्र लोग हैं, जब हम कहते हैं कि अच्छा यदि अगर भारत दारुल-हर्ब है तो तुम्हें पलायन करना चाहिए, इस पर वह कहते हैं कि यह दारुल इस्लाम है, परन्तु जब हम कहते हैं कि यहां सूदी कारोबार जायज़ नहीं तो झूठ बोल देते हैं कि यह तो दारुल-हर्ब है, गोया चित्त भी उनकी और पट भी उनकी। पलायन से बचने के लिए इसको दारुल इस्लाम कह दिया और सूद खाने के लिए उसे दारुल-हर्ब क़रार दे दिया, सुब्हानल्लाह।''[1]

मौलाना अशरफ़ अली थानवी (1863-1943 ई.)

मौलाना अशरफ़ अली थानवी ने कई जगह भारत में सूद लेने के सम्बंध में लिखा है, परन्तु उन्होंने भारत को दारुल-हर्ब कहीं नहीं लिखा है बल्कि आप का यह कथन प्रसिद्ध है कि यदि कोई व्यक्ति किसी कारणवश रेल का टिकट नहीं ख़रीद सका और इसी स्थिति में उसने यात्रा सुचारू रूप से कर ली तो अब उसे चाहिए कि उतनी ही दूरी और उसी श्रेणी का एक टिकट ख़रीद कर फाड़ दे ताकि सरकार का नुक़सान न हो।[1]

मौलवी नज़ीर देहलवी (1836-1912 ई.)

जमाअत अहले-हदीस विचारधारा के एक बड़े आलिम मौलाना नज़ीर देहलवी भारत को दारुल-हर्ब नहीं बल्कि दारुल इस्लाम कहते हैं:-

> ''दारुल-हर्ब से तात्पर्य वह देश है जिसमें काफ़िरों का

(1) नफ़्सतुल मस्दूर और हिन्दुस्तान की शरई हैसियत, पृ. 43-44
(2) उपरोक्त संदर्भ, पृ. 49

> शासन हो और वहां का शासक धार्मिक हठ के कारण मुसलमानों के लिए अनिवार्य नमाज़, रोज़ा, हज, ज़कात को अदा करने के लिए रोके और मना करे। ऐसे देश में मुसलमानों को रहना उचित नहीं। ख़ुदा का शुक्र है कि हमारा भारत ईसाइयों के शासन के बावजूद दारुल-हर्ब नहीं है। इसलिए कि यहां अनिवार्य कर्तव्यों का पालन करने में किसी प्रकार की रोक-टोक नहीं, और जो प्लेग की वजह से हाजियों को सऊदी अरब की यात्रा से रोका जाता है तो यह रोकना स्थायी नहीं बल्कि अस्थायी और सुझाव के रूप में है और इस से अधिक रोक-टोक तो मिस्र और रोम में हो रही है, जहां इस्लामी हुकूमत है, क्योंकि प्लेग की बीमारी संक्रामक है, एक से उड़कर दूसरे को लग जाती है, हज के मौसम में बहुत से लोगों की भीड़ होगी तो संदेह है कि कहीं बीमारी न फैल जाए, अतः यदि इसको रोक-टोक समझा भी जाए तो न इसलिए कि लोग हज का फ़रीज़ा न अदा करें बल्कि इसलिए और केवल इसलिए है कि हाजियों के प्राणों की हानि न हो।''[1]

मौलाना अबू सईद मुहम्मद हुसैन बटालवी (1840-1920 ई.)

ये भी अहले-हदीस विचारधारा के बड़े आलिम थे, उन्होंने एक पुस्तिका 'अल-इक़तिसादु फ़ी मसाइलिल जिहाद' भी लिखी थी, इसमें उन्होंने भारत के दारुल-हर्ब होने से इंकार किया है:-

> ''जिस नगर या देश में मुसलमानों को धार्मिक कर्त्तव्य अदा करने की स्वतंत्रता प्राप्त हो वह शहर या देश दारुल-हर्ब नहीं कहलाता, फिर यदि वह वास्तव में मुसलमानों का देश या शहर हो, ग़ैर क़ौमों ने उस पर नियंत्रण

(1) नफ़्सतुल मस्दूर और हिन्दुस्तान की शरई हैसियत, पृ. 51-52

पा लिया हो।(जैसा कि भारत है) तो जब तक इसमें इस्लामी कर्तव्यों के पालन की स्वतंत्रता रहे वह पुरानी स्थिति के अनुसार दारुल इस्लाम कहलाता है, और यदि वह बहुत समय से ग़ैर क़ौम के नियंत्रण में हो, मुसलमानों को इन्ही लोगों द्वारा धार्मिक कर्तव्यों का पालन करने की स्वतंत्रता मिली हो तो वह भी दारुल इस्लाम और कम से कम 'दारुस्सुल्म वलअमान' (शांति क्षेत्र) का नाम देने के योग्य है।''(1)

मौलाना अहमद रज़ा ख़ाँ बरैलवी (1856-1921 ई.)

बरैलवी विचारधारा के बड़े आलिम मौलाना अहमद रज़ा ख़ाँ बरैलवी ने एक फ़तवा दिया था। यह फ़तवा 'फ़तावा रज़विया' की 14वीं जिल्द में शामिल है, इसी प्रकार से एक पुस्तिका भी 'एलामुल आलाम बिअन्ना हिन्दुस्तान दारुल इस्लाम' के नाम से प्रकाशित हुआ। आश्चर्य की बात यह है कि भारत की शरई हैसियत पर अब तक अनेकों पुस्तकें और पुस्तिकाएं प्रकाशित हुई हैं, उनमें मौलाना सईद अहमद अकबराबादी की पुस्तक 'नफ़्सतुल मस्दूर और हिन्दुस्तान की शरई हैसियत', इसी तरह मौलाना हबीबुर्रहमान आज़मी की पुस्तक 'दारुल-हर्ब और दारुल इस्लाम'। मौलाना अहमद रज़ा ख़ाँ के फ़तवे का उल्लेख न मौलाना सईद अहमद अकबराबादी ने किया है और न 'दारुल-हर्ब और दारुल इस्लाम' में कहीं उल्लेख है। उन्होंने अपने फ़तवे में तर्क एवं प्रमाण द्वारा साबित किया है कि भारत दारुल इस्लाम है। स्पष्ट रहे कि इस फ़तवे में मौलाना ने दारुल-हर्ब और दारुल इस्लाम पर विद्वानों के विचार नक़ल किए हैं, इस को यहां छोड़ कर केवल उनकी राय प्रस्तुत की जा रही है:-

(1) नफ़्सतुल मस्दूर और हिन्दुस्तान की शरई हैसियत, पृ. 50

''अक़ूल व बिलल्लाहित्तौफ़ीक़ (मैं कहता हूँ और सामर्थ्य अल्लाह तआला का है) इस पर प्रमाण दो चीज़ें हैं। पहला यह कि इमाम मुहम्मद, जो पंथ के प्रवक्ता हैं, उन का यह कहना कि वह क्षेत्र इमाम साहब के अनुसार तीन शर्तों से दारुल-हर्ब बनता है। उनमें से एक यह कि वहां विधर्मियों के आदेश बिना संकोच जारी किए जाएं और कोई इस्लामी आदेश लागू न हो, तो ध्यान दो कि उन्होंने अंतिम वाक्य कैसे अधिक कहा और केवल पहले वाक्य पर पर्याप्त संतोष न किया, यदि इस्लामी विद्वानों के विचार हमारे उल्लिखित बयान से स्पष्ट भी किए जाएं तो केवल इमाम साहब का विचार ही निर्णायक है, तो यही निर्णायक विचार पर्याप्त है। दूसरी चीज़ यह कि यही वह आदरणीय इस्लामी विद्वान हैं जिन्हों ने दारुल-हर्ब के सम्बंध में फ़रमाया कि वह दारुल इस्लाम बन जाता है जब इसका तात्पर्य इस्लामी आदेश हो। (जिस प्रकार से दारुल-हर्ब के लिए विधर्मियों के कुछ आदेश तुमने आशय लिए) अतः जब कुछ इस्लामी आदेशों के साथ तमाम आदेश विधर्मियों के होंगे तो इससे दारुल-हर्ब और दारुल इस्लाम के बीच अंतर समाप्त हो जाएगा, क्योंकि इन दोनों में से हर एक में दोनों प्रकार के आदेश पाए जाएंगे, यद्यपि विधर्मियों के आदेश अतिरिक्त हों तो आवश्यक होगा कि हर एक दारुल-हर्ब और दारुल इस्लाम भी हो क्योंकि दोनों पर हर एक की परिभाषा लागू होगी, यदि तुम यहां यह तात्पर्य लो कि हर क्षेत्र में उसके समस्त आदेश वहां लागू हों और एक दूसरे के आदेश से ख़ाली हों अर्थात दारुल-हर्ब वह है जिसमें समस्त आदेश पूर्ण रूप से विधर्मियों के हों और दारुल इस्लाम वह है जिसमें पूर्ण रूप से इस्लामी आदेश हों, तो इस से यह आवश्यक होगा कि 'दार' की चर्चा हो

रही है वह दानों में संपर्क कहलाएगा, अर्थात वह न दारुल इस्लाम हो न दारुल-हर्ब हो, हालांकि ऐसे 'दार' का मानने वाला कोई भी नहीं, यदि तुम यह तात्पर्य लो कि दूसरा अर्थात दारुल इस्लाम में तो पूर्ण रूप से इस्लामी आदेश हों और दूसरे अर्थात दारुल-हर्ब में पूर्ण रूप से होना आवश्यक नहीं तो इससे विद्वानों का उद्देश्य 'इस्लाम का प्रचार-प्रसार' और उसकी वरीयता नष्ट हो जाएगी जो शरअीत के उद्देश्य के विरुद्ध है, जबकि इस्लामी विद्वानों ने बहुत से आदेश 'अल-इस्लामु यअ़लू वलायूला' (इस्लाम विजयी होता है पराजित नहीं होता) के सिद्धांत पर आधारित लागू किए हैं, इसके अतिरिक्त यह भी आवश्यक होगा कि समस्त दारुल इस्लाम साहिबैन (इमाम अबू यूसुफ़ और इमाम मुहम्मद) के अनुसार दारुल-हर्ब क़रार पाएं जबकि उनमें विधर्मियों के कुछ आदेश पाए जाते हों या अल्लाह तआला द्वारा लागू किए गए आदेश के विरुद्ध वहां आदेश लागू किए जाते हों जैसा कि आज के समय में देखा जा रहा है बल्कि इससे पहले भी ऐसा रहा है, जब से शरीयत के बारे में सुस्ती दिखी और मुसलमान शासकों ने शरई आदेश के लागू करने से मुंह फेर रखा है, और 'ज़िम्मी' (ग़ैर-मुस्लिम) लोगों को समृद्धि मिली है कि शरीअत के विरुद्ध दरिद्रता से निकल कर बड़ा सम्मान पा रहे हैं जिनको मुसलमान शासकों ने उच्च पद और सुरक्षित प्रतिष्ठा प्रदान कर रखी हैं, यहां तक कि वह मुसलमानों पर डींगें मारने लगे हैं। अल्लाह तआला एक कहने वाले पर रहम फ़रमाए जिसका उल्लेख मौलाना शामी ने नक़ल किया है।

(कविता का अनुवाद) मित्रो! ज़माने के कष्ट बहुत हैं, उनमें से अत्यंत कष्टदायी मूर्ख लोगों का शासन है, तो कब ज़माने का नशा समाप्त होगा जबकि देश यहूदी बन कर

विद्वानों का निरादर स्थान बन चुका है।

और जैसा कि कुछ अत्याचारी शासकों ने काफ़िर नेताओं द्वारा जारी गई अनेक कुव्यवस्था को पसंद करते हुए अपने देशों में जारी कर दी। जैसे गवाहों से शपथ, टैक्स, चुंगियां और लोगों की संपत्ति और जानों पर ग़लत तरह के टैक्स लागू कर दिए, यह परेशान करने वाले बुरे मामले मुसलमान देशों में मानने पड़ेंगे। अतः आवश्यक है कि पहले स्थान अर्थात दारुल-हर्ब में पूर्ण रूप से नास्तिकों के आदेश हों और दूसरे अर्थात दारुल इस्लाम में ऐसा न हो जबकि यही मुद्दा है, तो इस से स्पष्ट हो गया कि वह स्थान जिसमें दोनों प्रकार के आदेश कुछ कुफ़्र के और कुछ इस्लाम के पाए जाएं, जैसा कि हमारा यह देश है, साहिबैन (इमाम अबू यूसुफ़ और इमाम मुहम्मद) के मतानुसार भी दारुल-हर्ब न होगा क्योंकि यहां के सभी आदेश कुफ़्र नहीं हैं, तो हमारे कुछ समकालीन विद्वानों का यह विचार कि भारत से दारुल-हर्ब के नकारने का आधार केवल इमाम साहब का पंथ है, इनका भ्रम है कि 'साहिबैन' के मत पर सही नहीं है, उसने लम्बी चर्चा की जबकि इसकी ज़रूरत नहीं थी, सब से कमज़ोर और सब से ख़तरनाक पक्ष वह है जिससे हमारे ज़माने के प्रसिद्ध महानुभाव ग्रस्त हुए हैं कि उन्होंने हमारे इस देश से दारुल-हर्ब के नकारने का आधार दूसरी शर्त अर्थात किसी दारुल-हर्ब से संपर्क न पाए जाने को क़रार दिया है और उन्हों ने संपर्क का अर्थ यह लिया है कि चारों ओर से दारुल-हर्ब में घिरा हुआ हो और किसी ओर से दारुल इस्लाम से न मिला हुआ हो, क्योंकि संपर्क का अर्थ भारत में नहीं पाया जाता इसलिए यह दारुल-हर्ब न होगा क्योंकि भारत पश्चिमी ओर से अफ़ग़ानों के देश पेशावर और काबुल आदि दारुल इस्लाम से मिला हुआ है।

अक़ूलः (मैं कहता हूँ कि) काश वह सीमाओं के अर्थ पर विचार कर लेते, या इस्लामी सीमाओं की निगरानी के गुण को देखते हुए 'रिबात' (सराए) के अर्थ पर ग़ौर कर लेते या यह मालूम कर लेते कि मक्का, शाम, ताइफ़, हुनैन और बनीमुस्तलक़ के क्षेत्र आदि हुज़ूर सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम के समय में दारुल-हर्ब थे, हालाँकि उन सब का दारुल इस्लाम से संपर्क था, या यही समझ लेते कि मुसलमान इमाम जब विधर्मियों के किसी क्षेत्र को फ़तह करके वहां इस्लामी आदेश जारी कर देता तो वह क्षेत्र दारुल इस्लाम बन जाता है जबकि उससे निकट बाक़ी क्षेत्र जो ग़ैर-मुस्लिमों के नियंत्रण में नियमित रूप से अभी तक मौजूद हैं वह पहले की भांति दारुल-हर्ब हैं, या उनको समझ आती कि जो कुछ वह कह रहे हैं यदि सही हो तो फिर दुनिया भर में कोई भी 'दारुल-कुफ़्र' (विधर्मी क्षेत्र) उस समय तक दार अल-हर्ब न कहलाए जब तक उसमें और दारुल इस्लाम में समुद्रों और जंगलों की दूरी न हो, हालाँकि कोई भी दारुल-हर्ब के इस अर्थ को मानने वाला नहीं है, यह इसलिए कि जब आप किसी देश को दारुल-हर्ब कहेंगे तो हम पूछेंगे कि उसके आसपास किन देशों का घेराव है। यदि कोई भी इनमें से दारुल इस्लाम हो तो पहला देश (दारुल-हर्ब) भी दारुल इस्लाम क़रार पाए क्योंकि वह संपर्क जो दारुल-हर्ब का मानक है, वह न पाया गया, अन्यथा यदि आसपास इस्लामी देश न हो तो फिर हम उस से मिलने वाले अन्य देश के बारे में मालूम करेंगे, यहां तक कि मिलते-मिलाते कोई दारुल इस्लाम पाया गया तो यह बीच वाले सभी देश दारुल इस्लाम हो जाएंगे क्योंकि इन देशों का आपस में एक दूसरे से संपर्क हो गया है, या फिर यह स्वीकार किया जाए कि इस दिशा में धरती पर कोई

भी दारुल इस्लाम नहीं।

सारांश यह है कि दारुल-हर्ब के इस निश्चित काल वाले विचार की ग़लती स्पष्ट है जिसमें कुछ भी छिपा नहीं है। इसका आधार यह ग़लत विचार है कि इमाम साहब के अनुसार किसी दारुल इस्लाम के दारुल-हर्ब बनने के लिए यह शर्त है कि चारों दिशाओं से वह देश दारुल इस्लाम में घिरा हुआ न हो क्योंकि अगर वह घिरा हुआ हो तो उस दारुल-हर्ब में विधर्मियों का नियंत्रण रुका रहेगा तो इस प्रकार से वह दारुल इस्लाम से ख़ारिज न रहेगा, इसलिए उन्होंने मान लिया कि किसी देश के हर्बी (दारुल-हबी) होने के लिए आवश्यक है कि वह चारों दिशाओं से हर्बी देशों में घिरा हुआ हो, यह अनुमान बहुत ही ग़लत है जो आम लोगों के लिए भी छिपा नहीं।''[(1)]

उपरोक्त समस्त फ़तवों की आलोक में यह बात पूरे विश्वास से कही जा सकती है कि उलमा ने भारत को दारुल इस्लाम उस समय घोषित कर दिया था जब भारत स्वतंत्र नहीं था, बल्कि देश पर अंग्रेजों का नियंत्रण था।

दूसरी बात यह है कि उलमा के यहां 'दार' (स्थान) का जो विभाजन किया गया है, उनकी परिभाषाओं के वर्णन में अनेकों विराधाभास हैं। इसी तरह यह बात कहना चाहूँगा कि जो परिभाषाएं उलमा ने 'दार' के संदर्भ में बयान की हैं वह उलमा की अपनी परिभाषाएं हैं, क़ुरआन और हदीस से इस प्रकार का विभाजन नहीं होता है। रहा भारत का प्रश्न तो यहां केवल इतना कहा जा सकता है कि भारत को उस समय मुसलमान दारुल इस्लाम मानते थे, जब यहां फ़िरंगियों का नियंत्रण था और देश स्वतंत्र नहीं हुआ था।

(1) देखिए पूरा विवरण, अहमद रज़ा ख़ाँ, एलामुल आलाम बिअन्ना हिन्दुस्तान दारुल इस्लाम, पृ. 1-10

स्वतंत्र भारत की शरई हैसियत

इस विषय में दूसरी चर्चा उस समय शुरू हुई जब भारत स्वतंत्र हो गया, स्वतंत्रता और भारत के विभाजन के बाद देश में नफ़रत, हिंसा, भेदभाव एवं शत्रुता में वृद्धि हुई। मुसलमानों और उन के धर्म ही नहीं बल्कि कुछ संगठनों ने मुसलमानों की देशभक्ति तक को भ्रमित बना दिया। इसी तरह कुछ कट्टरवादी तत्वों ने मुसलमानों पर यह आरोप भी लगाया कि मुसलमानों का एक वर्ग भारत को दारुल-हर्ब मानता है। कई बार यह आग्रह भी किया गया है कि भारत को मुसलमान दारुल अम्न घोषित कर दें। पिछली पंक्तियों में जिन सिद्धांतों, विचारों और फ़तवों की चर्चा की गई है, उनमें सभी विद्वानों की राय यह है कि भारत दारुल-हर्ब नहीं बल्कि दारुल इस्लाम और दारुल अम्न है, यद्यपि एक दो लोग जैसे शाह अब्दुल अज़ीज़ मुहद्दिस देहलवी आदि ने कहा है। फिर भी शाह अब्दुल अज़ीज़ के फ़तवे के सम्बंध में मौलाना सईद अहमद अकबराबादी ने लिखा हैः-

> ''भारत जो धार्मिक विद्वानों की परिभाषा के अनुसार छः सौ वर्षों से दारुल इस्लाम बना चला आ रहा था , इन स्थितियों ने शाह साहब जैसे विचारक को यह सोचने पर विवश कर दिया कि वह अब भी दारुल इस्लाम है या नहीं? क्योंकि हमारी नज़र से कहीं नहीं गुज़रा कि शाह साहब ने देश को दारुल-हर्ब कहा हो, परन्तु वह देश के जो चित्र खींचते और इसकी जो स्थिति बयान करते हैं वह कदापि किसी दारुल इस्लाम के नहीं हो सकते।''[1]

रहा प्रश्न मौलाना गंगोही का, तो यह बता दूं कि उनके सम्बंध

(1) अहमद रज़ा ख़ाँ, एलामुल आलाम बिअन्ना हिन्दुस्तान दारुल इस्लाम, पृ. 36-37

में भारत की शरई हैसियत के संदर्भ में तीन कथन पाए जाते हैंः-

(क) भारत दारुल-हर्ब है।
(ख) भारत के सम्बंध में मुझे पूर्ण शोध प्राप्त नहीं है।
(ग) भारत दारुल-अम्न है।

इस के साथ मौलाना सईद अकबराबादी ने लिखा है कि जो उन से सम्बंधित प्रकाशित फ़तवा है उसके फुटनोट के अतिरिक्त भी एक इबारत लिखी है, जिसमें भारत को दारुल अम्न कहा गया हैः-

> ''यहां यह बात स्पष्ट कर देना आवश्यक है कि आजकल भारत इस्लामी रियास्तों को छोड़कर, चाहे हज़रत मुजीब (मौलाना गंगोही), हज़रत शाह अब्दुल अज़ीज़ और कुछ अन्य विद्वानों की परिभाषा के अनुसार दारुल-हर्ब है, परन्तु घटनाओं से प्रतीत होता है कि यह दारुल अम्न है।''[2]

इसके अतिरिक्त मौलाना सईद अहमद अकबराबादी ने मौलाना गंगोही के कथन का विश्लेषण करते हुए लिखा हैः-

> ''हज़रत शाह वलीउल्लाह के समय से लेकर उन्नीसवीं शताब्दी के अंतिम चौथाई वर्षों की स्थिति की जो बहुत अलग और सरसरी समीक्षा की है उससे यह स्पष्ट है कि उस पूरी अवधि में देश की स्थितियां सामान्य नहीं रहीं बल्कि परिवर्तनशील रही हैं और जैसे-जैसे परिवर्तन होता रहा है, समस्त विद्वानों का इस देश से सम्बंधित शरई दृष्टिकोण भी बदलता रहा है, इस आधार पर मौलाना गंगोही से यदि इस सिलसिले में तीन कथन साबित हैं तो यह आश्चर्य की बात नहीं है बल्कि यह स्थितियों के परिवर्तन का प्रभाव है, इसलिए हम यह समझते हैं कि

(1) अहमद रज़ा ख़ाँ, एलामुल आलाम बिअन्ना हिन्दुस्तान दारुल इस्लाम, पृ. 35

मौलाना ने पहला फ़तवा फ़ारसी भाषा में (मुफ़्ती मुहम्मद शफी साहब द्वारा प्रकाशित) या तो 1857 के स्वतंत्रता संग्राम से पहले का है या उसके तुरंत बाद का है जबकि पकड़ धकड़ बड़े पैमाने पर जारी थी और इधर मुजाहिदीन भी सक्रिय थे, इसके बाद जब थोड़ा बहुत स्थितियों में सुधार हुआ, परन्तु स्थिति पूर्ण रूप से स्पष्ट नहीं हुई थी, तो मौलाना को अब पहली राय पर ज़िद तो नहीं रही, परन्तु साथ ही खुलकर दारुल-हर्ब होने को नकार नहीं सके, फिर जब स्थितियां और अधिक सुधरीं, शांति व्यवस्था पूर्ण रूप से बहाल हो गई और धार्मिक कर्तव्य और दिनचर्या बिना भय के अदा होने लगे तो अब हज़रत गंगोही ने इसको दारुल अम्न ही घोषित कर दिया।''[1]

इस संदर्भ में यह बात निकल कर सामने आती है कि भारत को दारुल-हर्ब होने का फ़तवा कभी भी नहीं दिया गया। हाँ, यदि किसी ने इस प्रकार का फ़तवा दिया भी है तो वह उस समय की स्थितियों के आधार पर दिया होगा, अब प्रश्न यह पैदा होता है कि देश अब स्वतंत्र है, इसका अपना संविधान और कानून है, जो भारत में रहने वाले सभी नागरिकों के अधिकारों की सुरक्षा करता है, तो ऐसी स्थिति में हमारे देश की शरई हैसियत क्या है? इसी तरह हमारे कुछ देशबंधु भी यह सोचते होंगे कि मुसलमान भारत को शरीअत के अनुसार क्या मानते हैं?

मौलाना सईद अहमद अकबराबादी (1908-1985 ई.)

यह बात आ चुकी है कि मौलाना ने भारत की शरई हैसियत के सम्बंध में एक पुस्तक लिखी है, इस पुस्तक में उन्होंने दारुल इस्लाम और दारुल-हर्ब की परिभाषा और इसका अर्थ बड़े विस्तार से बताया

(1) अहमद रज़ा ख़ाँ, एलामुल आलाम बिअन्ना हिन्दुस्तान दारुल इस्लाम, पृ. 43

है। इसके बाद उन्होंने भारत के सम्बंध में जो विचार प्रसतुत किया है उसको आगे प्रस्तुत किया जा रहा है:-

''उलमा ने दारुल-हर्ब की परिभाषा के सिलसिले में जो कुछ कहा है और फिर भारत में संवैधानिक रूप से मुसलमानों को जो स्वतंत्रता प्राप्त है, उन सब को देखा जाए तो निम्नलिखित संशोधन किए गए हैं:-

1. भारत चूँकि एक धर्मनिरपेक्ष देश है इसलिए यहां किसी धर्म या किसी धार्मिक वर्ग का शासन नहीं है, इस आधार पर विद्वानों की परिभाषा में 'गलबा-ए-कुफ़्र' (विधर्मियों का वर्चस्व) साबित नहीं होता।
2. नागरिक सरकार की नज़र में समान होने के कारण मुसलमान सरकार में भागीदार हैं।
3. धार्मिक स्वतंत्रता की धारा के अंतर्गत मुसलमानों को हर प्रकार की धार्मिक स्वतंत्रता प्राप्त है।
4. मुसलमानों को कारोबार, बोलने और लिखने की स्वतंत्रता भी प्राप्त है
5. भारतीय संघ के राजनयिक सम्बंध सभी इस्लामी देशों से हैं। इसके अतिरिक्त मैत्री सम्बंध भी हैं, किसी से अधिक तो किसी से कम।
6. भारतीय संघ की उत्तर-पश्चिमी सीमा मुस्लिम देशों से निकट है, लाहौर से हो कर मोक्को तक यह श्रृंखला चली गई है।''

फिर आगे लिखते हैं:-

''उपरोक्त संशोधन के आलोक में यह पूर्ण रूप से सिद्ध होता है कि दारुल-हर्ब होने की जो शर्तें हैं और जो एक शब्द 'इस्तीला' (वर्चस्व) मैं एकत्रित हो गए हैं (जैसा कि

हम बयान कर चुके हैं) उनमें से क्योंकि कोई एक शर्त नहीं पाई जाती, इसलिए भारत कदापि दारुल-हर्ब नहीं है, और न इस जैसा कोई अन्य धर्मनिरपेक्ष देश जिसमें ग़ैर मुस्लिमों की बहुलता हो, दारुल-हर्ब हो सकता है।''

इसके बाद पत्रिका 'अर्रहीम' हैदराबाद (पश्चिमी पाकिस्तान) के संदर्भ से डॉ. सग़ीर मासूमी का उद्धरण नक़ल करते हैंः-

''दारुल-हर्ब की जो परिभाषा बयान की गई है, अथवा आरंभिक युग में दारुल-हर्ब व दारुल इस्लाम के जो सम्बंध थे और जो युद्ध का परिणाम निकलता था, उन सब को देखने से स्पष्ट हो जाता है कि आजकल की सल्तनतों और रियास्तों में जहां कुशासन नहीं बल्कि एक विशेष प्रकार की व्यवस्था स्थापित है और मुसलमान न केवल शांति से रहते हैं बल्कि अपनी संख्या के अनुसार राजनीतिक मामलों में भी भाग लेते हैं, दारुल-हर्ब क़रार नहीं दिया जा सकता है।''(1)

इस प्रकार से मौलाना ने एक और उद्धरण प्रोफ़ेसर मुहम्मद शरीफ़ का लिखा हैः-

''भारत का संविधान यद्यपि धर्मनिरपेक्ष है परन्तु इसमें आस्था, कार्य और धर्म की जो स्वतंत्रता दी गई है वह पूर्ण रूप से वही है जो इस्लाम देता है, इस आधर पर शब्दों का अंतर है, अन्यथा पाकिस्तान की इस्लामी रियासत और भारत, ऑस्ट्रेलिया और अमरीका का सेक्यूलर स्टेट, यह सब एक ही हैं।''(2)

(1) अहमद रज़ा ख़ाँ, एलामुल आलाम बिअन्ना हिन्दुस्तान दारुल इस्लाम, पृ. 71-72
(2) उपरोक्त संदर्भ, पृ. 73

इसी तरह मौलाना ने यह भी लिखा है कि भारत न दारुल इस्लाम है, न दारुल-हर्ब और न 'दारुल अम्न वलमुआहिदा' (शांति समझौते का क्षेत्र) है, बल्कि यह एक स्वतंत्र धर्मनिरपेक्ष देश है, और यह सब का है जो भारतीय नागरिकता रखते हैं।

मौलाना ख़ालिद सैफ़ुल्लाह रहमानी ने भारत की शरई हैसियत के सम्बंधत में बहुत ही तार्किक और ठोस चर्चा की है, रहमानी साहब लिखते हैंः-

''वर्तमान समय में जो ग़ैर-मुस्लिम देश हैं, उनमें कुछ तो वह हैं जो इस्लाम या पर्णतः धर्म के विरोधी हैं, जहां न धार्मिक पहचान के साथ मुसलमान जीवित रह सकते हैं और न इस्लाम का उपदेश दे सकते हैं, जैसे साम्यवादी ब्लॉक के देश या बुलग़ारिया आदि। दूसरे प्रकार के वह देश हैं जहां पश्चिम जैसा लोकतंत्र स्थापित है, जिनमें या तो सरकार का कोई धर्म नहीं होता और सभी वर्ग अपने-अपने धर्म पर चलने में स्वतंत्र होते हैं, जैसे स्वयं हमारा देश भारत है, या सरकार का एक धर्म होता है, परन्तु अन्य धार्मिक अल्पसंख्यक भी अपने धार्मिक मामलों में स्वतंत्र होते हैं, और उनको अपने धर्म के प्रचार-प्रसार की अनुमति होती है, जैसे अमरीका, ब्रिटेन आदि। एक-आध देश ऐसे भी हैं जहां प्राचीन राजशाही बाक़ी है, परन्तु वहां भी धार्मिक अल्पसंख्यकों को धार्मिक अधिकार प्राप्त हैं। मेरे विचार में प्रथम प्रकार के देशों अर्थात साम्यवादी देश 'दारुल-हर्ब' की श्रेणी में हैं। कुछ साम्यवादी देशों में धार्मिक स्वतंत्रता और अभिव्यक्ति आदि के अधिकार में थोड़ी सी नर्मी पैदा की गई है, लेकिन अब भी वह दारुल-हर्ब ही हैं, इसके अतिरिक्त जो देश हैं वह सभी 'दारु अम्न' में गिने

जा सकते हैं, और यह बात है कि विभिन्न देशों में धार्मिक अधिकार के मामले में थोड़ा सा अंतर भी पाया जाता हैं भारत उन देशों में है जिसके 'दारुल अम्न' होने में कोई संदेह नहीं, लोकतांत्रिक व्यवस्था के कारण मुसलमान इस देश के प्रशासन में भागीदार हैं। इबादत और आस्था आदि की स्वतंत्रता के मामले में उनको वही अधिकार प्राप्त हैं जो बहुसंख्यक वर्ग को प्राप्त हैं। धार्मिक प्रचार-प्रसार की अनुमति बहुत से मुस्लिम देशों से अधिक यहां है, पर्सनल लॉ जितने उनके सुरक्षित हैं बहुसंख्यक वर्ग के भी नहीं हैं। सरकार का अपना कोई धर्म नहीं है। रहा सवाल सांप्रदायिक दंगे और उनमें कुछ वर्गों की ओर से अत्याचार का पाया जाना जो देश के संविधान के अनुसार एक असंवैधानिक कार्य है और जुर्म है, यह किसी देश के 'दारुल अम्न' होने के विपरीत नहीं है।''(1)

इसी तरह एक फ़तवा जामिआ क़ासमिया मदरसा शाही के उस्ताद मुफ़्ती सलमान मंसूरपुरी का मिलता है, यह फ़तवा उनकी प्रसिद्ध पुस्तक 'किताबुन्नवाज़िल' में प्रकाशित हुआ है, उन्होंने भी भारत को दारुल अम्न और दारुल जम्हूरिया क़रार दिया है। नीचे फ़तवा प्रस्तुत किया जा रहा हैः'

''अल-जवाबु वबिल्ला हित्तौफ़ीक़ (उत्तर अल्लाह के सामर्थ्य से), शरीयत में दारुल इस्लाम और दारुल-हर्ब के आदेश बिल्कुल अलग हैं, और विद्वानों ने उनके सम्बंध में शर्तें भी अलग-अलग ज़िक्र फ़रमाई हैं। पहले दौर में

(1) मुजाहिदुल इस्लाम क़ासमी, मुजल्ला फ़िक़ह इस्लामी, इस्लामिक फ़िक़ह अकादमी इण्डिया, पृ. 232-233

सामान्यतः इन शर्तों का निर्धारण किसी एक प्रकार के 'दार' (स्थान) पर आसानी से हो सकता था, इसीलिए किसी जगह को दारुल इस्लाम या दारुल-हर्ब क़रार देने में अधिक कठिनाई नहीं आती थी, परन्तु अब नई वैश्विक व्यवस्था देशों की सीमाओं का निर्धारण और देश में बसने वाले नागरिकों के आपसी समझौते और संविधान इस प्रकार के बन गए हैं कि उन जगहों पर अंतिम रूप से दारुल-हर्ब या दारुल इस्लाम होने का आदेश लगाना बहुत कठिन है, क्योंकि ऐसी जगहों पर न तो मुसलमानों को पूर्ण रूप से उच्च सत्ता प्राप्त होती है, और न ही उनकी धार्मिक स्वतंत्रता में संवैधानिक रूप से कोई हस्तक्षेप होता है, ऐसे देशों में हमारा देश भारत भी शामिल है, इसमें चाहे सरकारी स्तर पर इस्लामी क़ानून जारी नहीं, लेकिन दूसरी तरफ़ संवैधानिक रूप से मुसलमानों को भी वही नागरिक अधिकार प्राप्त हैं जो ग़ैर-मुस्लिमों को हैं, इसी संविधान के आधार पर मुसलमान अपने अधिकार की मांग करते रहते हैं और देश की अदालतें उचित शिकायतों को सुनकर उनका निवारण करने का प्रयास करती हैं, इसलिए भारत को दारुल-हर्ब क़रार देकर उस छूट से फ़ायदा उठाने का प्रयास करना जो विद्वानों ने दारुल-हर्ब में रहने वालों को दी है, ईमानदारी और न्याय के विरुद्ध है, इसीलिए बड़े मुफ़्तियों ने भारत को दारुल अम्न या 'दारुल जमहूरिया' का नाम दिया है, और यहां जुमा और दोनों ईदों की नमाज़ें अदा करने, शरई आदेश लागू करने के अधिकार तथा शरई अदालतों को स्थापित करने अथवा राष्ट्रीय एवं अंतर्राष्ट्रीय मुद्दों के समाधान के लिए संगठन बनाने की अनुमति दी है,

जब कि आर्थिक मामले में वह सभी प्रतिबंध बरक़रार रखे हैं जो दारुल इस्लाम में रहने वाले मुस्लिम नागरिकों पर होते हैं, स्पष्ट है कि सावधानी वाला पक्ष यही है, इसको अनदेखा नहीं किया सकता।''[1]

وقد اتفقت الامة على ان الخروج من الخلاف مستحب قطعًا، لان خلاف الامة لا سيما خلاف جمهورهم يورث شبهة فى الجواز، وقال النبى صلى اللّٰہ عليه وسلم: "الحلال بين والحرام بين، وبينهما مشبهات، فمن اتقى الشبهات فقد استبرا لدينه" لا سيما وكون الهند دار الحرب عند الإمام محل نظر بعد، فالشبهة إذا قوية غير ضعيفة والتوقى عنه واجب من غير ريبة۔
(إعلاء السنن/باب الربا، ۶۲۳ے، ۱۴، إدارة القرآن كراچى)

دار الحرب على قول ابى حنيفة لا تصير إلا بثلاثة اشياء: احدها ان تكون متصلة بدار الحرب ليس بينها وبين دار الحرب موضع فى يد اهل الإسلام، والثانى ان يجرى فيها اهل الحرب احكامهم، والثالث ان لا يبقى فيه مسلم او ذمى آمن بالامان الاول۔ (فتاوىٰ خانية على هامش الهندية، كتاب السير باب الردة وأحكام أهلها، فصل فيما يبطله الارتداد ۴۸۵، ۳،زكريا)

ودار الإسلام لا تصير دار الحرب إلا بإجراء احكام الشرك فيها، وان تكون متصلة بدار الحرب لا يكون بينهما وبين دار الحرب مصر آخر للمسلمين، ولا يبقى فيها مسلم او ذمى آمنا بالامان الاول، فما لم توجد هٰذه الشرائط لا تصير دار الحرب۔
(خزانة المفتيين بحواله فتاوىٰ محموديه: ۲۱،ص ۳۵۵، ڈابھیل)

(1) मुस्तफ़ाद, फ़तावा महमूदिया, जिल्द 61, पृ. 552, डाभेल

فى سير الأصل لأبى اليسر: أن دار الإسلام لا يصير دار الحرب ما لم يبطل جميع ما صارت به دار الإسلام؛ لأن الحكم إذا ثبت لعلته فما بقى شىء من العلة، يبقى بتمامه، وفى المنشور دار الإسلام بإجراء أحكام الإسلام، فما بقى علقةٌ من علائق الإسلام يترجح بجانب الإسلام۔ (مجموعة الفتاوىٰ/كتاب الصلاة: ۱، ۲۳۸ كراچى)

وذكر الحلوانى إنما تصير دار الحرب بإجراء احكام الكفر، وان لا يحكم فيها بحكم من احكام الإسلام، وان يتصل بدار الحرب وان لا يبقى فيها مسلم ولا ذمى آمنًا بالامان الاول، فإذا وجدت الشرائط كلها صارت دار الحرب، وعند تعارض الدلائل والشرائط يبقى ما كان على ما كان او يترجح جانب الإسلام احتياطا۔ وظاهر أنه إذا جرت أحكام المسلمين وأحكام أهل الشرك لا تكون دار الحرب۔ (فتاوىٰ البزازية على هامش الهندية، كتاب السير/فصل فى الحظر والإباحة، ۶، ۳۱۲ ،زكريا) فقط واللّٰہ تعالىٰ اعلم")

इसके अतिरिक्त मौलाना हबीबुर्रहमान आज़मी ने अपनी पुस्तक 'दारुल इस्लाम और दारुल-हर्ब' में दारुल-हर्ब और दारुल इस्लाम पर चर्चा करने के बाद भारत की शरई हैसियत के सम्बंध में लिखा है:-

''जिन शहरों पर पुनः ग़ैर-मुस्लिमों का नियंत्रण हो गया, उनमें यदि इस्लामी आदेश (अज़ान की घोषणा, जुमा और दोनों ईदों की नमाज़ें, इस्लामी तरीक़े से निकाह व तलाक़ आदि) जारी हैं और उनका किसी दारुल-हर्ब से सीमा संपर्क नहीं है, और इसमें मुसलमानों को नए शांति समझौते की आवश्यकतता नहीं पड़ी, बल्कि वह पिछले शांति

समझौते के साथ रह रहे हैं तो वह आदेशानुसार दारुल इस्लाम हैं जैसे भारत।''(1)

संयुक्त समाज और शरई आदेश

यहां यह बताना भी आवश्यक प्रतीत होता है कि भारत बहुलवाद और विविधता का वाहक है, यहां कई धर्म, भाषाएं, संस्कृतियां और रीति-रिवाज हैं, जो भारत की महानता और उसके वैभव को उजागर करते हैं, इसलिए अब स्वाभाविक रूप से यह प्रश्न उठता है कि भारत के मुसलमानों की क्या ज़िम्मेदारी है? और इस्लाम धर्म उनसे क्या मांग करता है, क्योंकि आम तौर पर लोग सोचते हैं कि मुसलमान हिंसक या आक्रामक होते हैं। इसी तरह, उनके धर्म में अन्य धर्मों और रीति-रिवाजों या अन्य विचारों और सिद्धांतों को महत्व नहीं दिया जाता है और धर्म को लेकर बहुत ही पक्षपाती दृष्टिकोण अपनाया गया है, ऐसी बातें हम आए दिन सुनते रहते हैं। इसलिए उपरोक्त सभी संदेहों को दूर करने के लिए और बहुलतावादी या सांझी संस्कृति में इस्लाम मुसलमानों से क्या माँग करता है, इसके लिए निम्नलिखित पंक्तियों को खुले मन के साथ पढ़ना आवश्यक है।

बहुलवादी समाज में मानवता का सम्मान

पवित्र क़ुरआन में अन्यायपूर्ण हत्या की कड़ी निंदा की गई है। एक निर्दोष की हत्या पूरी मानवा की हत्या करने के समान है और एक निर्दोष व्यक्ति को मारे जाने से बचाना सारी मानवता की रक्षा के समान घोषित किया गया है। यह ख़ुदा का फ़रमान हैः-

مَنْ قَتَلَ نَفْساً بِغَيْرِ نَفْسٍ اَوْ فَسَادٍ فِي الْاَرْضِ فَكَاَنَّمَا قَتَلَ
النَّاسَ جَمِيْعاً وَمَنْ اَحْيَاهَا فَكَاَنَّمَا اَحْيَا النَّاسَ جَمِيْعاً۔

(2) मौलाना, हबीबुर्रहमान आज़मी, दारुल इस्लाम और दारुल-हर्ब, मर्कज़े तहक़ीक़ात व ख़िदमाते इल्मिया, मऊ, 2002, पृ. 22-23

''जिसने अकारण या देश में उपद्रव के बिना किसी प्राणी की हत्या की तो गोया उसने समस्त मानव जाति की हत्या कर दी और जिसने एक प्राणी को बचाया गोया उसने समस्त मानव जाति की रक्षा की।''(1)

यहां न केवल एक मुसलमान की अवैध हत्या पर प्रतिबंध है, बल्कि सभी नागरिकों की हत्या पर भी प्रतिबंध है। यदि किसी व्यक्ति को अन्यायपूर्वक मार दिया जाता है, तो इस्लामी शरीयत ने मृतक के माता-पिता को क़ानूनी कार्यवाही का अधिकार दिया है, और यह इस्लामी सरकार की ज़िम्मेदारी है कि हत्यारे को सज़ा दे। मौलाना मौदूदी अपनी तफ़सीर 'तफ़हीमुल-क़ुरआन' में आयत के अंतर्गत लिखते हैंः-

''दुनिया में मानव जीवन का जीवित रहना इस पर निर्भर है कि हर इंसान के दिल में दूसरे इंसान के जीवन के प्रति सम्मान और दूसरों के जीवन के अस्तित्व और सुरक्षा में सहायक होने की भावना रखता हो। वह केवल एक ही व्यक्ति पर अत्याचार नहीं करता बल्कि यह भी साबित करता है कि उसका दिल मानव जीवन और करुणा के प्रति सम्मान से रहित है, इसलिए वह पूरी मानवता का दुश्मन है क्योंकि उसमें एक अवगुण पाया जाता है जो यदि सभी मनुष्यों में मिल जाए तो सारी प्रजातियाँ नष्ट हो जाएंगी, इसके विपरीत जो व्यक्ति मानव जीवन की स्थापना में सहायता करता है, वह वास्तव में मानवता का समर्थक है क्योंकि वह गुण उसमें पाया जाता है जिस पर मानवता का अस्तित्व निर्भर करता है।''(2)

(1) सूरह अल-मायदा, आयत 32

(2) सैयद अबुल आला मौदूदी, तफ़हीमुल क़ुरआन, मतबा मर्कज़ी जमाअत-ए-इस्लामी हिंद, नई दिल्ली, प्रकाशन 1970, जिल्द 1, पृ. 465। विचारक कहते हैं यह मूल आदेश का बयान नहीं है जो क़िसास (ख़ून का बदला) के बारे में यहूदियों को दिया गया है। बल्कि उसकी दलील और उसकी युक्ति और श्रेष्ठता बयान हुई है, ''जान के बदले जान'' का बाईबल में भी वर्णन आया है। तदब्बुरे क़ुरआन, जिल्द2, पृ. 503

इसी तरह पवित्र क़ुरआन में इरशाद हैः-

وَلَا تَقْتُلُوا النَّفْسَ الَّتِي حَرَّمَ اللَّهُ إِلَّا بِالْحَقِّ وَمَن قُتِلَ مَظْلُومًا
فَقَدْ جَعَلْنَا لِوَلِيِّهِ سُلْطَانًا فَلَا يُسْرِف فِّي الْقَتْلِ إِنَّهُ كَانَ مَنصُورًا۔

''निर्दोष की हत्या न करो, जिसे अल्लाह ने हराम किया है, परन्तु हक़ के साथ और जिस व्यक्ति की अत्याचार से हत्या की गई हो उसके संरक्षक को हमने क़िसास (बदला) की मांग का अधिकार दिया है, इसलिए चाहिए कि वह हत्या में सीमा से आगे न बढ़े, उसकी सहायता की जाएगी।''(1)

इसमें यह शर्त नहीं कि मृतक मुसलमान हो बल्कि ग़ैर-मुस्लिम (मृतक) के वारिसों को भी क़िसास (बदला) लेने का अधिकार प्राप्त हैं, इसके सम्बंध में पवित्र क़ुरआन में आया हैः-

يَا أَيُّهَا الَّذِينَ آمَنُوا كُتِبَ عَلَيْكُمُ الْقِصَاصُ فِي الْقَتْلَى۔

''ऐ ईमान वालो! फ़र्ज़ हुआ तुम पर क़िसास बराबरी करना मृतकों में।''(2)

क़िसास (बदला) लेने में मुस्लिम, ग़ैर-मुस्लिम की कोई अंतर नहीं। अल्लामा क़ुरतबी लिखते हैं, क़िसास साधारण बदले का पर्यायवाची नहीं कि हर व्यक्ति दूसरे व्यक्ति से लेना शुरू कर दे बल्कि फ़ौजदारी क़ानून के अंतर्गत सज़ा, संगठित, सभ्य और अनुशासित व्यवस्था का नाम है। यह लोगों का संवैधानिक और सामूहिक अधिकार है और इसको लागू करने की ज़िम्मेदारी सरकार या प्रशासन पर की होती है।''(3)

---

(1) सूरह बनी इस्राईल, आयत 33 (2) सूरह अलबक़रह, आयत 178

(3) अबू अब्दुल्लाह मुहम्मद इब्ने अहमद अल-अंसारी अलक़ुरतबी, अल-जामिउल अहकाम उल-क़ुरआन, मतबा दारे इहयाउत्तुरास अरबी, बैरूत लेबनान, प्रकाशन वर्ष, 1416 हिजरी/1995 ईस्वी, जिल्द1, पृ. 245

अबू बकर जस्सास ने बड़ी अच्छी बात कही हैः-

''ज़िम्मी (ग़ैर-मुस्लिम) मृतक के बदले में हत्यारे मुसलमान का क़त्ल अनिवार्य है। क्योंकि (आम अधिकारों में) एक ज़िम्मी और एक मुसलमान के बीच कोई अंतर नहीं है और क़िसास के अनिवार्य होने का आदेश सार्वजनिक है। इस पवित्र आयत के अनुसार (साधारण मामलों में) एक काफ़िर और एक मुसलमान के बीच कोई अंतर नहीं हैं, क़िसास का आदेश दोनों पर जारी होगा और इस पर अल्लाह तआला का यह आदेश दलील है कि जो मज़लूम क़त्ल हुआ हो हमने उसके संरक्षक को दावे का अधिकार दिया है।''(1)

बहुलवादी समाज में मान-सम्मान की सुरक्षा

पवित्र क़ुरआन में किसी पराई स्त्री से शारिरिक सम्बंध को हराम (वर्जित) बताया गया है। इसे अनैतिक और अवैध बताया गया है। मानव जाति को इस घिनौने कृत्य के निकट फटकने से भी मना कियागया है और अवहेलना की स्थिति में स्त्री-पुरुष दोनों के लिए सज़ा का प्रावधान है, जिसे शरीअत की शब्दावली में 'हद' कहा जाता है। (वह सज़ा जो क़ुरआन में स्पष्ट है) अल्लाह तआला फ़रमाते हैंः-

الزَّانِيَةُ وَالزَّانِي فَاجْلِدُوا كُلَّ وَاحِدٍ مِّنْهُمَا مِائَةَ جَلْدَةٍ۔

'व्यभिचार करने वाली स्त्री और व्यभिचार करने वाले पुरुष, तो मारो हर एक को दोनों में से सौ-सौ कोड़े।''(2)

पवित्र क़ुरआन में व्यभिचार का निषेध अथवा करने की स्थिति में सज़ा का आदेश इस बात का प्रमाण है कि अल्लाह तआला मानव

---

(1) जस्सास, इमाम हुज्जतुल इस्लाम अबी बकर अहमद बिन अली अलराज़ी, अल-जस्सासु अहकामुल क़ुरआन, पब्लिशर्ज़ मिस्र, वर्ष 1347 हिजरी, जिल्द 1, पृ. 155

(1) सूरह अल-नूर, आयत 2

समाज में व्यभिचार और अशलीलता को पूर्ण रूप से रोकना चाहता है। इसमें केवल मुस्लिम ही नहीं बल्कि समाज में शामिल सबके सतीत्व की रक्षा करना है।

इस्लाम किसी को भी इसकी अनुमति नहीं देता कि वह किसी की इज़्ज़त व अस्मत पर हाथ डाले। अवहेलना की स्थिति में उन पर वही 'हद' (सज़) लागू होगी जो किसी मुसलमान स्त्री के अस्मत पर निर्धारित है।

समाज में किसी की पवित्रता पर अनर्गल आरोप लगाना जघन्य अपराध है, जिसके सम्बंध में पवित्र क़ुरआन में आया हैः-

وَالَّذِيْنَ يَرْمُوْنَ الْمُحْصَنَاتِ ثُمَّ لَمْ يَأْتُوا بِأَرْبَعَةِ شُهَدَاء فَاجْلِدُوهُمْ
ثَمَانِيْنَ جَلْدَةً وَلَا تَقْبَلُوا لَهُمْ شَهَادَةً أَبَداً وَأُوْلَئِكَ هُمُ الْفَاسِقُوْنَ-

''और जो लोग आरोप लगाते हैं अस्मत की सुरक्षा करने वालियों पर फिर न लाए चार पुरुष गवाह तो मारो उन्हें अस्सी कोड़े और न मानो उनकी गवाही और वही लोग हैं अवहेलना करने वाले।''[(1)]

इस आयत में पवित्र स्त्री पर व्यभिचार का आरोप लगाकर उसका शरई सबूत अर्थात चार समझदार व्यस्क गवाह होने के लिए मुसलमान होना आवश्यक नहीं, बल्कि वह ग़ैर-मुस्लिम स्त्रीयां भी हो सकती हैं। यदि कोई व्यक्ति किसी ग़ैर-मुस्लिम स्त्री पर आरोप लगाए तो इस पर भी यह 'हद' (सज़ा) लागू होगी। अगर किसी मुसलमान ने ग़ैर-मुस्लिम स्त्री से व्यभिचार किया तो उस पर 'हद' जारी की जाएगी।[(2)]

(2) सूरह उल-नूर, आयत 4
(2) फ़तावा आलमगीरी, किताब अल-हुदूद, बाबुस्सलिस, मतबा रहीमिया देवबंद, प्रकाशन वर्ष अंकित नहीं, जिल्द 2, पृ. 226

बहुलवादी समाज में आर्थिक ज़रूरतों को पूरा करना

समाज में ग़रीब और निर्धन लोगों के लिए आर्थिक सहायता के सम्बंध में क़ुरआन में अल्लाह तआला आदेश देता हैः-

وَفِيْ أَمْوَالِهِمْ حَقٌّ لِّلسَّائِلِ وَالْمَحْرُوْمِ-

''और उनकी सम्पत्ति में मांगने वालों और (न मांगने वाले) वंचितों दोनों का अधिकार है।''[(1)]

अर्थात यह परोपकारी जिस तरह ख़ुदा का अधिकार पहचानने वाले हैं उसी तरह उसके बंदों के अधिकार भी अदा करने वाले हैं, वह अपनी संपत्ति में ख़ुदा का अधिकार नहीं समझते बल्कि भिखारियों और वंचितों का अधिकार भी समझते हैं और इसको उसी तरह अदा करते हैं जिस तरह हक़दारों के अधिकार अदा किए जाते हैं।[(2)]

अर्थात भिखारी, हाथ न फैलाने वाले निर्धन और वंचित लोगों की सहायता मुस्लिम समाज और सरकार की ज़िम्मेदारी क़रार दी गई है। उनका मुसलमान होना शर्त नहीं बल्कि यदि वंचित ग़ैर-मुस्लिम भी हो तो उसकी सहायता करनी चाहिए, सहायता की प्रेरणा में अल्लाह तआला फ़रमाते हैंः-

وَيُطْعِمُوْنَ الطَّعَامَ عَلَى حُبِّهِ مِسْكِيْناً وَيَتِيْماً وَأَسِيْراً-

''और खिलाते हैं खाना उसकी मुहब्बत पर वंचितों को और अनाथों को और क़ैदी को।''[(3)]

समाज में वंचित और अनाथ ज़िम्मी (ग़ैर-मुस्लिम) भी हो सकते हैं जिन्हें खाना खिलाना अल्लाह तआला की प्रसन्नता का कारण

(1) सूरह अल-जारयात, आयत 19
(2) अमीन अहसन इस्लाही, तदब्बुरे क़ुरआन, ताज प्रिटर्स, नई दिल्ली, 1989 जिल्द 7, पृ. 594
(3) सूरह अल-दहर, आयत 8

बताया गया है। इसीलिए 'किताबुल ख़िराज' में यह नियम लिखा है कि यदि उनके बूढ़ों, विकलांग लोगों, महामारी से ग्रस्त या धनवान से निर्धन हो जाने वालों से जिज़िया (टैक्स) हटा लिया जाएगा और मुसलमानों के बैतुल-माल (ख़ज़ाने) से उनकी जीविका का उपाय किया जाएगा जब तक कि वह इस्लामी देश में रहें।''[1]

उदाहरण के लिए बद्र के युद्ध के क़ैदी मक्का के मुशरिक लोग थे, जिन्हें मुसलमान अपनी तुलना में अच्छा भोजन खिलाते थे। ग़ैर-मुस्लिमों पर ख़र्च करने के सम्बंध में अल्लाह तआला फ़रमाता हैः-

لَّيۡسَ عَلَيۡكَ هُدَاهُمۡ وَلَٰكِنَّ ٱللَّهَ يَهۡدِي مَن يَشَآءُۗ وَمَا تُنفِقُواْ مِنۡ
خَيۡرٖ فَلِأَنفُسِكُمۡ۔

''तेरे ज़िम्मे नहीं उनको सत्य मार्ग पर लाना, परन्तु
अल्लाह सत्य मार्ग पर लाए जिसको चाहे, और जो कुछ
ख़र्च करोगे तुम माल में से तो अपने ही लिए।''[2]

इस जगह मूल सिद्धांत बयान किया गया है कि अल्लाह की राह में जिस को माल दोगे तुम्हें इसका सवाब (पुन्य) दिया जाएगा। मुस्लिम और ग़ैर-मुस्लिम की कोई विशेषता नहीं बल्कि हर ज़रूरतमंद को दिया जा सकता है। इब्ने हनीफ़ा कहते हैं कि लोग इसे नापसंद करते थे कि मुशरिकों को सदक़ा (दान) दें, इसलिए अल्लाह तआला ने यह आयत उतारी तो अब लोग निर्धन मुशरिकों को भी दान देने लगे।

क़ुरआन की इन आयतों से प्रमाणित होता है कि ग़ैर-मुस्लिमों के निर्धन और वंचितों की सहायता करना मुसलमानों का कर्तव्य है। इसके अतिरिक्त साधारण लोगों को भी प्रेरणा दी गई है कि आर्थिक कठिनाइयों में उनकी सहायता किया करें।

(1) क़ाज़ी अबू यूसुफ़, याक़ूब बिन इब्राहीम, किताबुल ख़िराज, मतबूआ, बैरूत, लेबनान, दारुल मारिफ़ा, प्रकाशन वर्ष अंकित नहीं, पृ. 155

(2) सुरह अल-बक़रह, आयत 272

बहुलवादी समाज और संपत्ति की सुरक्षा

लोगों की निजी संपत्ति की सुरक्षा के सम्बंध में अल्लाह तआला फ़रमाता हैः-

وَلَا تَأۡكُلُوٓاْ أَمۡوَٰلَكُم بَيۡنَكُم بِٱلۡبَٰطِلِ۔

''और न खाओ माल एक दूसरे का आपस में अनुचित।''[1]

अनुचित माल खाने से तात्पर्य चोरी, विश्वासघात, धोखाधड़ी, रिश्वत और हड़पने आदि द्वारा किसी का माल और संपत्ति हथियाना है। यह आदेश भी सार्वजनिक है कि मुस्लिम और ज़िम्मी किसी के माल को इन उपरोक्त माध्यमों द्वारा प्राप्त करना हराम (वर्जित) है और अवहेलना करने वाला दोषी और सज़ा का पात्र होगा। जैसे यदि कोई व्यक्ति किसी ज़िम्मी (ग़ैर-मुस्लिम) के माल की चोरी करेगा तो सज़ा में उसका हाथ काटा जाएगा। यहां तक कि इस्लामी शासन में ज़िम्मी या ग़ैर-मुस्लिम को हराम (वर्जित) वस्तुओं को ख़रीदने-बेचने की अनुमति दी है।[2]

बहुलवादी समाज और व्यक्तिगत स्वतंत्रता

इस्लाम ने लोगों के निजी मामलों में हस्तक्षेप को भी मना किया है। इस बारे में अल्लाह तआला फ़रमाता हैः-

لَا تَدۡخُلُواْ بُيُوتًا غَيۡرَ بُيُوتِكُمۡ حَتَّىٰ تَسۡتَأۡنِسُواْ۔

''अपने घरों के अतिरिक्त अन्य घरों में प्रवेश न करो
जब तक कि उनसे अनुमति न ले लो।''[3]

(1) सूरह अल-बक़रह, आयत 188

(2) इब्ने आबिदीन शामी, रद्दुल-मुख़्तार, अला अल-दुर्रुल-मुख़्तार शरह तनवीरुल अबसार, किताबुल बयूअ़, बाब बैउल फ़ासिद, मतबा ज़करीया देवबंद, सन् इशाअत, 1417 हिजरी/1996 ईसवी जिल्द 7, पृ. 242

(3) सूरह उल-नूर, आयत 27

एक और आदेश हैः-

وَلَا تَجَسَّسُوا۔

''और किसी का भेद न टटोला करो।''[1]

इन आदेशों का उद्देश्य यह है कि लोगों के निजी जीवन में हस्तक्षेप न किया जाए। यहां भी मुस्लिम और ग़ैर-मुस्लिम का कोई अंतर नहीं है। ग़ैर-मुस्लिम के घर अनुमति के बिना दाख़िल होना या अकारण उसमें दोष निकालने के लिए उसकी टोह में रहना उसे दुख पहुंचाने वाले कार्य हैं। ज़िम्मी को दुख पहुंचाना नाजायज़ और हराम (वर्ज़ित) है। ख़ैबर युद्ध के अवसर पर किसी यहूदी ने हुज़ूर सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम से कुछ लोगों के उनके घरों में घुसने की शिकायत की तो आपने मुसलमानों को इस व्यवहार से मना फ़रमाया।

बहुलवादी समाज और न्याय

मानव समाज में न्याय की स्थापना अल्लाह तआला को इतनी प्रिय है कि पैग़म्बरों को भेजने और आसमानी पुस्तकों के अवतरण का एक मुख्य उद्देश्य न्याय व्यवस्था की स्थापना बताया है। फ़रमाया हैः-

لَقَدْ اَرْسَلْنَا رُسُلَنَا بِالْبَيِّنَاتِ وَاَنْزَلْنَا مَعَهُمُ الْكِتَابَ وَالْمِيْزَانَ لِيَقُوْمَ النَّاسُ بِالْقِسْطِ۔

''हमने भेजे हैं अपने रसूल निशानियाँ देकर और उनके साथ किताब और तराज़ू (न्याय का प्रतीक) उतारी ताकि लोग सत्य के मार्ग पर रहें।''[2]

अज्ञानता और अधर्म मानव समाज में अत्याचार का कारण होते हैं। अल्लाह तआला ने पैग़म्बर (सल्ल.) को आसमानी शिक्षा देकर

(1) सूरह अल-हुजरात, आयत 12
(2) सूरह अल-हदीद, आयत 25

इसलिए भेजा ताकि मानवता सत्य के मार्ग पर अग्रसर हो कर न्याय प्रिय बन जाए। अल्लाह तआला समस्त मानव के प्रति न्याय का मामला चाहता है, जिसके सम्बंध में फ़रमाता हैः-

وَاِذَا حَكَمْتُمْ بَيْنَ النَّاسِ اَنْ تَحْكُمُوْا بِالْعَدْلِ۔

''और जब तुम लोगों में फैसला करने लगो तो न्याय के साथ फैसला करो।''[1]

इस्लामी शिक्षा में मुस्लिम और ग़ैर-मुस्लिम समस्त मानव के प्रति न्याय और निष्पक्षता का आदेश है। न्याय की स्थापना में किसी जाति की शत्रुता और घृणा से प्रभावित होने की भी अनुमति नहीं है, बल्कि सभी इच्छाओं और भावनाओं से ऊपर उठकर केवल अल्लाह के लिए न्याय और निष्पक्षता की स्थापना करने का आदेश है। अल्लाह फ़रमाता हैः-

يَا اَيُّهَا الَّذِيْنَ آمَنُوْا كُوْنُوْا قَوَّامِيْنَ لِلّٰهِ شُهَدَاءَ بِالْقِسْطِ وَلَا يَجْرِمَنَّكُمْ شَنَاٰنُ قَوْمٍ عَلٰى اَلَّا تَعْدِلُوْا اِعْدِلُوْا هُوَ اَقْرَبُ لِلتَّقْوٰى وَاتَّقُوا اللّٰهَ اِنَّ اللّٰهَ خَبِيْرٌ بِمَا تَعْمَلُوْنَ۔

''ऐ ईमान वालो! खड़े हो जाया करो अल्लाह के लिए गवाही देने को न्याय की, और किसी जाति की शत्रुता के कारण न्याय को कदापि न छोड़ो, न्याय करो, यही बात निकट है अल्लाह के डर से और डरते रहो अल्लाह से, अल्लाह सब जानता है जो तुम करते हो।''[2]

इस्लाम धर्म की यह विशेषता है कि काफ़िरों (बहुदेववादी) और मुश्रिकों (अनेकेश्वरवादी) की ओर से शत्रुता और घृणा के बावजूद

(1) सूरह अल-निसा, आयत 58
(2) सूरह अल-मायदा, आयत 8

मुसलमानों को न्याय के मार्ग से बाल बराबर हटने की अनुमति नहीं देता बल्कि उन्हें सभी परिस्थितियों में अच्छाई और पवित्रता पर टिके रहने का आग्रह करता है। पवित्र क़ुरआन में आदेश हैः-

وَلَا يَجْرِمَنَّكُمْ شَنَآنُ قَوْمٍ اَن صَدُّوكُمْ عَنِ الْمَسْجِدِ الْحَرَامِ اَن تَعْتَدُوا وَتَعَاوَنُوا عَلَى الْبِرِّ وَالتَّقْوَى وَلَا تَعَاوَنُوا عَلَى الْاِثْمِ وَالْعُدْوَانِ وَاتَّقُوا اللّٰهَ اِنَّ اللّٰهَ شَدِيدُ الْعِقَابِ۔

‘‘और कारण न बनो तुमको किसी जाति की शत्रुता का, जो कि तुमको रोकती थी पवित्र मस्जिद से, इस पर कि अन्याय करने लगो और आपस में सहायता करो अच्छे काम पर और मत सहायता करो कुकर्म पर और डरते रहो अल्लाह से, निःसंदेह अल्लाह का प्रकोप भयानक है।’’[1]

न्याय एवं निष्पक्षता के सम्बंध में अल्लाह तआला ने हज़रत मुहम्मद सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम को संबोधित करके फ़रमाया हैः-

اِنَّا اَنزَلْنَا اِلَيْكَ الْكِتَابَ بِالْحَقِّ لِتَحْكُمَ بَيْنَ النَّاسِ بِمَا اَرَاكَ اللّٰهُ وَلَا تَكُن لِّلْخَائِنِينَ خَصِيمًا۔

‘‘निःसंदेह हमने उतारी तेरी ओर सच्ची किताब कि तू न्याय करे लोगों में जो कुछ समझा दे तुझको अल्लाह और तू मत हो धोखेबाज़ों की ओर से झगड़ने वाला।’’[2]

इस आयत के उतरने का कारण यह है कि यह आयत एक ऐसे व्यक्ति के बारे में उतरी है जिसने एक कवच चुरा लिया था और जब संदेह हुआ कि चोरी पकड़ी जाएगी तो कवच एक यहूदी के घर फेंक दिया। जब यहूदी के घर में कवच पाया गया तो उसने चोरी से

(1) सूरह अल-मायदा, आयत 2
(2) सूरह अल-निसा, आयत 105

इनकार किया और असली चोर उस यहूदी पर आरोप लगाने लगा तो मुसलमानों के एक वर्ग ने यहूदी के मुक़ाबले में मुसलमान का साथ दिया, इसलिए पैग़म्बर (सल्ल.) भी मुसलमान की ओर झुकने लगे, परन्तु अल्लाह तआला ने आपको असल घटना की सूचना दी और यहूदी को चोरी से बरी कर दिया और उसके खिलाफ़ फैसला देने से रोक दिया।[1]

अर्थात न्याय के मामले में एक यहूदी के मुक़ाबले में एक मुसलमान की ओर थोड़ा झुकने पर आप को तुरंत चेतावनी दी गई और ‘वही’ (ईश्वर वाणी) द्वारा आपको न्याय पर टिके रहने का आदेश दिया।

बहुलवादी समाज में धर्मों का सम्मान

इस्लाम सहिष्णुता और सहनशीलता सिखाता है। धर्म और आस्था में संकीर्णता को नहीं मानता। पवित्र क़ुरआन में अल्लाह तआला ने फ़रमाया हैः-

لَا اِكْرَاهَ فِى الدِّينِ۔

‘‘दीन (धर्म) के मामले में कोई ज़बरदस्ती नहीं।’’[2]

इस्लाम में अनिच्छा का कोई स्थान नहीं हो सकता, जब इस्लाम ऐसी चीज़ है जिसका गुण निश्चित रूप से सिद्ध है तो जो व्यक्ति शैतान पर विश्वास न रखता हो, वह अल्लाह तआला से श्रद्धा रखता हो (अर्थात इस्लाम स्वीकार करे) तो उसने बड़ा मज़बूत घेरा थाम लिया जिसकी किसी तरह पराजय नहीं हो सकती, अथवा आयत का तात्पर्य इस्लाम के गुण को स्पष्ट और प्रमाणित करना है जिसको इस

(1) इब्ने कसीर, इमाम अबुल फ़िदा इस्माईल इब्ने कसीर अलक़रशी अल-दमिश्की, तफ़सीर इब्ने कसीर, मतबा दारुल फ़िक़ह, प्रकाशन वर्ष 1400 हिजरी/1980 ईसवी, जिल्द1, पृ. 552
(2) सूरह अल-बक़रह, आयत 254

विशेष शीर्षक से बयान फ़रमाया गया है।[1]

आयत के इस अंश में जिस ज़बरदस्ती और अनिच्छा का निषेध किया गया है उसका तात्पर्य स्वाभाविक ज़बरदस्ती का निषेध है, अर्थात अल्लाह ने मार्गदर्शन और गुमराही के अर्थ में यह तरीक़ा नहीं अपनाया है कि वह अपनी इच्छा और शक्ति द्वारा लोगों का मार्गदर्शन करे या गुमराही की ओर हांक दे। यदि वह ऐसा करना चाहता तो कोई उसका हाथ पकड़ने वाला नहीं है, परन्तु यह बात उसकी बुद्धिमत्ता और न्याय के विरुद्ध है।[2]

इसी कारण से उलमा ने मस्अला (समाधान) लिखा है कि यदि किसी व्यक्ति को ज़बरदस्ती इस्लाम लाने पर विवश किया और वह अनिच्छा से मुसलमान हो गया और इसके बाद फिर वह कुफ़्र की तरफ लौट जाता है तो विद्वानों का स्पष्टीकरण यह है कि न उसे क़त्ल किया जाएगा और न क़ैद में डाला जाएगा।[3]

दूसरी जगह फ़रमाया हैः-

(1) थानवी, हकीमुल उम्मत मौलाना अशरफ़ अली थानवी, मुकम्मल तफ़सीर बयानुल क़ुरआन, जिल्द1, पृ. 152, मतबा इदारा तफ़सीर देवबंद, प्रकाशन वर्ष अंकित नहीं। इमाम क़ुरतबी ने इस आयत के छः अर्थ लिखे हैं' (1) यह आयत ''या अय्युहन्नबिय्यु जाहिदुल कुफ़्फ़ार वल-मुनाफ़िक़ीन'' उतरने के कारण रद्द हो गई। (2) यह आयत विशेष रूप से 'अहले किताब' (ईसाई यहूदी) के बारे में है और यह उस समय की बात है जब उनको इस्लाम लाने पर विवश किया गया (3) यह है कि यह आयत ईसाइयों के बारे में नाज़िल हुई है जब उनके बच्चों को यहूदी बनाने का प्रयास किया जा रहा था। (4) यह आयत ईसाइयों के एक व्यक्ति के बारे में उतरी है जिसे अबू हसीन कहा जाता है, (5) मानाहा ला तक़ूलू लिमन अस्लमा तहतस्सैफ़ मुजब्बिरन मकराहु, (6) यह आयत अहल-ए-किताब के बड़े लोगों के सम्बंध में उतरी है जब उनको अहल-ए-किताब होने पर विवश किया जा रहा था। विवरण के लिए देखिए क़ुरतबी, अबी अब्दुल्लाह मुहम्मद इब्ने अहमद अल-अंसारी अल-क़ुरतबी, अल-जामे अल-अहकाम अल-क़ुरआन, मतबा दारुल एहयाउत्तरास अरबी, बैरूत लेबनान, प्रकाशन वर्ष 1416 हिजरी/1995 ईसवी, जिल्द 3, पृ. 280-81)

(2) इस्लाही, अमीन अहसन इस्लाही, तदब्बुरे क़ुरआन, मतबा ताज प्रिंटर्स, नई दिल्ली, प्रकाशन वर्ष 1989, जिल्द 1, पृ. 592

(3) कासानी, इमाम अलाउद्दीन अबी बिकर सऊद अल-कासानी अल-हनफ़ी, (587 हिजरी), बदायउस्सनाएअ़ फ़ी तर्तीब अल-शराएअ़, मतबा दारुल किताब देवबंद, प्रकाशन वर्ष अंकित नहीं, जिल्द 6, पृ. 188)

وَقُلِ الْحَقُّ مِن رَّبِّكُمْ فَمَن شَاءَ فَلْيُؤْمِن وَمَن شَاءَ فَلْيَكْفُرْ۔

''और कहो सच्ची बात जो है तुम्हारे रब की तरफ़ से,
फिर जो कोई चाहे माने और जो कोई चाहे न माने।[1]

अर्थात सत्य वह है जिसको अल्लाह ने सत्य घोषित किया है, इच्छाओं की पूर्ति सत्य नहीं है या यह अर्थ है कि क़ुरआन या इस्लाम सत्य है जो अल्लाह की तरफ़ से आया है, अब जो ईमान लाना चाहे ईमान लाए, जो काफ़िर रहना चाहे वह काफ़िर रहे। यह वचन चेतावनी के रूप में है। ईमान और कुफ़्र दोनों का अधिकार दिया गया है, जो अपने अंदर एक विशेष चेतावनी रखता है।[2]

एक और फ़रमान हैः-

قُلِ اللَّهَ أَعْبُدُ مُخْلِصًا لَّهُ دِينِي ۝ فَاعْبُدُوا مَا شِئْتُم مِّن دُونِهِ۔

''तुम कहो मैं तो अल्लाह को पूजता हूँ विशुद्ध उपासना से
इसलिए अब तुम पूजो जिसको चाहो इसके अतिरिक्त।''[3]

इन आयतों में पैग़म्बर (सल्ल.) के मुख से बहुत स्पष्ट शब्दों में अलगाव और रिश्ता तोड़ने की घोषणा है कि मैं इस आदेश के अनुसार जो मुझे मेरे रब की ओर से मिला है, अपने रब की ही उपासना और किसी अन्य के मिश्रण के बिना उसी की आज्ञा मानता हूं और उसी

(1) सूरह अल-कहफ़, आयत 29

(2) गोया यह ऐनिया के अनुरोध का उत्तर है। ऐनिया ने कहा था, उन लोगों के लिबास और शरीर की दुर्गंध से क्या आपको गंध नहीं होती। हम क़बीला मुज़र के प्रतिष्ठित और सरदार लोग हैं, हम उनके साथ नहीं बैठ सकते हैं। अगर हम मान लेंगे तो सारे लोग ईमान ले आएंगे। उचित यह है कि उन लोगों को अपने पास से हटा दीजिए ताकि हम (आपके पास बैठ सकें, आपकी बात सुनें और) आप पर ईमान ले आएं। इसके जवाब में यह आयत उतरी। अल्लाह ने जवाब में ग़रीब मुसलमानों के साथ बैठने और उन को बिठा रखने का पैग़म्बर को आदेश दिया। क़ाजी मुहम्मद सनाउल्लाह उसमानी, हनफ़ी, मज़हरी, मुजद्दिदी, अल-तफ़सीरुल मज़हरी, मतबा नदवतुल मुसन्निफ़ीन, प्रकाशन वर्ष अंकित नहीं, जिल्द 1, पृ. 30

(3) सूरह अल-ज़ुमर, आयत 14-15

का उपदेश तुमको भी दे रहा हूँ। यदि तुम मेरी यह बात नहीं मानते तो तुम ख़ुदा के सिवा जिसकी चाहो उपासना करो, मैं तुम्हारे कर्म से बरी हूं।[1]

हज़रत मुहम्मद (सल्ल.) की बड़ी इच्छा थी और इस विषय में अनथक प्रयास करते थे कि सब लोग इस्लाम स्वीकार कर लें। इसलिए हर समय चिंतित और परेशान रहा करते थे। इस पर अल्लाह तआला का फ़रमान हैः-

وَلَوْ شَاءَ اللّٰهُ مَا اَشْرَكُوْا وَمَا جَعَلْنَاكَ عَلَيْهِمْ حَفِيْظاً
وَمَا اَنْتَ عَلَيْهِمْ بِوَكِيْلٍ-

''और यदि अल्लाह चाहता तो यह लोग शिर्क न करते। हमने तुमको उन पर कोई रक्षक नियुक्त नहीं किया, और न तुम उनके संरक्षक हो (कि उन्हें भटकने न दो)''[2]

आयत का प्रसंग बता रहा है कि पैगंबर की ओर सम्बोधन है, अर्थ यह है कि तुम अल्लाह की 'वही' (वाणी) पर डटे रहो। अल्लाह के अतिरिक्त कोई पूजनीय नहीं है और उन मुशरिकों के विरोध की कोई परवाह न करो, उनसे दूर रहो और यह बात याद रखो कि अल्लाह अपने धर्म के मामले में ज़बरदस्ती को पसंद करता होता तो उनमें से कोई भी शिर्क पर स्थिर न रह सकता, वह सबको तौहीद (एकेश्वरवाद) और इस्लाम के सत्य मार्ग पर चला देता, परन्तु उसकी बुद्धिमत्ता की अपेक्षा यही हुआ कि वह लोगों को इस मामले में विकल्प देकर जांचे कि कौन एकेश्वरवाद के रास्ते को अपनाता है और कौन शिर्क को।[3]

(1) अमीन अहसन इस्लाही, तदब्बुरे क़ुरआन, मतबा ताज प्रिंटर्स, नई दिल्ली, प्रकाशन वर्ष 1989, जिल्द 6, पृ. 574
(2) सूरह अल-अनआम, आयत 107
(3) अमीन अहसन इस्लाही, तदब्बुरे क़ुरआन, जिल्द 3, पृ. 134

इसी शीर्षक की एक और आयत हैः-

وَلَوْ شَاءَ رَبُّكَ لَاٰمَنَ مَنْ فِي الْاَرْضِ كُلُّهُمْ جَمِيْعاً اَفَاَنْتَ تُكْرِهُ النَّاسَ-

''यदि तुम्हारा रब चाहता तो दुनिया के तमाम लोग सब के सब ईमान ले आते, तो क्या तुम लोगों को विवश कर सकते हो''[1]

अर्थात अल्लाह की इच्छा यह होती कि उसकी धरती केवल आज्ञाकारी और भक्त ही बसें और कुफ़्र और अवज्ञाकारी का कोई अस्तित्व ही न हो तो इसके लिए मुश्किल है कि वह समस्त धरती वासियों को मोमिन और आज्ञाकारी पैदा करता और न यह मुश्किल है कि सब के दिल अपने एक ही इशारे से ईमान और आज्ञाकारिता की ओर फेर देता।[1]

पवित्र क़ुरअन में ग़ैर-मुस्लिमों की अलग धार्मिक स्थिति को भी स्वीकार किया गया हैः-

قُلْ يَا اَيُّهَا الْكَافِرُوْنَ ۝ لَكُمْ دِيْنُكُمْ وَلِيَ دِيْنِ-

''इन ग़ैर-मुस्लिमों से कह दो कि तुम्हारे लिए तुम्हारा दीन (धर्म) और मेरे लिए मेरा दीन।''[1]

अर्थात मेरा धर्म अलग और तुम्हारा धर्म अलग, मैं तुम्हारे ईश्वर का उपासक नहीं और तुम मेरे ईश्वर की उपासना के लिए तैयार नहीं

(1) सूरह यूनुस, आयत 99
(2) इस का अर्थ यह नहीं कि पैग़म्बर लोगों को ज़बरदस्ती मुसलमान बनाना चाहते थे और अल्लाह तआला आपको ऐसा करने से रोक रहा था। वास्तव में इस वाक्य में वही शैली प्रयोग की गई है जो क़ुरआन में हमें अधिकतर मिलती है कि संबोधन दिखने में पैग़म्बर से होता है परन्तु वास्त में लोगोंको वह बात सुनाना उद्देश्य होता है जो पैग़म्बर को संबोधित करके फ़रमाई जाती है। सैयद अबुल आला मौदूदी, तफ़हीमुल क़ुरआन, मतबा मर्कज़ी जमाअते इस्लामी हिंद, नई दिल्ली, प्रकाशन 1970, जिल्द 2, पृ. 313
(3) सूरह अल-काफिरून, आयत 1-4

इसलिए मेरा और तुम्हारा रास्ता कभी एक नहीं हो सकता, यह अधर्मियों को सौहार्द का संदेश नहीं है बल्कि जब तक वह काफ़िर हैं, उनसे हमेशा के लिए अलगाव और सम्बंध न रखने की घोषणा है, और इसका उद्देश्य उनको इस बात से अंतिम रूप से निराश कर देना है कि धर्म के मामले में अल्लाह का रसूल और ईमान लाने वालों का समूह कभी उनसे समझौता न करेगा।''[1]

क़ुरआन की इन आयतों से यह बात ख़ूब स्पष्ट हो जाती है कि अल्लाह तआला ने इस्लाम के नकारने और स्वीकारने में लोगों को स्वतंत्र रखा है। क़िताल (जिहाद) का उद्देश्य लोगों को मुसलमान बनाना नहीं बल्कि उनकी विद्रोह और दुष्टता समाप्त करके उन्हें आज्ञाकारी और शांतिपूर्ण बनाना है। इस्लाम के उपदेश का उद्देश्य सब के लिए आम है। परन्तु इस मामले में किसी पर ज़बरदस्ती नहीं। इस्लाम का आधार तौहीद (एकेश्वरवाद) पर है और इसी के प्रचार-प्रसार के लिए जिहाद की पूरी व्यवस्था की गई है। पवित्र क़ुरआन ने शिर्क (अनेकेश्वरवाद) को सब से बड़ा अत्याचार कहा है, और देवताओं और धार्मिक पवित्रता की वस्तुओं को बुरा-भला कहकर उनको कष्ट देने से मना किया है। इस बारे में अल्लाह का फ़रमान हैः-

وَلَا تَسُبُّوا الَّذِيْنَ يَدْعُونَ مِن دُونِ اللّٰهِ فَيَسُبُّوا اللّٰهَ عَدْواً
بِغَيْرِ عِلْمٍ كَذَٰلِكَ زَيَّنَّا لِكُلِّ أُمَّةٍ عَمَلَهُمْ۔

(3) इस आयत से इमाम अबू हनीफ़ा और इमाम शाफ़ई ने यह तर्क लिया है कि काफ़िरों के धर्म भिन्न हों परन्तु कुफ़्र की हैसियत से वह एक हैं इसलिए यहूदी ईसाई का और ईसाई यहूदी का उसी तरह एक धर्म का काफ़िर दूसरे धर्म के काफ़िर का वारिस हो सकता है। इमाम मालिक, इमाम औज़ाई, इमाम अहमद इस बात को मानते हैं कि एक धर्म के अनुयायी दूसरे धर्म के अनुयायी की विरासत नहीं पा सकते। दोनों लोगों ने अपने अपने पक्ष के अनुसार तर्क दिए हैं जो फ़िक़ह की पुस्तकों में मौजूद हैं। विवरण वहां देखा जा सकता है। सैयद अबुल आला मौदूदी, तफ़हीमुल क़ुरआन, मतबा मर्कज़ी जमाअते इस्लामी हिंद, नई दिल्ली, प्रकाशन वर्ष 1970, जिल्द 6, पृ. 509-7

''और तुम लोग बुरा न कहो उनको जिनकी वे पूजा करते हैं अल्लाह के सिवा, क्योंकि वे बुरा कहने लगेंगे अल्लाह को अपमान से बिना समझे, इसी तरह हमने श्रेष्ठ कर दिया है हर एक वर्ग की दृष्टि में उनके कर्मों को।''[1]

اتفق العلماء على ان معنى الايه لا تسبو الهة الكفار فيسبو ا الهكم فمنع الله تعالىٰ فى كتابه احدًا ان يفعل فعلا جائزاً ايودى الىٰ محظورٍ ولا جل هٰذا تعلق علماو نا بهذه الاية فى سدالذرائع وهو كل عقد جائز فى الظاهر يؤول او يمكن ان يتوصل به الىٰ محظورٍ۔

''विद्वान सहमत हैं कि शब्द का अर्थ है, काफ़िरों के देवताओं का अपमान न करें, इसलिए वे आपको श्राप देते हैं। अल्लाह तआला ने अपनी पुस्तक में किसी को भी ऐसा वैध कार्य करने से मना किया है जो निषिद्ध कार्य की ओर ले जाता है। इसलिए हमारे विद्वानों ने खुद को इस आयत से जोड़ लिया है, जो देखने में जायज़ प्रतीत होती है और सम्भवतः वह किसी अवैध कार्य तक पहुंचा दे।''[2]

अर्थात बुतों को बुरा कहना अपने आप में जायज़ है, परन्तु जब वह साधन बन जाए एक हराम कार्य का अर्थात अल्लाह तआला के अपमान का, तो वह भी वर्जित और कुरूप हो जाएगा।[3]

ये सलाह पैग़म्बर (सल्ल.) के अनुयाईयों को दी गई है कि वह अपने उपदेश के जोश में इतने बेक़ाबू न हो जाएं कि बहस और वाद-विवाद से मामला बढ़ते-बढ़ते ग़ैर-मुस्लिमों के गुरुओं और मूर्तियों

(1) सूरह अल-अनआम, आयत 108

(2) अबू बकर मुहम्मद बिन अबदुल्लाह अल-मारूफ़ इब्ने अरबी, अहकामुल क़ुरआन, मतबा अलबाबी अलहलबी, प्राकशन वर्ष 1387 हिजरी/1967, जिल्द 2, पृ. 734-355

(3) हकीमुल उम्मत मौलाना अशरफ़ अली थानवी, मुकम्मल तफ़सीर बयानलु क़ुरआन, इदारा तफ़सीर देवबंद, प्रकाशन वर्ष अंकित नहीं, जिल्द 2, पृ. 119

को गालियां देने तक नौबत पहुंच जाए, क्योंकि यह चीज़ उनको सत्य के निकट लाने के बजाय और अधिक दूर फेंक देगी।[1]

विद्वानों ने इसी आधार पर इस आयत से यह नियम निकाला है कि जो आज्ञा अनिवार्य न हो और किसी पाप का कारण बन जाती हो तो उसको छोड़ दिया जाए।[2]

बहुलवादी समाज में पूजा स्थलों का सम्मान

इसलिए इस्लाम ग़ैर-मुस्लिमों के पूजा स्थलों का सम्मान करना सिखाता है। इस्लाम में क़िताल (जिहाद) का उद्देश्य केवल उपद्रवी तत्वों का उपद्रव मलियामेट करना है जिनके कारण धार्मिक कर्तव्यों का पालन करने में बाधा उत्पन्न होती है। अल्लाह तआला का फ़रमान हैः-

وَلَوْلَا دَفْعُ اللّٰهِ النَّاسَ بَعْضَهُم بِبَعْضٍ لَّهُدِّمَتْ صَوَامِعُ وَبِيَعٌ وَصَلَوَاتٌ
وَمَسَاجِدُ يُذْكَرُ فِيهَا اسْمُ اللّٰهِ كَثِيرًا۔

‘‘और यदि न होता दूर करना अल्लाह का कुछ को कुछ से, अलबत्ता ढाए जाते दरवेशों के ख़िलवत ख़ाने (कुटिया) और पूजा स्थल ईसाइयों के (चर्च), और पूजा स्थल और यहूदियों के (सेनेगाग) और मस्जिदें, कि लिया जाता है बीच उनके नाम अल्लाह का बहुत।’’[3]

कोई यह भ्रम न पाले कि सब इबादत ख़ाने अब भी अल्लाह

(1) सैयद अबुल आला मौदूदी, तफ़हीमुल-क़ुरआन, मतबा मर्कज़ी जमात-ए-इस्लामी हिंद, नई दिल्ली, प्रकाशन वर्ष 1970, जिल्द 1, पृ. 571

(2) मौलाना अबदालमाजद दरयाबादी, तफ़सीरे क़ुरआन तफ़सीरे माजिदी, लखनऊ पब्लिशिंग हाऊस, प्रकाशन वर्ष 1421 हिजरी/2000, जिल्द 2, पृ. 83

(3) सुरह अल-हज्ज, आयत 40

तआला के नज़दीक स्वीकार्य हैं। वास्तविकता यह है कि अपने-अपने अनिवार्यता और उद्देश्य के समय में आवश्यकता उद्देश्य है।[1]

अल्लाह के रसूल सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम ने नजरान की ईसाई आबादी को ज़िम्मी (सुरक्षा कर देने वाला) बनाया और उनको हर प्रकार की धार्मिक स्वतंत्रता दी बल्कि उनके लिखित समझौते में स्पष्ट किया गया कि उनकी पूजा की विधियों, पर्सनल लॉ, धार्मिक व्यवस्थाओं, पदों और औक़ाफ़ (समर्पित संपत्ति) में किसी प्रकार का हस्तक्षेप नहीं किया जाएगए।[2]

इसी तरह जब बैतुल मुक़द्दस के ईसाइयों को हज़रत उमर रज़ियल्लाहु अनहु ने जो लिखित सुरक्षा दी थी इसमें जान-माल, धार्मिक स्थलों और विधियों यहां तक कि सलीबों तक की सुरक्षा की गारंटी दी गई थी।[3]

ख़ालिद बिन वलीद ने सीरिया के विजित क्षेत्र ‘आनात’ के लोगों से इन धाराओं पर समझौता किया थाः- उनका कोई पूजा स्थल और किनीसा नहीं ढाया जाएगा, और उनको यह अधिकार प्राप्त होगा कि वह दिन रात जब चाहें अपने नाक़ूस (घंटी) बजाएं, सिवाए नमाज़ के

(1) हकीमुल उम्मत मौलाना अशरफ़ अली थानवी, मुकम्मल तफ़सीर अल-बयानुल क़ुरआन, इदारा तफ़सीर देवबंद, प्रकाशन वर्ष अंकित नहीं, जिल्द 7, पृ. 75, वास्तव में ‘सुवामे बैअ़’ और ‘सलवात’ के शब्द प्रयोग हुए हैं। ‘सोमिआ’ उस स्थान को कहते हैं जहां राहिब, सन्यासी, संसार त्यागने वाले और फ़क़ीर रहते हों, ‘बिआ’ का शब्द अरबी भाषा में ईसाइयों के पूजा स्थल को कहते हैं, सलवात से तात्पर्य यहूदियों के नमाज़ पढ़ने की जगह है। सैयद अबुल आला मौदूदी, तफ़हीमुल क़ुरआन, मर्कज़ी जमात-ए-इस्लामी हिंद, नई दिल्ली, प्रकाशन वर्ष 1970, जि. 3, पृ. 233

(2) सुलेमान बिन अशअस अबू दाऊद सजिस्तानी, सुनने आू दाऊद, किताबुल ख़िराज वलफ़ई वलअमारह, बाब अख़ज़ल जिज़ियह। इसके विवरण के लिए लेखक का एमफ़िल का शोध लेख देखा जा सकता है।

(3) अबू जाफ़र मुहम्मद बिन जरीर तिबरी, (224-310 हिजरी) तारीख़ अल-रसूल अल-ममलूमक, दारुल मआरफ़ि, मिस्र, लेबनान, प्रकाशन वर्ष 1962, जिल्द 3, पृ. 609

समय के, और अपने त्योहार के दिनों में उन्हें सलीब के जुलूस निकालने का अधिकार प्राप्त होगा।[4]

अंत में यह कहना उचित प्रतीत होता है कि इस्लाम धर्म शांति का धर्म है, इसकी शिक्षाएं इसके चरित्र का प्रतिबिम्ब हैं, इस्लाम ने उस समय शांति, शुभचिंता और सहनशीलता का सबक़ आम किया जबकि हर तरफ़ अंधेरा, असहिष्णुता और घृणा पाई जाती थी, इसी तरह इस्लाम धर्म ने भाषाई, धार्मिक, क्षेत्रीय और पारिवारिक आधारों पर मानव वर्ग को गुलाम बनाने, किसी को नीच या हीन ख़्याल करने और ख़ुद को उच्च समझने की अनुभूति को ही नकार दिया है। गोया इस्लाम का बहुलतावादी दृष्टिकोण सहअस्तित्व के सिद्धांतों पर आधारित है, और एक शांतिपूर्ण समाज का गठन चाहता है, जिसमें समस्त मानव बिरादरी पूर्ण स्वतंत्रता से रह सकें।

❑❑

(4) काज़ी अबू यूसुफ़ याक़ूब बिन इब्राहीम, किताबुल ख़िराज, बैरूत लेबनान, दारुल मारिफ़ा, प्रकाषन वर्ष अंकित नहीं, पृ. 175

संदर्भ पुस्तकें

1. अल-सुहैली, अबिल क़ासिम, अबदुर्रहमान बिन अबदुल्लाह बिन अहमद, अल-रौज़ुल अनफ़ फ़ी शरह अल-सीरतुन्नबविया लिइब्न हिशाम, मुहम्मद उमर अबदूस्सलाम अल-सलमी, दार अहयाउत्तुरास अरबी, बैरूत, लेबनान, 2002 ई.।
2. अल-हरवी, अली बिन सुल्तान मुहम्मद अबुल हसन नूरुद्दीन, अल-मुल्ला अल-हरवी, मिरक़ातुल मफ़ातीह शरह मिशकातुल मसाबीह, दारुल फ़िक्र।
3. मुहम्मद बिन इस्माईल, अल-सहीह अल-बुख़ारी।
4. इब्ने हजर अस्क़लानी, अबुल-फ़ज़्ल शहाबुद्दीन अहमद बिन अली बिन मुहम्मद अल-कनानी, फ़तहुल-बारी, शरह सहीहुल बुख़ारी, बैरूत, लेबनान, 1379 ई.।
5. शरह अल-ज़रक़ानी अला मुअत्ता इमाम मालिक।
6. हलबी, अली बिन बुरहानुद्दीन, अल-सीरतुल हलबियह, मकतबा नूर, 1400 हिजरी।
7. अस्फ़हानी, राग़िब हसन मुहम्मद बिन अल-मुफ़ज़्ज़ल, अल-मुहाज़िरात अल-उदबा व मुहाविरातुश्शोअरा वल-बलग़ा, दारे अरक़म, बैरूत, 1999 ई.।
8. मौदूदी, सैयद अबुल आला, तफ़हीमुल-क़ुरआन, मर्कज़ी मकतबा जमाअत-ए-इस्लामी हिंद, 1970 ई.।
9. दरियाबादी, अब्दुल माजिद (मौलाना), तफ़सीरे क़ुरआन तफ़सीरे

माजिदी, लखनऊ पब्लिशिंग हाऊस, 2000 ई.।
10. क़ुरतबी, अबी अब्दुल्लाह मुहम्मद बिन अहमद अल-अंसारी, अलजामिउल अहकाम उल-क़ुरआन, बैरूत, लेबनान, 1995 ई.
11. जस्सास, अबी बकर अहमद बिन अली अल-राज़ी, अहकामुल क़ुरआन, मिस्र, 1347 हिजरी।
12. फ़तावा आलमगीरी, मकतबा रहीमियह, देवबंद, सन् नहीं है।
13. इस्लाही, अमीन अहसन, तदब्बुरुल क़ुरआन, ताज प्रिंटर्स, नई दिल्ली? 1989 ई।
14. क़ाज़ी, अबू यूसुफ याक़ूब बिन इब्राहीम, किताबुल ख़िराज, बैरूत लेबनान।
15. शामी, इब्ने आबिदीन, रद्दुलमुख़्तार अला अल-दुर्रुलमुख़्तार, शरह तनवीरुल अबसार, मकतबा ज़करिया, देवबंद, 1996 ई।
16. मौसूआ फक़ीह, कुवैत, 1992 ई।
17. इब्ने कसीर, अबिल फ़िदा इस्माईल इब्ने कसीर अल-क़रशी अल-दमिश्क़ी, तफ़सीरुल क़ुरआन अल-अज़ीम, दारुल फ़िक्र, 1980 ई।
18. थानवी, हकीमुल उम्मत अशरफ़ अली थानवी, बयानुल क़ुरआन, इदारा तफ़सीर देवबंद।
19. इब्ने अरबी, अबू बकर मुहम्मद बिन अबदुल्लाह, अहकामुल क़ुरआन, अल-बाबी अल-हलबी, 1967 ई।
20. अबू दाऊद, सुलेमान बिन अशअस, सुनन अबू दाऊद।
21. तिबरी, अबू जाफ़र मुहम्मद बिन जरीर, तारीख़ अल-रुसुल वलमकूक, दारुल मआरिफ़, मिस्र, 1962 ई।
22. बिलगिरामी, गुलाम अली आज़ाद हुसैन वास्ती, सुबहतुल मरजान फ़ी आसारे हिन्दुस्तान, तक़दीम व तहक़ीक़, मुहम्मद सईद अल-तरंजी, लेबनान, बैरूत, 2015 ई।

23. सैयद सबाहुद्दीन अबदुर्रहमान अलीग, हिन्दुस्तान के अह्दे वुस्ता की एक झलक।
24. नदवी, सैयद सुलेमान (मौलाना) अरब व हिन्द के तअल्लुक़ात, मआरिफ़ प्रैस, आज़मगढ़, 2013 ई।
25. मुहम्मद उमर, (डाक्टर) हिन्दुस्तानी तहज़ीब का मुसलमानों पर असर, पब्लीकेशन डिवीज़न, अलीगढ़, 1975 ई।
26. निज़ामी, ख़लीक़ अहमद (प्रोफ़ेसर), सलातीने दिल्ली के मज़हबी रुजहानात, अल-जमीअत प्रैस, दिल्ली, 1958 ई।
27. ख़लीक़ अंजुम, मिर्ज़ा मज़हर जानेजानां के ख़ुतूत, अल-जमीअत प्रैस? दिल्ली, 1962 ई।
28. बैरूनी,अबू रैहान मुहम्मद बिन अहमद, किताब अल-बैरुनी फ़ी तहक़ीक़ मा लिल हिन्द, अनुवादक, सैयद असग़र अली, अल-फ़ैसल नाशिराने कुतुब, 2005 ई।
29. मुंशी मुहम्मद सईद अहमद मारहरवी, उमरा-ए-हुनूद, अंजुमन तरक़्क़ी उर्दू औरंगाबाद, दक्कन, 1936 ई।
30. नदवी, सैयद सुलेमान, (मौलाना) मक़ालाते शिबली, मआरिफ़ प्रैस, शिबली अकादमी, आज़मगढ़, 2009 ई।
31. मसऊदी, अबुल हसन बिन हुसैन बिन अली, मुरव्वजुज़्ज़हब व मआदिनुल हौहर, अनुवादक, प्रो. कौकब शारानी, नफ़ीस अकादमी, इस्ट्रेचन रोड, कराची, 1985 ई।
32. शेख़ मुहम्मद इकराम, आब-ए-कौसर, इदारा सक़ाफ़ते इस्लामिया क्लब रोड, लाहौर, 2006 ई।
33. शेख़ मुहम्मद इकराम, रूदे-कौसर, इदारा सक़ाफ़ते इस्लामिया क्लब रोड, लाहौर, 2005 ई।
34. शेख़ मुहम्मद इकराम, मौज-ए-कौसर, इदारा सक़ाफ़ते इस्लामिया क्लब रोड, लाहौर, 2003 ई।

35. सैयद महमूद (डाक्टर) मुत्तहिदा हिन्दुस्तानी क़ौमियत, अदबी मर्कज़, हिंद पब्लीकेशन, बंबई, प्रकाशन वर्ष अंकित नहीं है।
36. कामिल क़ुरैशी, उर्दू और मुशतरका हिन्दुस्तानी तहज़ीब, उर्दू अकादमी, दिल्ली, 1987 ई.।
37. सैयद आबिद हुसैन, (डाक्टर) क़ौमी तहज़ीब का मस्अला, अंजुमन तरक़्क़ी उर्दू हिन्द, नई दिल्ली, 1955 ई.।
38. क़रज़ावी, यूसुफ, इस्लाम और सेक्युलरिज़्म, अनुवादक, साजिद रहमान, आलमी इदारा फ़िक्रे इस्लामी, इस्लामाबाद, 1997 ई.।
39. वहीदुद्दीन ख़ाँ, (मौलाना), अल-रिसाला, 2017 ई.।
40. मक़ाला, मुहम्मद अब्दुल क़य्यूम (हाफ़िज़), सेक्युलरिज़्म और माबाद सेक्युलरिज़्म, (सेक्युलरिज़्म के बदलते तसव्वुरात का तालीमाते नबवी की रोशनी में जायज़ा), मुजल्ला अल-अज़्वा, पाकिस्तान।
41. माहनामा बुरहान, दिल्ली, 1962 ई.।
42. बस्तवी, अख़्तर, (डाक्टर) सेक्युलरिज़्म और उर्दू शायरी, यूपी उर्दू अकादमी, लखनऊ, 1996 ई.।
43. इनामुलाह ख़ाँ, सेक्युलरिज़्म, जमहूरीयत और इस्लाम, इदारा शहादते हक़, दिल्ली, 1970 ई.।
44. सैयद आबिद हुसैन, हिन्दुस्तानी मुसलमान आईना-ए-अय्याम में, मकतबा जामिआ लिमेटेड, नई दिल्ली, 2012 ई.।
45. मुशीरुल हक़, मुसलमान और सेक्युलर हिन्दुस्तान, मकतबा जामिआ लिमेटेड, नई दिल्ली, 1973 ई.।
46. कैरानवी, वहीदुज़्ज़मां क़ासमी (मौलाना), अल-क़ामूसुल वहीद, इदारा इस्लामीयात, लाहौर, 2001 ई.।
47. देहलवी, सैयद अहमद, फ़रहंग आसफ़िया, मकतबा हुस्ने सबील लिमिटेड, उर्दू बाज़ार, लाहौर।

48. Gellner, Nation and Nationalism.
49. ताहिरा नय्यर, (डाक्टर) उर्दू शायरी में पाकिस्तानी क़ौमियत का इज़हार, 1971 से 1977 तक, अंजुमन तरक़्क़ी पाकिस्तान, गुलशने इक़बाल, कराची, 1999 ई.।
50. आज़ाद, अबुल कलाम, (मौलाना) इस्लाम और नेशनलिज़्म, अल-बलाग़ बुक एजेंसी नम्बर-5, खालमंडी, लाहौर, 1929 ई.।
51. मजमूआ-ए-लेक्चर्स।
52. हाली, अलताफ़ हुसैन, हयात-ए-जावेद, नई दिल्ली, 1979 ई.।
53. लेख, यकजहती की तौसीअ में उलेमा-ए-देवबंद का किरदार, लेखक, मौलाना अजरार अहमद क़ासमी, माहनामा, दारुल उलूम, 2017 ई.।
54. गिलानी, मुज़फ़्फ़र, मज़ामीन-ए-मौलाना गिलानी, बिहार उर्दू अकादमी, पटना? 1984 ई.।
55. शाहजहांपूरी, अबू सलमान, शेख़ुल हिंद मौलाना महमूद हसन, एक सियासी मुताला, फ़रीद बुक डिपो, नई दिल्ली, 2011 ई.।
56. मदनी, हुसैन अहमद, (मौलाना) और मुहम्मद मियां (मौलाना), हमारा हिन्दुस्तान और इसके फ़ज़ाइल, दफ़्तर जमीअत, दिल्ली, 1970 ई.।
57. नजीबाबादी, अकबर शाह ख़ाँ, (मौलाना) आईना-ए-हक़ीक़त नुमा, नफ़ीस अकादमी, कराची, 1958 ई.।
58. फ़हमी, शौकत अली, (मुफ़्ती) हिन्दुस्तान पर इस्लामी हुकूमत, बुक प्वाइंट, कराची, 2005 ई.।
59. भट्टी, मुहम्मद इसहाक़, बर्रे सग़ीर में इस्लाम के अव्वलीन नुकूश, इदारा सक़ाफ़ते इस्लामिया, लाहौर, 1990 ई.।
60. शिबली नोमानी, इस्लामी हुकूमत और हिन्दुस्तान में इसका तमद्दुनी असर, अलनाज़िर प्रैस, लखनऊ, 1927 ई.।

61. नदवी, अली मियां (मौलाना) हिन्दुस्तानी मुसलमान - एक तारीख़ी जायज़ा और मौजूदा सूरते हाल की अक्कासी, मज्लिसे तहक़ीक़ात व नशरियाते इस्लाम, पोस्ट बक्स, लखनऊ, 1992 ई.।
62. महमूद अली, अह्दे वुस्ता में मुशतरका तमद्दुन और क़ौमी यकजहती, मकतबा जामिआ लिमेटेड, उर्दू बाज़ार नई दिल्ली, 1996 ई.।
63. सर, सैयद अहमद ख़ाँ, असबाब बग़ावते हिंद, मतबा मुफ़ीदे आम, आगरा, 1903 ई.।
64. सैयद, मुहम्मद मियाँ, उलमा-ए-हिंद का शानदार माज़ी, अल-जमीअत प्रैस, 1996 ई.।
65. अकबराबादी, सईद अहमद, (मौलाना) नफ़्सतुल मस्दूर और हिन्दुस्तान की शरई हैसियत, अलीगढ़ मुस्लिम यूनीवर्सिटी अलीगढ़, प्रकाशन वर्ष अंकित नहीं है।
66. फ़िरंगी अब्दुल हई, (मौलाना) मजमूआ फ़तावा, यूसुफ़ी प्रैस फिरंगीमहल, लखनऊ, 1312 हिजरी।
67. बरैलवी, अहमद रज़ा ख़ाँ, एलामुल आलाम बिअन्ना हिन्दुस्तान दारुल इस्लाम।
68. क़ासमी, मुजाहिदुल इस्लाम, मुजल्ला फ़िक़्ह इस्लामी।
69. आज़मी, हबीबुर्रहमान, (मौलाना) दारुल इस्लाम और दारुल-हर्ब, मर्कज़ तहक़ीक़ात व ख़िदमाते इलमिया, मऊ, 2002 ई.।

❑❑

ख़ुसरो फ़ाउण्डेशन : एक नई पहल

हिंदुस्तान जन्नत निशान, जो मज़हबी, भाषायी एवं सांस्कृतिक विविधताओं का देश है और 'अनेकता में एकता' से जिसकी पहचान होती है। इस महान देश का इतिहास मानव-प्रेम की मिसालों से भरा पड़ा है। जिसमें शक्ति और शान्ति भक्तों के गीतों का नतीजा है और हिंदुस्तान हमेशा इस बात का गवाह रहा है कि धरती के बासियों की मुक्ती प्रीत में है।

पता नहीं कि दुनिया को किसकी बुरी नज़र लग गई कि सामाजिक निकटता दूरियों में बदलने लगी हैं। सच्चाई तो यही है कि इस देश की अधिकांश लोग आज भी इस अलगाव तथा विभाजन का हिस्सा बनने के लिए तैयार नहीं है, परन्तु बहुसंख्यक अगर ख़ामोश रहती है तो उसका अस्तित्व गहरे अन्धकार के गर्त में समा जाता है। वर्तमान में अधिकांश लोग समाज एवं मानवता के दुखों का निवारण करने के बजाय केवल और केवल अपने आप में व्यस्त हैं। वह मनुष्य जो कभी जनसाधारण की आकांक्षा का स्वर हुआ करता था आज अपने आप तक ही सीमित होकर रह गया है। इन हालात में हाथ में हाथ धरे बैठा नहीं रहा जा सकता और इसलिए ज़रूरी है कि एक बार उन सभी प्रतीकों को फिर से ज़िंदा किया जाए जो ''मुहब्बतों की गाथा'' और ''प्रेम के ढाई अक्षर'' से एक दूसरे को जोड़े रहे जिनके नज़दीक मादरे-वतन, यहाँ पैदा और बसने वाले, इसके दरियाओं का पानी पीने वाले, इसके खेतों में पैदा होने वाले अन्न से अपनी भूख

मिटाने वालों को फिर इस बात का एहसास दिलाया जाए कि उनका मज़हब, ज़बान और इलाक़ा कुछ भी हो सकता है लेकिन माँ और माटी से उनका रिश्ता इस दुनिया के पैदा करने वाले और चलाने वाले रब की मर्ज़ी का नतीजा है और जिसमें रब राज़ी उसमें सब राज़ी रहें तो ही बेहतरी और भलाई है।

हिंदुस्तान में एक दूसरे को जोड़ने वालों का यदि उल्लेख किया जाए तो उनके नाम और काम गिनाने में कोई देर न लगेगी लेकिन अगर एक दूसरे को एक दूसरे से अलग करने वालों और बाँटने वालों के नाम पूछे जाएँ तो उसे उनके नाम याद करने और बताने में बड़ी मुश्किल आएगी।

इन सबके बावजूद आज फिर यह दूरियाँ, यह टकराव और हिंसा बार-बार क्यों देखने को मिल रही है। इसका सीधा-साधा जवाब यही है कि हमने उन्हें भुला दिया है जिन्हें हमें याद रखना चाहिए था। देवी-देवताओं, पैग़ंबरों, पीरों और ऋषियों-मुनियों के त्याग, तपस्या, समर्पण और सेवाभाव को पुनजीवित करने की आवश्यकता है। उनकी शिक्षाओं तथा उनके उपदेशों को एक बार फिर लोगों तक पहुँचाया जाना चाहिए ।

यही वह सोच और फ़िक्रमंदी है जिसके तहत 'ख़ुसरो फ़ाउण्डेशन' की स्थापना की गई है। हज़रत अमीर ख़ुसरो मध्यकालीन भारत के एक ऐसे लोकप्रिय, मनमोहक एवं सर्वव्यापी व्यक्तित्व हैं, जिन्हें सदियाँ गुज़रने के बाद भी याद रखा गया और हमेशा याद रखा जाएगा। वह सूफ़ी भी थे और सिपाही भी, कवि भी थे और संगीतकार भी, इतिहासकार भी थे और इतिहास बनाने वाले भी। उनके व्यक्तित्व की सार्वभौमिकता और विशिष्टता ने उन्हें न केवल विभिन्न गुणों का वाहक बनाया था बल्कि बहुआयामी विशेषताओं से परिपूर्ण किया था। मध्यकालीन भारतीय इतिहास के बड़े-बड़े नामियों के निशान मिट गए

लेकिन हज़रत अमीर ख़ुसरो आज भी न सिर्फ़ हमारी तारीख़ का एक हिस्सा हैं बल्कि हर इंसान के दिल व दिमाग़ में रचे बसे हैं। वे लोगों के दिलों में इस प्रकार रचे-बसे हैं कि ख़ुशी के लम्हे हों या दुख के पल, हज़रत अमीर ख़ुसरो का नाम तथा उनकी रचनाएँ सदैव अपनी प्रासंगिकता के साथ हमारे साथ हैं।

इस गुत्थी को तो मनोवैज्ञानिक ही सुलझा सकते हैं कि हज़रत अमीर ख़ुसरो ने अपनी विभिन्न दरबारी एवं ख़ानक़ाही गतिविधियों के बीच किस प्रकार संतुलन स्थापित किया। यह प्रश्न इसलिए भी महत्वपूर्ण है कि ख़ुसरो ने यह संतुलन अपने व्यक्तित्व के खरेपन के साथ स्थापित किया था। जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में उनका हर जुड़ाव और हर किरदार खुली पुस्तक की तरह सब पर ज़ाहिर था और इस खुलेपन के बावजूद ज़िंदगी भर कामयाब रहे। सच्चाई से भरपूर चिंतन हज़रत अमीर ख़ुसरो के व्यक्तित्व को हमारे समक्ष एक आदर्श के रूप में प्रस्तुत करता है।

इस भारतीय तुर्क का देश-प्रेम न केवल मिसाली है, बल्कि क़ाबिले-रश्क भी है। ख़ुसरो के नज़दीक भारत की धरती अदन की जन्नत है। यहाँ के लोग प्रत्येक रंग व रूप में उन्हें प्रिय हैं। यहाँ के दरबारों के समक्ष ईरान, तूरान और ख़ुरासान के दरबार फीके दिखाई देते हैं। यहाँ के लोग कृषि, उद्योग, व्यापार के साथ-साथ विज्ञान एवं कला के प्रत्येक क्षेत्र और सैन्य प्रशिक्षण के प्रत्येक रूप में अद्‌भुत एवं अनूठे हैं। एक पक्का मुसलमान होने के बावजूद भी उन्हें भारत की सभी विचारधाराएँ प्रिय हैं। वे कहते हैं कि ‘‘यद्यपि भारतवासी हमारे जैसा धर्म नहीं रखते, परन्तु उनकी अधिकतर मान्यताएं हमारे जैसी हैं।’’

आज ज़रूरत इस बात की है कि हम भारतवासी, भारत की प्रत्येक परंपरा को, चाहे वह धार्मिक हो अथवा सांस्कृतिक अथवा

भाषायी, शैक्षिक हो या साहित्यिक, उसे हज़रत अमीर ख़ुसरो की तरह देखें, अपनाएं और उसके लिए अपने आप को समर्पित कर दें। हज़रत अमीर ख़ुसरो, जिनकी माँ भारतीय थीं और पिता तुर्क, एक ऐसे भारतीय हैं जो न केवल भारत की महानता के तराने गाते हैं बल्कि अपने आपको इस मिट्टी का इस प्रकार अभिन्न अंग बनाना चाहते हैं जैसे यह मिट्टी ही सब कुछ हो। देश की मिट्टी से इस लगाव और प्रेम को अल्ताफ़ हुसैन हाली ने इस तरह बयान किया हैः

तेरी इक मुश्त-ए-ख़ाक के बदले
लूँ न हर्ग़िज़ अगर बहिश्त मिले

ख़ुसरो फ़ाउण्डेशन देशभक्ति, मानव प्रेम तथा प्रकृति से निकटता को अपनाने और सभी प्रकार के भेदभाव और नफ़रत से ऊपर उठकर मुहब्बत को आम करना चाहती है। जिसको शैख़ इब्राहीम ज़ौक़ ने यूँ बयान किया हैः

गुल्हाए-रंगा-रंग से है ज़ीनत-ए-चमन
ऐ ‘ज़ौक़’ इस जहाँ को है ज़ेब इख़्तेलाफ़ से

❑❑